Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्दपीठ चतुर्थं पुष्प

075490

वेदनित्यता तथा ऋषि दयानन्द

डॉ० श्रीनिवास शास्त्री
दयानन्द प्रोफ़ेसर
संस्कृत-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

१४
२६६

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
१९८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे ा ऋषि दयानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R
H
5-1

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

75494

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय
कृपया पुस्तक के ऊपर कोई निशान आदि
न लगायें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2024

पुस्तकालय
पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

Stock Verification-2024

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दयानन्दपीठ चतुर्थ पुष्प

075494

वेदनित्यता तथा ऋषि दयानन्द

COMPILED

डॉ० श्रीनिवास शास्त्री
दयानन्द प्रोफेसर
संस्कृत-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

पुस्तकालय

R14,SAS-V
075494

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र
१९८२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक :

कुलसचिव,
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

प्रथम संस्करण : १९८२

मूल्य : ३२-०० (बत्तीस रुपये)

मुद्रक :

टी० फ़िलिप,
मैनेजर,
मुद्रण एवं प्रकाशन
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुलपति
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
कुरुक्षेत्र (हरियाणा)

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की स्थापना मूलतः भारतीय संस्कृति, साहित्य एवं दर्शन के अध्ययन, अध्यापन एवं शोध-कार्य को गति देने के लक्ष्य से हुई थी। इसमें कोई संदेह नहीं कि इस विश्वविद्यालय की स्थापना से लेकर अब तक इस दिशा में पर्याप्त कार्य हुआ है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए जहाँ एक ओर इस विश्वविद्यालय में भारतीय-विद्याओं के अध्ययन एवं शोध के उद्देश्य से "प्राच्य विद्या-संस्थान" की स्थापना की गई है, जिसके द्वारा भारतीय इतिहास, संस्कृति, धर्म-दर्शन, पुरातत्त्व आदि के क्षेत्र में शोध-कार्य हो रहा है, तो दूसरी ओर संस्कृत विभाग के अन्तर्गत दयानन्द-पीठ की स्थापना की गई है, जिसमें भारतीय-दर्शन का सामान्य रूप से तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचारों पर विशेष रूप से अध्ययन एवं शोध-कार्य होता है। डॉ० श्रीनिवास शास्त्री पर्याप्त समय तक दयानन्द-पीठ पर आसीन रहे हैं तथा इसी रूप में वे महर्षि दयानन्द के दर्शन पर शोध-कार्य करते रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ—"वेदनित्यता तथा ऋषि दयानन्द" उनकी इसी क्षेत्र में की गई उपलब्धि का परिचायक है। जैसा कि इस पुस्तक के शीर्षक से स्पष्ट है—इसमें वेदों की नित्यता के सम्बन्ध में प्रचलित विचारों का क्रमिक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती के तद्विषयक विचारों का विशेष रूप से विवेचन किया गया है।

पुस्तक के प्रारम्भिक तीन परिच्छेदों में लेखक ने, "वेद" के अर्थ और स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए वेदों की नित्यता और अनित्यता का अभिप्राय स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसके अनन्तर उन्होंने वैदिक साहित्य, पाणिनीय व्याकरण, निरुक्त, स्मृति-ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, पुराण, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, भरतमुनि के नाट्यशास्त्र आदि के आधार पर वेदों की नित्यता के प्रश्न पर पुनर्विचार किया है।

चतुर्थ परिच्छेद में उन्होंने, उन भारतीय दर्शनों की अवधारणाओं का विवेचन-विश्लेषण किया है जो कि वेदों की नित्यता पर आक्षेप करते हैं। यह प्रशंसा की बात है कि विद्वान् शोध-कर्त्ता ने विरोधी मतों को भी पूरी ईमानदारी से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसके अनन्तर सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त आदि दार्शनिक सम्प्रदायों के दृष्टिकोण पर विचार करते हुए वेदों की नित्यता पर प्रकाश डालने का यत्न किया गया है।

अन्तिम अध्याय में महर्षि दयानन्द के वेदोत्पत्ति एवं वेद-नित्यता सम्बन्धी विचारों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार विद्वान् लेखक ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पूर्ण भारतीय परम्परा के सन्दर्भ में विवेच्य विषय को प्रस्तुत करते हुए विभिन्न दृष्टिकोणों से उसका अध्ययन एवं मनन प्रस्तुत किया है। पुस्तक के अन्त में उपसंहार के अन्तर्गत डॉ० शास्त्री ने अपने अध्ययन के निष्कर्षों को समन्वित करते हुए निर्णय दिया है जो इस प्रकार है—"स्वामी दयानन्द के वेद-नित्यता सम्बन्धी मन्तव्य में प्राचीन विचारकों के मन्तव्यों का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है। उसमें अद्वैत वेदान्त के विचारों के साथ अधिक समानता है। वेदों की ईश्वरोक्तता न्याय-वैशेषिक और योग के समान है और वेद-नित्यता मीमांसा के समान दृष्टिगोचर होती है फिर भी स्वामी दयानन्द ने वेदों को अपौरुषेय नहीं कहा अपितु ईश्वरोक्त तथा नित्य माना है। अतः उनका यह मन्तव्य दूसरों के समान होते हुए भी कुछ विलक्षण ही है।"

मैं समझता हूँ कि प्रस्तुत-ग्रन्थ अत्यन्त व्यापक एवं गम्भीर अध्ययन पर आधारित एक महत्त्वपूर्ण शोध-प्रबन्ध है जिसके लिए उसके लेखक बधाई के पात्र हैं। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के प्रकाशन विभाग ने भी इसे सुन्दर रूप में मुद्रित एवं प्रकाशित करके इसके महत्त्व की अभिवृद्धि में योग दिया है—अतः यह विभाग भी प्रशंसा का पात्र है। आशा है कि डॉ० श्रीनिवास शास्त्री एवं उनके उत्तराधिकारी भविष्य में भी इस अध्ययन-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए शोध के क्षेत्र में इसी प्रकार का मौलिक योगदान करते रहेंगे।

गणपति चन्द्र गुप्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Stock Verification-2024

प्राक्कथन

स्वामी दयानन्द का यह निश्चय था कि भारतीय संस्कृति का मूल वेद है, अतः वेद के प्रति लुप्त श्रद्धा को पुनर्जाग्रत् करना ही भारत के नव जागरण का प्रथम सोपान है। इस दृष्टिकोण से हो उन्होंने वेद को अपना प्रधान एवं प्रथम प्रचार तथा प्रसार का विषय बनाया।

भारतीय दार्शनिकों ने वेद के प्रामाण्य पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म विचार किया है। किन्तु उनमें वेद नित्य है या नहीं इस विषय पर पर्याप्त मतभेद दृष्टिगोचर होता है। मीमांसा दर्शन के अनुसार वेद नित्य है और अपौरुषेय है। सांख्याचार्यों ने वेद की नित्यता न मानकर भी उसकी अपौरुषेयता को स्वीकार किया है। योग और न्यायदर्शन में वेद ईश्वरकृत है। अद्वैत वेदान्त के अनुसार वेद स्वरूपतः नित्य नहीं है परन्तु प्रवाह से नित्य है अर्थात् कल्पकल्पान्तर में वेद की अविच्छिन्न धारा समान रूप से चलती रही है।

भारतीय दर्शन में पारंगत विद्वान् डॉ० श्रीनिवास शास्त्री ने वर्तमान ग्रन्थ में प्राचीन भारतीय दर्शन एवं दयानन्द के ग्रन्थों का तुलनात्मक विवेचन कर यह प्रमाणित किया है कि स्वामीजी की दृष्टि समन्वयात्मक थी। स्वामीजी के मत में वेद अपौरुषेय नहीं है, वह ईश्वरोक्त होते हुए भी नित्य है। वेद ईश्वरीय विद्या है, ईश्वर का ज्ञान नित्य है, अतः वेद भी नित्य है, कल्पान्त में वेद ब्रह्म में लीन हो जाता है, सृष्टि के प्रारम्भ में वेद का पुनः आविर्भाव होता है, उत्पत्ति नहीं।

वस्तुतः वर्तमान ग्रन्थ न केवल स्वामी दयानन्द के वेदनित्यता सम्बन्धी मन्तव्यों पर एक मूल्यवान् ग्रन्थ है, अपितु भारतीय वैदिक दर्शनों के विभिन्न प्रस्थानों के वेदविषयक विचारों का एक अमूल्य निधि है। डॉ० शास्त्री ने गत पाँच वर्ष दयानन्द पीठ के अध्यक्ष के रूप में स्वामी दयानन्द पर और तीन मूल्यवान् ग्रन्थों की रचना की है। इन ग्रन्थों की रचना से लेखक ने दयानन्द पीठ तथा दयानन्द साहित्य की अपूर्व श्रीवृद्धि की है, इस विश्वविद्यालय के दयानन्द पीठ का नाम सचमुच सार्थक बन गया है। डॉ० शास्त्री ने पाँच वर्ष दयानन्द साहित्य का गहन अध्ययन और मनन कर इस प्रामाणिक ग्रन्थ को विद्वत् समाज की सेवा में प्रस्तुत किया है, इसलिए मुझे युगपत् गर्व और प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। विश्वविद्यालय की सेवा से निवृत्त होने से पूर्व मैं शास्त्रीजी का हार्दिक अभिनन्दन करते हुए इनके स्वास्थ्य और सुदीर्घ आयु के लिए परमेश के चरणों में प्रार्थना करता हूँ।

गोपिकामोहन भट्टाचार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेखक का निवेदन

दयानन्द पीठ संस्कृत-विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के 'चतुर्थ पुष्प' के रूप में 'वेदनित्यता तथा ऋषि दयानन्द' नामक ग्रन्थ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें ५ परिच्छेद हैं। अन्त में प्रतिपाद्य विषय का उपसंहार तथा सहायक ग्रन्थों की सूची है। इस ग्रन्थ में संक्षेप से नित्यता तथा वेदनित्यता आदि का अर्थ स्पष्ट करते हुए वेद-मन्त्रों से आरम्भ करके दर्शनेतर वाङ्मय के प्रमुख ग्रन्थों में उपलब्ध वेदसंज्ञा, वेदसंख्या, वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता सम्बन्धी सन्दर्भों पर विचार किया गया है; अवैदिक तथा वैदिक दार्शनिक प्रस्थानों के एतद्विषयक मन्तव्यों एवं पाश्चात्त्य विद्वानों के दृष्टिकोण का निरूपण किया गया है तथा दिखलाया गया है कि ऋषि दयानन्द ने विविध मतों की समीक्षा एवं समन्वय करते हुए किस प्रकार वेदनित्यता का प्रतिपादन किया है। यहाँ वेदसंज्ञा, वेदसंख्या तथा वेदनित्यता आदि के विषय में विविध विचारों को संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है। उन विचारों की सम्यक् प्रकार से समीक्षा करके विवेचकों को इस विषय में किसी निर्णय पर पहुंचने में सहायता मिल सकेगी।

हरियाणा सरकार एवं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के अधिकारियों के अनुग्रह से ही यह ग्रन्थ प्रकाश में आ सका है। इन सभी के प्रति लेखक हृदय से आभार प्रकट करता है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के भूतपूर्व कुलपति डॉ० विकास मिश्र एवं श्री एम०कुटप्पन, वर्तमान कुलपति डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, प्रति कुलपति डॉ० रामप्रकाश तथा संस्कृत-विभाग के अध्यक्ष डॉ० गोपिकामोहन भट्टाचार्य के प्रति भी वह हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। इनके अतिरिक्त जिन महानुभावों ने इस अनुसन्धान-कार्य में सहयोग देकर अनुगृहीत किया है वे सभी धन्यवाद के पात्र हैं। शोध-सहायक आयुष्मती स्वर्णप्रभा तथा प्रिय दुलीचन्द शर्मा ने इस कार्य में शक्तिभर परिश्रम किया है, प्रिय सोमप्रकाश गोयल ने टङ्कण आदि की व्यवस्था की है और विश्वविद्यालय-प्रकाशन संस्थान के व्यवस्थापक, प्रेस के अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने इस कार्य में पूर्ण सहयोग दिया है, इन सभी का लेखक कृतज्ञ है।

यदि इस ग्रन्थ के द्वारा वेदनित्यता जैसे विवादास्पद विषय के स्पष्टीकरण में कुछ सहायता मिल सकेगी तो लेखक अपने प्रयास को सफल समझेगा।

श्रीनिवास शास्त्री
दयानन्द प्रोफेसर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकेत-विवरण

अनु०	अनुच्छेद	पस्पशा०	पस्पशाह्निक (महाभाष्य)
अनु०	अनुवादक (ग्रन्थानुक्रमणिका में)	पृ०	पृष्ठ
		प्र०सं०	प्रथम संस्करण
अयोध्या०	अयोध्याकाण्ड	बाल०	बालकाण्ड
आप०	आपस्तम्ब	बृहद्०	बृहदारण्यकोपनिषद्
आर्ष०ब्रा०	आर्षेय ब्राह्मण	ब्रा०	ब्राह्मण
ऐत०	ऐतरेय	मनु०	मनुस्मृति
ऋग्वेदादि०	ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	मनो०	मनोरथनन्दिवृत्ति
कठ०	कठोपनिषद्	महा०	महाभारत
का०	कारिका	महा०	महाभाष्य
किष्किन्धा०	किष्किन्धाकाण्ड	मि०	मिलाइये
ग्रन्थप्रामाण्य०	ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य-विषय	मी०सू०	मीमांसासूत्र
		मुण्डको०	मुण्डकोपनिषद्
छान्दो०	छान्दोग्योपनिषद्	याज्ञ०	याज्ञवल्क्यस्मृति
जी०च०	महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित	वि० (वि०सं०)	विक्रम संवत्
		वै०सू०	वैशेषिक सूत्र
तु०	तुलना कीजिए	श्वेता०	श्वेताश्वतरोपनिषद्
तैत्तिरीय०	तैत्तिरीयोपनिषद्	श्लोक०	श्लोक
तै०ब्रा०	तैत्तिरीय ब्राह्मण	श्लो०वा०	श्लोकवार्त्तिक
द०ल०	दयानन्दीय-लघुग्रन्थ-संग्रह	श्रौ०	श्रौतसूत्र
द्र०	द्रष्टव्य	स०	सम्पादक
पत्र और वि०	ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन	समु०	समुल्लास
		सुन्दर०	सुन्दरकाण्ड
		सं०	संस्कृत
परि०	परिच्छेद	सां०का०	सांख्यकारिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
परिच्छेद १ विषय प्रवेश	१—२२
१. वेद का स्वरूप	१
२. नित्यता और अनित्यता	६
३. वेदनित्यता और उसका महत्त्व	११
४. वाङ्मय में वेद-नित्यता का निरूपण	१५
५. प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय	१८
परिच्छेद २ मन्त्र-ब्राह्मण तथा वेदाङ्गों में वेदनित्यता	२३—५७
१. वेदमन्त्रों में वेदसंख्या और वेदनित्यता	२३
२. ब्राह्मण-ग्रन्थ तथा वेदनित्यता	२८
३. उपनिषदों में वेद तथा वेदनित्यता	३४
४. वेदाङ्गों में वेदोत्पत्ति एवं वेदनित्यता	३७
५. कल्प और वेदनित्यता	४०
६. पाणिनीय व्याकरण तथा वेदनित्यता	५१
७. निरुक्त और वेदनित्यता	५५
परिच्छेद ३ स्मृति, रामायण-महाभारत तथा पुराण आदि में वेदनित्यता	५८—७६
१. स्मृतियां तथा वेदनित्यता	५८
२. वाल्मीकिरामायण और वेदनित्यता	६१
३. महाभारत तथा वेदनित्यता	६३
४. पुराण और वेदनित्यता	६८
५. कौटिल्य का अर्थशास्त्र	७२
६. चरक, सुश्रुत में वेदनित्यता	७३
७. नाट्यशास्त्र तथा वेदनित्यता	७५
परिच्छेद ४ भारतीय दर्शन और वेदनित्यता	
१. अवैदिक दर्शनों के वेदोत्पत्ति विषयक मन्तव्य	७७—८५
(क) चार्वाक का वेदोत्पत्तिविषयक मत	७७
(ख) बौद्ध-दर्शन और वेदोत्पत्ति	७९
(ग) जैनदर्शन का वेदोत्पत्तिविषयक विचार	८३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. न्याय-वैशेषिक की दृष्टि में वेदोत्पत्ति ८६—१०६

(क) न्यायसूत्र तथा वात्स्यायन भाष्य ८६
(ख) न्यायवार्त्तिक तथा तात्पर्यटीका ९०
(ग) जयन्त भट्ट की न्यायमञ्जरी ९४
(घ) वैशेषिकसूत्र तथा प्रशस्तपादभाष्य ९८
(ङ) प्रशस्तपादभाष्य के टीकाकार १०२
(च) न्याय-वैशेषिक के स्वतन्त्र ग्रन्थ १०३

३. सांख्य-योग में वेदनित्यता १०६—११४

(क) सांख्यसूत्र तथा उसकी व्याख्याएँ १०६
(ख) सांख्यकारिका तथा उसकी टीकाएँ १०९
(ग) पातञ्जल योगसम्प्रदाय ११२

४. मीमांसा-सम्प्रदाय में वेदनित्यता ११४—१२४

(क) मीमांसासूत्र तथा शाबर भाष्य ११४
(ख) कुमारिल भट्ट ११६
(ग) पार्थसारथि मिश्र १२०
(घ) प्रभाकर-सम्प्रदाय १२२
(ङ) मानमेयोदय १२३

५. वेदान्त के विविध सम्प्रदायों में वेदनित्यता १२४—१४०

(क) ब्रह्मसूत्र १२४
(ख) शारीरक भाष्य तथा उसकी टीकाएँ १२५
(ग) अद्वैत वेदान्त के स्वतन्त्र ग्रन्थ १३१
(घ) वेदान्त के अन्य सम्प्रदाय १३४

परिच्छेद ५ ऋषि दयानन्द की दृष्टि में वेदनित्यता १४१—१७०

१. दयानन्द की जीवनी में वेदोत्पत्ति एवं वेदनित्यता के सन्दर्भ १४१
२. वेद में इतिहास और वेदनित्यता १४५
३. वेद और वेदनित्यता का अभिप्राय १४८
४. वेदनित्यता तथा वेदोत्पत्ति का सामञ्जस्य १५१
५. वेदनित्यता में युक्तियाँ १५५
६. वेदनित्यता में विविध प्रमाण १५९
७. वेदनित्यता के विषय में पाश्चात्त्य विद्वानों के मत और ऋषि दयानन्द १६२
८. दयानन्द के वेदनित्यता सम्बन्धी मन्तव्य और पूर्व विचारक १६९

उपसंहार १७१—१८५

सहायक ग्रन्थ-सूची १८६—१९२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिच्छेद १

विषय-प्रवेश

१. वेद का स्वरूप

भारतीय वाङ्मय में प्राचीनकाल से ही वेद शब्द का प्रयोग होता आया है। वैदिक साहित्य, लौकिक संस्कृत तथा लोकभाषाओं के साहित्य में भी वेदों के नाम से किसी मन्तव्य का प्रतिपादन किया गया है। जनसाधारण और सुसंस्कृत जनों में भी बहुत से विचार वेद के नाम से प्रचलित हो गये हैं। इन सन्दर्भों में वेद क्या है? वेद का स्वरूप क्या है? इत्यादि पर विचार नहीं किया जाता। वस्तुतः व्यवहार में इस प्रकार का विचार करने का अवसर ही नहीं होता और न इसका उपयोग ही समझा जाता है; किन्तु शास्त्रीय विवेचन में तो इस प्रकार के विवेक की आवश्यकता होती ही है।

वेद शब्द का यौगिक अर्थ है ज्ञान या विचार अथवा ज्ञान या विचार का साधन या आधार आदि।[1] यौगिक अर्थ का बोध व्याकरण अथवा निरुक्त आदि के आधार पर हुआ करता है। वस्तुतः यह किसी शब्द का लोकप्रचलित अर्थ नहीं होता। लोक में तो अनेक आधारों पर किसी शब्द का अर्थ प्रचलित होता है। इन आधारों में व्यवहार को प्रमुख स्थान दिया जाता है। वेद शब्द के विषय में भी यही बात है। न जाने कब से यह शब्द किन्हीं विशेष ग्रन्थों के लिये रूढ़ हो गया। जिन ग्रन्थों के लिये वेद शब्द रूढ़ हो गया उनकी लोकप्रसिद्ध विशेषताओं के आधार पर ही कोषकारों ने वेद शब्द का अर्थ दिखला दिया। अमरकोष में बतलाया गया—श्रुति, वेद, आम्नाय और त्रयी ये वेद के नाम हैं। यहां त्रयी का विश्लेषण करते हुए कहा गया—स्त्रीलिङ्ग, ऋक् और साम तथा यजुः ये तीन वेद त्रयी कहलाते हैं।[2] त्रयी शब्द

---

१. विद् ज्ञाने या विद् विचारणे आदि धातुओं से घञ् प्रत्यय (हलश्च) करके वेद शब्द की व्युत्पत्ति की जाती है।

२. श्रुतिः स्त्री वेद आम्नायस्त्रयी धर्मस्तु तद्विधिः।
स्त्रियामृक्सामयजुषी इति वेदास्त्रयस्त्रयी ॥ अमरकोष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से किस अर्थ को अभिहित किया जाता रहा है? इसका यथावसर आगे विवेचन किया जायेगा। वर्तमान काल के कोषकारों ने यौगिक अर्थ से लेकर रूढ़ अर्थ तक को वेद शब्द के अर्थ में संगृहीत कर लिया। तदनुसार वेद शब्द का अर्थ है ज्ञान, पवित्र ज्ञान, पवित्र शिक्षा अथवा हिन्दुओं का धर्मग्रन्थ।[३] इस प्रकार वेद शब्द किन्हीं विशेष ग्रन्थों के लिये रूढ़ हो गया है। फिर भी अन्य अर्थों में इसका प्रयोग होता रहा है।

अब प्रश्न यह है कि वे कौन से विशेष ग्रन्थ हैं जिन्हें वेद नाम से कहा जाता है। आज ऋक्, यजुः, साम और अथर्व ये चारों ही वेद नाम से प्रसिद्ध हैं। यह अवश्य कहा जाता है कि प्राचीन काल में त्रयी के अन्तर्गत ऋक् यजुः और साम की ही गणना की जाती थी, वेदों में अथर्ववेद की गणना बाद में की गई।[४] दूसरे मत के अनुसार अथर्ववेद भी अन्य वेदों के समान ही प्राचीन है।[५] ऋक्, साम और यजुष् तीन प्रकार के मन्त्रों के आधार पर त्रयी या वेदत्रयी शब्द प्रचलित हो गया। चारों वेदों के मन्त्र इन तीन वर्गों में ही रक्खे जा सकते हैं अतः 'त्रयी' कहने से चारों वेदों का बोध हो जाता है। विभिन्न ग्रन्थकारों के मतानुसार इस विषय का विवेचन आगे किया जायेगा। हां, आज चारों को ही वेद नाम से अभिहित किया जाता है।

ऋग्वेद आदि वेद कहलाते हैं, इस विषय में तो प्रायः कोई विवाद नहीं है। वैमत्य इसमें है कि ऋग्वेद आदि की इयत्ता क्या है, ऋग्वेद के अन्तर्गत किस वाङ्मय की गणना करनी होगी। कुछ विद्वानों का कहना है कि इसमें विवाद की क्या बात है जितने को या जिसे ऋग्वेद आदि कहा जाता है वही ऋग्वेद आदि हैं। वेदसंहिताओं का वेद नाम से व्यवहार किया जाता है। अतः संहिताएं ही वेद हैं। किन्तु इस कथन से भी समस्या का समाधान नहीं होता। क्यों? प्रश्न यह भी उठता है कि किसी-किसी वेद की कई संहिताएं हैं क्या वे सभी वेद हैं? उदाहरणार्थ, यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता, काण्वसंहिता और तैत्तिरीय संहिता प्रसिद्ध हैं, क्या वे सभी यजुर्वेद हैं। कुछ विद्वान् इस प्रश्न का उत्तर ही स्वीकारात्मक नहीं देते, अपितु ऋग्वेद आदि की विविध

---

३. V.S. Apte, Sanskrit English Dictionary.

४. Subsequently a fourth Veda was added, called the Atharvaveda. Sanskrit English Dictionary, By Monier Williams.

५. द्र०, जयन्त भट्ट, न्यायमञ्जरी, पृ० २३२ तथा आगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाखाओं ब्राह्मणों और उपनिषदों आदि को भी वेद कहते हैं। उनकी दृष्टि में वेद की इयत्ता विस्तृत है। साथ ही ऐसे भी वचन उपलब्ध होते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि वेदों की कोई इयत्ता नहीं। जैसे—वेद अनन्त हैं।[६] सम्भवत: वहाँ वेद शब्द का प्रयोग ज्ञान=विद्या के अर्थ में कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त वेद के व्याख्यान को भी वेद कह दिया गया है अथवा किसी ग्रन्थ की प्रामाणिकता या पवित्रता पर बल देने के लिये उसे वेद नाम से अभिहित किया गया है। उदाहरणार्थ, आयुर्वेद, नाट्यवेद आदि नामों का प्रचुर प्रयोग होता है। वहाँ किसी विद्या-विशेष को ही वेद नाम से कहा जाता है। इसी प्रकार नाट्यशास्त्र को पञ्चम वेद[७] कहने से नाट्यशास्त्र की प्रामाणिकता की ओर संकेत किया जाता है। किन्तु कुछ लोकभाषा के ग्रन्थों को भी वेद कहा गया है, जैसे तामिल वेद; किन्तु जैसा अभी ऊपर दिखलाया गया है, वेद शब्द मूलत: यौगिक होकर भी किन्हीं ग्रन्थ-विशेषों के लिये रूढ़ हो गया है। किसी शब्द के अर्थ-विशेष में रूढ़ हो जाने पर भी यदि उसका अन्य अर्थों में प्रयोग होता है तो उस प्रयोग को औपचारिक ही कहा जा सकता है। ऐसा भी देखा जाता है कि कहीं-कहीं किसी शास्त्रविशेष में या विद्याविशेष में किसी शब्द को एक अर्थ में निश्चित कर लिया जाता है, जैसे आयुर्वेद में 'त्रिफला' आदि शब्द विशेष अर्थ के वाचक होते हैं या 'वृद्धि' शब्द से पाणिनि-व्याकरण में आ, ऐ और औ का बोध होता है।[८] इसके अतिरिक्त किन्ही शब्दों की परिभाषा करके उनका विशेष अर्थ में प्रयोग भी किया जाता है, वे शब्द पारिभाषिक कहे जाते हैं; जैसे सांख्य में सत्त्व-रजस्-तमस् के लिये गुण शब्द का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार किसी शब्द के प्रयोग में यह विवेक करना होता है कि उसका प्रयोग कहाँ मुख्य अर्थ में किया गया है, कहाँ औपचारिक अर्थ में और कहाँ संज्ञा या परिभाषा के रूप में उसका प्रयोग किया जा रहा है।

वेद शब्द के प्रयोग में भी इस प्रकार का विवेक करना होगा। एक ओर ऋग्वेद आदि वेद नाम से प्रसिद्ध हैं। दूसरी ओर अनेक स्थलों पर कहा गया है कि मन्त्र और ब्राह्मण को वेद कहते हैं।[९] कुछ व्याख्याकारों ने भी मन्त्र और

---

६. इसका सन्दर्भ एवं अभिप्राय गवेषणीय है।

७. नाट्यशास्त्रं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्। नाट्यशास्त्र, १.१५

८. वृद्धिरादैच्। पा०, १.१.१.।

९. मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। आपस्तम्बश्रौतसूत्र, २४.१.३१; मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदशब्दः। कौषीतकिगृह्यसूत्र, ३.१२.२३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्राह्मण दोनों को वेद नाम दिया है।[१०] सायणाचार्य जैसे वेद-व्याख्याकारों ने भी इसे स्वीकार किया है।[११] ब्राह्मण के भीतर आरण्यक और उपनिषदों की गणना करके उन्हें भी वेद या श्रुति नाम से कहा गया है। शंकराचार्य ने 'श्रुति' शब्द से अनेकशः उपनिषदों के वचन उद्धृत किये हैं।[१२] सायण ने उपनिषदों को वेद माना है।[१३] पारस्कर गृह्य सूत्र में कहा गया है, वेद को समाप्त करके स्नातक हो;[१४] आगे बतलाया गया है कि विधि प्रतिपाद्य (विधेय अर्थ) और तर्क वेद है।[१५] वहां किसी अन्य के मत का उल्लेख करते हुए बतलाया गया है - 'षडङ्गमेके' अर्थात् किन्हीं के मत में छह अङ्गों सहित वेद का अध्ययन करके समावर्तन कराये[१६] गृह्यसूत्र के इस प्रकरण में वेदाध्ययन की चर्चा है उसी प्रसंग में बतलाया गया है कि वेद के अध्ययन से क्या अभिप्राय है? इसे वेद-संज्ञा के लिये प्रमाण नहीं माना जा सकता।

दूसरी ओर केवल मन्त्रभाग या वैदिक संहिताओं को ही वेद माना गया है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र[१७] की व्याख्या में हरदत्त मिश्र तथा धूर्त-स्वामी ने बतलाया है: किन्हीं ने (केवल) मन्त्रों को ही वेद माना है।[१८] आधुनिक युग में दयानन्द ने अनेक युक्ति और प्रमाणों से यह प्रतिपादित किया है कि मन्त्रसंहिताओं को ही वेद कहते हैं। स्वामी जी के मन्तव्य का आगे विशद विवेचन किया जायेगा।

जहाँ तक ब्राह्मणों को वेद कहने की बात है, संभवतः इन्हें वेद का व्याख्यान होने से ही वेद कह दिया गया है। कारण, सायण ने भी कई स्थलों पर यह स्वीकार किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्रों के व्याख्यान

---

१०. (क) मन्त्राश्च ब्राह्मणञ्च वेदः। शाबरभाष्य, मीमांसासूत्र, २.१.३३।
(ख) शंकराचार्य, बृहदारण्यक० भाष्य, ४.४.२२।

११. यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः। तैत्तिरीयसंहिता भाष्य (आनन्दाश्रम), पृ० ७।

१२. द्र०, शांकरभाष्य, ब्रह्मसूत्र, २.१.२७।

१३. ऋग्वेदभाष्यभूमिका, पृ० १०८-१०६, ११३।

१४. वेदं समाप्य स्नायात्। पारस्कर०, २.६.१।

१५. विधिविधेयस्तर्कश्च वेदः। वही, २.६.५।

१६. षडङ्गमेके। वही, २.६.६।

१७. आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, २४.१.३१।

१८. केचिन्मन्त्राणामेव वेदत्वमाश्रितम्। व्याख्या, वही, २४.१.३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं।[१९] भट्ट भास्कर ने ब्राह्मण ग्रन्थों को कर्म तथा कर्मविषयक मन्त्रों के व्याख्यान करने वाला कहा है।[२०] इसी प्रकार शंकराचार्य ने प्रश्नोपनिषद् के भाष्य में कहा था—मन्त्र द्वारा उक्त अर्थ का विस्तार से अनुवाद करने वाले इस ब्राह्मण का आरम्भ किया जा रहा है।[२१] ब्राह्मण तथा उपनिषद् वेदों के व्याख्यान हैं, इसका स्वयं ब्राह्मणों तथा उपनिषदों से भी पता चलता है; क्योंकि वहां किसी वेदप्रतिपादित अर्थ का प्रतिपादन करने के पश्चात् वेद-मन्त्रों को प्रमाण-रूप से उद्धृत किया गया है। उदाहरणार्थ, शतपथ-ब्राह्मण में प्रतिपाद्य विषय का विश्लेषण करके वेदवचन को उद्धृत किया गया है—तदेतदृचाभ्युक्तम्।[२२] इसी प्रकार उपनिषदों में भी वेदार्थ का प्रतिपादन करके उसका समर्थन करने के लिये कोई मन्त्र प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया गया है।[२३]

इसी प्रसंग में यह भी प्रश्न उठता है कि वेदों की जो विविध शाखाएं मानी गई हैं वे सब भी वेद पद की अधिकारिणी है या नहीं। कुछ विद्वान् वेद की सभी शाखाओं को वेद कहते हैं। अन्यों के अनुसार वेद की शाखाएँ वेद नहीं। वे शाखाएं ही हैं। इस विषय में भी युक्ति और प्रमाणों के आधार पर विवेचन करना होगा।

वस्तुतः जिस प्रकार वेद-प्रामाण्य का विचार विशेष परिस्थितियों के अनुसार विविध रूपों में विकसित हुआ है। इसी प्रकार वेद-संज्ञा या वेद की इयत्ता की पृष्ठभूमि में भी कुछ परिस्थितियां रही हैं। किन्तु उन परिस्थितियों

---

१९. (क) यद्यपि मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदस्तथापि ब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वात्। तैत्तिरीयसंहिता भाष्य (आनन्दाश्रम, पूना), पृ० ७।

(ख) तत्र शतपथब्राह्मणस्य मन्त्रव्याख्यानरूपत्वात्। काण्वसंहिता, सायणभाष्य सहित पृ० ८।

२०. ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः। तैत्तिरीयसंहिता, भट्टभास्करभाष्यसहित, १.५.१।

२१. मन्त्रोक्तार्थस्य विस्तरानुवादीदं ब्राह्मणमारभ्यते। श्री शङ्कराचार्य ग्रन्थावली, (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६४), प्रथम भाग, पृ० ३९६।

२२. शतपथब्राह्मण, १२.३.४.९।

२३. (क) तदेतदृचाभ्युक्तम्। प्रश्नोपनिषद्, १.७।

(ख) तदेती श्लोकौ भवतः। वही, ५.५।

यहां शङ्कराचार्य कहते हैं—तदेतौ अस्मिन् यथोक्तार्थप्रकाशको श्लोकौ मन्त्रौ भवतः। शाङ्करभाष्य, वही, ५.५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का विश्लेषण करना असम्भव नहीं तो दुरूह अवश्य है। आज भारत के प्राचीनतम इतिहास के विषय में 'इदमित्थम्' रूप से कुछ भी कहना कठिन है। फिर यह निश्चित रूप से कैसे कहा जा सकता है कि किन परिस्थितियों में वेद की इयत्ता का संकोच या विस्तार हुआ होगा। इस विषय में केवल अटकलों का ही सहारा लिया जा सकता है। लिया भी जाता रहा है। किन्हीं अटकलों के आधार पर भारतीय इतिहास का एक ढांचा खड़ा करके उसी की छाया में विविध व्याख्याएं प्रस्तुत की जाती रही हैं। एक नहीं अनेक व्याख्याएं। उन व्याख्याओं का वस्तु के तथ्य से कम सम्बन्ध है ऊहा-पोहों और संभवनाओं से अधिक। वस्तुतः यह सत्यान्वेषण की पद्धति नहीं कही जा सकती। किसी निर्धारित मन्तव्य का युक्ति और प्रमाणों के आधार पर समर्थन या विघटन करना मात्र ही सत्यान्वेषण नहीं है। यह कार्य तो पूर्वाग्रहों के प्रति प्रतिबद्ध होकर भी किया जा सकता है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर जो मन्तव्य जैसा प्रतीत हो, उसका उसी प्रकार से निरूपण करना सत्यान्वेषण या अनुसन्धान का एक सोपान कहा जा सकता है, प्रतिबद्ध होकर किसी मत का समर्थन या खण्डन नहीं। अस्तु।

वेदनित्यता के इस विवेचन में भी वेद शब्द का कोई पूर्वनिर्धारित अर्थ मन में रखकर ही आगे बढ़ना उचित न होगा। वेद का नाम लेकर अथवा नाम लिये विना भी वेद की संज्ञा, संख्या, उत्पत्ति और नित्यता आदि के प्रसंग में जो किसी ने कुछ कहा है वह सभी इस विवेचन का विषय हो सकता है। यह विवेक तो उस कथन की समीक्षा से सम्बन्ध रखता है कि वहाँ वेद शब्द का किस अभिप्राय से प्रयोग किया गया है। यहाँ तो वेद शब्द के प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं पर ध्यान न देकर वेद-नित्यता आदि पर ही विचार किया गया है। हां, यथासम्भव यह अवश्य संकेत कर दिया गया है कि किसी व्याख्याकार का वेद शब्द से क्या अभिप्राय है; उसने केवल मन्त्र अर्थ में वेद शब्द का प्रयोग किया है या मन्त्र-ब्राह्मण आदि के लिये; अथवा वेद को प्रमाण मानने वालों के सभी कार्यकलाप को वेदोक्त मानकर वेद के कर्तृत्व आदि के विषय में कह दिया है।

२. नित्यता और अनित्यता

वेद के स्वरूप पर विचार करने के अनन्तर यह भी विचारणीय हो जाता है कि नित्यता का क्या अभिप्राय है। नित्यता और अनित्यता परस्पर विपरीतार्थक शब्द हैं। नित्य का अर्थ है ध्रुव, नियत। व्याकरण के अनुसार नि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसर्ग से त्यप् प्रत्यय करके नित्य शब्द की निष्पत्ति की जाती है।[२४] पातञ्जल महाभाष्य में कहा गया है कि नित्य शब्द सदा कूटस्थ पदार्थों के लिये ही नहीं आता अपितु आभीक्ष्ण्य (निरन्तर, सतत,) अर्थ में भी आता है: जैसे नित्यप्रहसितः, नित्यप्रजल्पितः।[२५] नित्य शब्द का नियत शब्द के समान अर्थ में भी प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।[२६] कैयट ने ध्रुव का अर्थ नियत ही किया है।[२७] कोषकारों के अनुसार 'सतत' शब्द के पर्याय रूप में भी इस शब्द का प्रयोग होता है।[२८] आधुनिक पद्धति के कोशकारों के अनुसार नित्य शब्द के अनेक अर्थ हैं; जैसे—निरन्तर रहने वाला, चिरस्थायी, शाश्वत, निर्बाध, नियमित, आवश्यक, प्रतिदिन, सदा इत्यादि।[२९] इस शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग उपलब्ध भी होता है; जैसे नित्यकर्म, नित्यनैमित्तिक कर्म, नित्यमुक्त, नित्यप्रलय, नित्यशङ्कित, नित्यसमास आदि। इन प्रयोगों से यह प्रतीत होता है कि नित्य शब्द का अर्थ है— नियमपूर्वक, निरन्तर, नियत रूप से, सदा रहने वाला इत्यादि। भाषा और साहित्य का क्षेत्र असीमित है उसमें अनुसन्धान करने से 'नित्य' शब्द के अन्य अनेक अर्थों का निश्चय किया जा सकता है।

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में भी नित्य शब्द का पर्याप्त प्रयोग किया गया है। उपनिषद् के 'नित्यो नित्यानाम्'[३०] आदि प्रयोग तो प्रसिद्ध ही हैं। दर्शन शास्त्र के सूत्र ग्रन्थों में भी नित्य शब्द का प्रयोग मिलता है तथा इसके विपरीतार्थक अनित्य शब्द का भी; जैसे—मीमांसासूत्र है—'नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्' (१.१.१८); ब्रह्मसूत्रों में आया है— 'अतएव च नित्यत्वम्' (१.३.२९) आदि। वैशेषिक सूत्र में 'द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते' (२.१.२८); न्यायसूत्र में 'सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात् (४.१.२९), सांख्यसूत्र में 'न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः' (५.४५), योगसूत्र में 'अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचि-

---

२४. त्यब् नेर्ध्रुवे। महाभाष्य, ४.२.१०४।

२५. वही, पस्पशा०, पृ० ४६।

२६. द्र०, यद्यप्यर्थो नित्यः या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या। वही, ४.३.१०१।

२७. ध्रुवं नियतमुच्यते। प्रदीप, महाभाष्य, ४.२.१०४।

२८. सततानारताश्रान्तसन्तताविरतानिशम्।
नित्यानवरताजस्रम् ......' ॥ अमरकोष
सतत, अनारत, अश्रान्त, सन्तत, अविरत, अनिश, नित्य, अनवरत और अजस्र ये नित्य के नाम हैं।

२९. द्र०, वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोष।

३०. श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६.१३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुखात्मख्यातिरविद्या' (२.५) प्रयोग किया गया है। व्याख्याकार देश-काल और सम्प्रदाय आदि की दृष्टि से नित्य और अनित्य आदि शब्दों का अर्थ करते रहे हैं। दार्शनिक मन्तव्यों के विकास के साथ इन अर्थों में भी परिवर्तन हुआ है।

वैशेषिक सूत्र में नित्य का लक्षण इस प्रकार उपलब्ध होता है—'सदकारणवन्नित्यम्'।[11] यद्यपि व्याख्याकारों के अनुसार यहां परमाणु की नित्यता के प्रसङ्ग में ऐसा कहा गया है[12] तथापि इसे सामान्यतः नित्यत्व का बोधक समझा जा सकता है। इसका अर्थ है जो विद्यमान हो और जिसका कोई कारण न हो (जो किसी से उत्पन्न न हो) वह नित्य कहलाता है; जैसे—वैशेषिक के मत में परमाणु आदि हैं। उनकी सत्ता मानी गई है तथा उनकी उत्पत्ति का किसी प्रकार का भी कारण नहीं माना गया। न्याय-वैशेषिक की दृष्टि से समवायी, असमवायी तथा निमित्त जो तीन प्रकार का कारण होता है, उनमें से कोई भी कारण नित्य पदार्थों का नहीं हुआ करता। लक्षण में सत् (विद्यमान) इसलिये कहा गया है क्योंकि प्रागभाव[13] (उत्पत्ति से पूर्व वस्तु का अभाव) का भी कोई कारण नहीं होता फिर भी उसे नित्य नहीं माना जाता। वस्तु की उत्पत्ति हो जाने पर प्रागभाव का नाश हो जाया करता है। यहां सत् का अभिप्राय विद्यमान=सद्रूप है, प्रागभाव तो अभावरूप है अतः उसमें यह लक्षण घटित न होगा। यदि सद् शब्द का अर्थ सत्ता जाति वाला माना जाये तो दोष होगा। कैसे? वैशेषिक के अनुसार सत्ता नामक सामान्य (जाति) केवल द्रव्य, गुण, कर्म में ही रहती है,[14] सामान्य, विशेष तथा समवाय में सत्ता (जाति) नहीं रहती। फिर भी सामान्य,[15] विशेष तथा समवाय तीनों को ही नित्य माना जाता है। ये तीनों विना सत्ता के ही स्वरूप से सत् (सद्रूप) होते हैं। इस प्रकार सूत्र का उपर्युक्त अर्थ करने से नित्य का लक्षण बन जाता है।

नित्य वस्तु किन्हीं कारणों से उत्पन्न नहीं होती, उससे तो अन्य वस्तु उत्पन्न हो ही सकती है; जैसे परमाणु किसी से उत्पन्न नहीं होता; किन्तु परमाणु से

---

११. वैशेषिक सूत्र, ४.१.१।

१२. द्र०, वैशेषिकसूत्रोपस्कार, ४. १. १।

१३. क्रियागुणव्यपदेशाभावात् प्रागसत्। वही, ६. १. १।

१४. द्र०, प्रशस्तपादभाष्य (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १६५०), सामान्यप्रकरण, पृ० २७६-७७।

१५. अत एव च नित्यत्वम्। वही, पृ० २८१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वयणुक उत्पन्न हुआ करते हैं। नित्य वस्तु का नाश होना भी असम्भव है। इस प्रकार नित्य वह है जिसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होते। विनाश का अर्थ है ध्वंस—स्वरूपविनाश; जैसे न्याय-वैशेषिक के अनुसार किसी घट को पत्थर आदि से फोड़ दिया जाता है, उसका स्वरूप नष्ट हो जाता है वही घट-ध्वंस कहलाता है। किन्तु परमाणु का तो ध्वंस (नाश) नहीं होता अतः परमाणु को नित्य माना जाता है। कभी कभी वस्तु के स्वरूप में तो विकार देखा जाता है किन्तु मूल वस्तु का नाश (नितान्त अभाव) नहीं होता। उदाहरणार्थ, स्वर्ण के एक टुकड़े से कुण्डल बनवाए जाते हैं कुण्डलों को तोड़ कर अंगूठी बनवा ली जाती है। वहाँ स्वर्ण ज्यों का त्यों बना रहता है केवल उससे बनने वाले आभूषणों में अन्तर हो जाता है; कभी वह आभूषण कुण्डल के रूप में होता है कभी अंगूठी के रूप में। किन्हीं विचारकों के अनुसार यहाँ भी मूलतत्त्व नित्य ही है; जैसा कि पतञ्जलि मुनि ने कहा है—'तदपि नित्यं यस्मिन् तत्त्वं न विहन्यते,'[३६] अर्थात् जिसमें विकार होने पर भी तत्त्व का नाश नहीं होता, वह भी नित्य है। सांख्य-योग के अनुसार विश्व का मूल तत्त्व जो प्रकृति है वह भी इसी प्रकार का है—उसका यह व्यक्त रूप विद्यमान नहीं रहता; क्योंकि यह रूप नित्य नहीं है; किन्तु व्यक्त रूप का लोप हो जाने पर भी विश्व का नाश तो नहीं होता, नितान्त विनाश तो सांख्य-योग में माना ही नहीं गया।[३७] वस्तुतः विद्यमान तत्त्व में किसी अन्य धर्म की उत्पत्ति हो जाना ही परिणाम है।[३८] इस परिणाम के होने पर भी धर्मी (तत्त्व) तो विद्यमान रहता ही है अतः उसे नित्य कहा जाता है। इस प्रकार नित्य तत्त्व दो प्रकार के हैं—एक कूटस्थ नित्य, जिनमें कोई विकार नहीं होता, दूसरे परिणामी नित्य, जिनमें विकार तो होता है; किन्तु मूल तत्त्व नष्ट नहीं होता।

अन्य विचारकों की दृष्टि में धर्म और धर्मी भिन्न-भिन्न हैं। कुण्डल और सुवर्ण दोनों एक ही नहीं। यदि दोनों एक ही हों तो सोने की डली से भी कुण्डल का काम हो जाया करे, परन्तु होता तो नहीं। मिट्टी के लोंदे से जो घट बनता है वह उससे नितान्त भिन्न होता है। इसी प्रकार मिट्टी का लोंदा भी अपने समवायी कारण से भिन्न होता है। कार्यकारण का यह भेद परमाणु-पर्यंन्त किया जा सकता है। फलतः परमाणु या प्रकृति को छोड़ कर स्थूल जगत् के

---

३६. महाभाष्य, पस्पशाह्निक, पृ० ५० (सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे)।

३७. द्र०, तदेतत् त्रैलोक्यं व्यक्तेरपैति। कस्मात्, नित्यत्वप्रतिषेधात्। अपेतमप्यस्ति विनाशप्रतिषेधात्। व्यासभाष्य, योगसूत्र, ३. १३।

३८. अवस्थितस्य द्रव्यस्य पूर्वधर्मनिवृत्तौ धर्मान्तरोत्पत्तिः परिणामः। वही, ३. १३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी धर्म तथा धर्मी नश्वर हैं—अनित्य हैं। आत्मा आदि नित्य हैं, नितान्त नित्य। किन्तु उनमें भी गुणविशेष के कारण विशिष्टता का अनुभव किया जाता है; जैसे कोई आत्मा सुखी (सुख-विशिष्ट) है, कोई दुःखी (दुःख विशिष्ट) है। आत्मा में कभी सुख उत्पन्न हो जाता है, कभी नष्ट हो जाता है फिर भी उसमें कोई विकार नहीं होता। गुण में परिवर्तन होता है, गुणी में नहीं। इसी से आत्मा (गुणी) को नित्य कहा जाता है, किन्तु उसके गुण तो नाशवान् हैं। धर्म और धर्मी नितान्त भिन्न हैं, अतः एक के अनित्य होने हर भी दूसरा नित्य होता है। इस प्रकार परिणामी नित्यता नाम का कोई पदार्थ नहीं। कुछ पदार्थ नित्य हैं, कुछ नश्वर—नाशवान् हैं।

ये नाशवान् पदार्थ भी दो प्रकार के देखे जाते हैं—एक तो वे हैं जो पहले क्षण उत्पन्न होते हैं दूसरे क्षण स्थित रहते हैं; किन्तु तीसरे क्षण नाश को प्राप्त हो जाते हैं, जैसे न्याय-वैशेषिक के मत में शब्द, ज्ञान, कर्म आदि हैं। शब्द पहले क्षण उत्पन्न होता है दूसरे क्षण स्थित रहता है और तीसरे क्षण नष्ट हो जाता है।[३९] यही दशा ज्ञान और कर्म (क्रिया) की भी है। इस प्रकार के पदार्थों को त्रिक्षणावस्थायी (तीन क्षण रहने वाले) कहा जाता है। इसके लिये कभी-कभी क्षणिक शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है; किन्तु यह क्षणिकता बौद्धों की अभिमत क्षणिकता से भिन्न है। बौद्ध के मत में क्षणिक वह है जो उसी क्षण उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है अर्थात् क्षणमात्र होने वाला।[४०] उनके मत में उत्पन्न होकर वस्तु एक क्षण भी नहीं ठहरती। अन्य मत में नाशवान् वस्तुएं भी दिन, मास, वर्ष पर्यन्त ही नहीं, शत वर्ष और सहस्र वर्ष तक स्थित रहती हैं। वे नित्य तो नहीं हैं; किन्तु स्थिर हैं। कभी-कभी उनके लिये भी नित्य शब्द का प्रयोग कर दिया जाता है, जैसे नित्याः पर्वताः नित्याः सरितः—पर्वत नित्य हैं, सरिताएँ नित्य हैं।[४१] यहाँ नित्य शब्द का प्रयोग बहुकालस्थायी (बहुत समय रहने वाले) के अर्थ में किया जाता है, सदा रहने वाले के अर्थ में नहीं;[४२] जिस प्रकार लोक में बहुत समय तक रहने वाली सम्पत्ति को अचल सम्पत्ति कह दिया जाता है। इस प्रकार नाशवान् पदार्थ भी दो प्रकार के हैं क्षणिक और स्थिर।

जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है परिणामी वस्तु को भी नित्य मानने वालों के अनुसार तो किसी वस्तु का नाश नहीं होता। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा

३९. द्र०, क्षणिकत्वंच तृतीयक्षणवृत्तिध्वंसप्रतियोगित्वम्। न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, कारिका २७।
४०. क्षणिकत्वं पूर्वापरभागविकलकालकलामात्रावस्थायित्वम्। न्या० वा० ता०, पृ० ५४२।
४१. द्र०, उद्योतकर, न्यायवार्त्तिक, २. १. ६९।
४२. मि०, वही, २.१.६९.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है—'नाभावो विद्यते सतः ।'[43] किसी वस्तु का कुछ समय या अधिक समय के लिये लोप हो जाता है वह दृष्टि से ओझल हो जाती है, इन चर्म चक्षुओं से दिखलाई नहीं देती तब 'वह वस्तु नष्ट हो गई' ऐसा व्यवहार होने लगता है। वस्तुतः वस्तु नष्ट नहीं होती पानी से भाप बनता है फिर पानी बन जाता है। भाप बन जाने पर पानी नष्ट हो गया' ऐसा कह दिया जाता है। अतः जैसा वैयाकरणों ने माना है अदर्शन ही लोप कहलाता है,[44] उसी प्रकार लोक में भी किसी वस्तु का दृष्टि का विषय न रहना ही नाश कह दिया जाता है। इस दृष्टि से उत्पत्ति का अर्थ है आविर्भाव या अभिव्यक्ति और विनाश का अर्थ है तिरोभाव, जिस प्रकार सुवर्ण में कुण्डल का आविर्भाव और तिरोभाव देखा जाता है, उसी प्रकार सभी कार्यों का कारण से आविभाव (या अभिव्यक्ति) मात्र हुआ करती है और, फिर उसी में तिरोभाव हो जाता है, जिसे नाश कह दिया जाता है, यही तो परिण मवाद है। इसके आगे एक और भी दृष्टि है जिसके अनुसार कार्य का कारण से आविर्भाव भी नहीं होता, केवल कारण में कार्य का आभास (प्रतीति) हुआ करता है, जिस प्रकार मृग को चिलचिलाती धूप में बालू में जल की प्रतीति हो जाती है अथवा हम लोगों को चमकती सीपी (शुक्तिका) में चाँदी (रजत) का आभास हो जाता है। इस दृष्टि से केवल कारण सत् है नित्य है कार्य तो अध्यास मात्र है भ्रान्ति है। हाँ, कोई अध्यास भी बार-बार, निरन्तर हो सकता है। वह स्वरूपतः नित्य नहीं होगा केवल प्रवाह से नित्य होगा। वेदनित्यता के विषय में विचार करते हुए इन सभी दृष्टिकोणों को भुलाया नहीं जा सकता।

३. वेदनित्यता और उसका महत्त्व

वेद के स्वरूप को सामान्यतः दो रूपों में समझा जाता है शब्दरूप में तथा ज्ञानरूप में। यदि यह माना जाये कि शब्द अनित्य हैं वे ज्ञान के अनुसार उत्पन्न होते और नष्ट होते हैं, तो शब्दात्मक वेद स्वरूपतः नित्य कैसे होगा, फिर यह हो सकता है कि गुरु-शिष्य परम्परा से वेद अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहें; किन्तु प्रलय काल में तो गुरुशिष्य-परम्परा नहीं रहती। यदि प्रलय के पश्चात वेद भी गुरु-शिष्य-परम्परा उसी प्रकार चले तब वेद को प्रवाह से नित्य कहा जा सकता है।

प्रलय के अनन्तर सृष्टि के आदि में वेद के शब्द-वाक्य आदि पूर्व सर्ग के समान तब हो सकते हैं, जबकि कोई ज्ञानी ऐसा हो जो सर्ग के आदि में पूर्व के समान

४३. श्रीमद्भगवद्गीता, २. १६।
४४. अदर्शनं लोपः। पा०, २. १. ५६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही वेद की रचना कर सके। ऐसा स्वीकार करके ही शब्दरूप वेद को प्रवाह से नित्य कहा जा सकता है। यह तभी सम्भव है जब ज्ञान को क्षणिक न माना जाये, किसी का ज्ञान चाहे वह स्मृति रूप में या संस्कार रूप में ही क्यों न हो प्रलय काल में भी विद्यमान रहे। साथ ही वह ज्ञानी विविध ज्ञानों का आश्रय भी हो। कम से कम उन ज्ञानों का जो वेद में उपलब्ध होते हैं। इन सभी बातों को स्वीकार करने के लिये किसी नित्य सर्वज्ञ की स्वीकृति अनिवार्य है।

दूसरी ओर, वेद को नित्य सिद्ध करने के लिये उनके वर्ण, शब्द और वाक्य सभी नित्य माने जायें शब्दार्थ-सम्बन्ध को नित्य माना जाये, सृष्टि और प्रलय की बाधा को न स्वीकारा जाये। तब यह कहा जा सकता है कि शब्दरूप वेद सदा से ऐसे ही चल रहा है, गुरु-शिष्य परम्परा से ही इसका अध्ययन-अध्यापन होता रहा है, होता रहेगा। इन मन्तव्यों को सिद्ध करने के लिये सामग्री जुटानी पड़ेगी। वेदों की प्रामाणिकता का प्रतिपादन करने के लिये उनकी नित्यता एवं अपौरुषेयता भी सिद्ध करनी होगी। जिससे नित्य निर्दोष वेद की प्रामाणिकता असन्दिग्ध बनी रहे। वेद-नित्यता को सिद्ध करने के लिये उपर्युक्त प्रयास ही पर्याप्त नहीं है। प्राचीन काल से ही वेद-नित्यता के विरोध में जो अनेक युक्ति और तर्क प्रस्तुत किये जाते रहे हैं उनका निराकरण करना भी अनिवार्य है।

अब प्रश्न यह है कि किन्हीं विचारकों ने वेदनित्यता को सिद्ध करने के लिये इतना प्रयास क्यों किया है। इसका उत्तर खोजने के लिये मीमांसा शास्त्र के ग्रन्थों का अनुशीलन करना होगा। जैसा कि आगे विस्तृत विवेचन किया जाएगा, मीमांसा सूत्र में पूर्वपक्ष की ओर से शब्द की अनित्यता दिखलाकर सिद्धान्त में शब्द की नित्यता सिद्ध की गई है।[४५] इस शब्दनित्यताधिकरण की शाबरभाष्य में विशद व्याख्या है। शाबर भाष्य पर वार्तिक लिखते हुए कुमारिल भट्ट ने इस प्रकार बतलाया है—

आक्षेप—यदि शब्द को अनित्य मानने पर भी शब्द से अर्थ का ज्ञान हो जाता है और अनादि व्यवहार जान लिया जाता है तो शब्द की नित्यता क्यों सिद्ध की जा रही है ?[४६]

---

४५. मीमांसा सूत्र, १. १. ६-२३।

४६. यद्यनित्यत्वपक्षेऽपि शब्दादर्थोऽवगम्यते।
अनादिर्व्यवहारश्च नित्यत्वं किं नु साध्यते॥ श्लोकवार्त्तिक (वाराणसी, १९७८), शब्द-नित्यताधिकरण-१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिहार :—ठीक है, वे (शब्द को अनित्य मानने वाले) भी ऐसा मानते हैं, किन्तु दूसरों के स्वीकार करने मात्र से ही तो किसी तथ्य का निश्चय नहीं हो जाता। अतः यहाँ न्याय द्वारा परीक्षा की जाती है।[४७] जब युक्ति से यह निश्चित कर दिया जाता है कि क्षणिक शब्द अर्थ-बोध में समर्थ नहीं है तभी स्पष्टतः वेदार्थ का ज्ञान हो सकता है।[४८] उत्पन्न होने वाली वस्तु के आश्रय से अनादि व्यवहार को सिद्ध नहीं किया जा सकता। घट आदि में जो व्यवहार देखा जाता है वह तो घटत्व आदि जाति में है। उसे व्यक्ति के आश्रित समझना तो भ्रम ही है।[४९] इसलिये वेद की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिये यहाँ शब्द की नित्यता सिद्ध की जा रही है।[५०]

इस अधिकरण के आरम्भ में ही आक्षेप को स्पष्ट करते हुए न्यायरत्नाकर में कहा गया है—'वेदप्रामाण्याय हीदं नित्यत्वप्रतिपादनम्'[५१]—यह शब्द की नित्यता का कथन वेद-प्रामाण्य की सिद्धि के लिये किया जा रहा है। इस प्रकार शब्द, अर्थ तथा सम्बन्ध की नित्यता सिद्ध करके यहाँ पदसंघात रूप वाक्य की नित्यता भी सिद्ध की गई है।[५२] अतः वेदनित्यता की सिद्धि वेदप्रामाण्य का साधन कही जा सकती है।

शास्त्रदीपिका से यह भी प्रतीत होता है कि वेद-नित्यता द्वारा अपौरुषेयता की सिद्धि होती है और अपौरुषेय होने से वेद में किसी प्रकार के दोष की आशङ्का नहीं हो सकती अतः उसका स्वतः प्रामाण्य सिद्ध हो जाता है। वेद में पौरुषेयता का सम्बन्ध, तीन प्रकार से सम्भव है—पद-पदार्थ के सम्बन्ध द्वारा, वाक्य-वाक्यार्थ के सम्बन्ध द्वारा अथवा ग्रन्थ के कर्तृत्व द्वारा। यह तीनों प्रकार का पुरुष का सम्बन्ध वेद में नहीं बन सकता, यह मीमांसा के तर्कपाद में दिखलाया

---

४७. सत्यमिच्छन्ति तेऽप्येवं न्यायस्तत्र परीक्ष्यते।
न पराभ्युपगत्यैव प्रामाण्यमवतिष्ठते॥ वही, श्लोक २।

४८. यदा हि क्षणिकः शब्दो न शक्तोऽर्थविधारणे।
युक्त्यावधार्यते तत्र निर्मला वेदधीर्भवेत्॥ वही, श्लोक ३।

४९. द्र०, अनादिव्यवहारत्वमादिमद् वस्तुसंश्रयम्।
प्रत्याख्येयम्, घटत्वादिजातौ व्यक्तिभ्रमो हि सः। वही, श्लोक ५।

५०. तस्माद् वेदप्रमाणार्थं नित्यत्वमिह साध्यते। वही, श्लोक ७।

५१. पार्थसारथिमिश्र, न्यायरत्नाकर, वही, श्लोक १।

५२. द्र०, सम्बन्धाकरणन्यायाद् वक्तव्या वाक्यनित्यता। वही, वाक्याधिकरण, श्लोक २६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है। औत्पत्तिक सूत्र द्वारा पद-पदार्थ के सम्बन्ध को नित्य कहा गया है, वाक्यार्थ तो पदार्थमूलक ही होता है अतः पद-पदार्थ के नित्य होने पर वाक्य-वाक्यार्थ-सम्बन्ध नित्य ही है। और, अन्तिम अधिकरण में वेद ग्रन्थ की नित्यता सिद्ध की गई।[५३] इस प्रकार वेदनित्यता के द्वारा वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध होती है।

मानमेयोदय में कई स्थलों पर वेदनित्यता की सिद्धि को मीमांसा सम्प्रदाय के अपरिहार्य मन्तव्य के रूप में दिखलाया गया है। पदों की नित्यता को सिद्ध करके वहाँ कहा गया है—ऐसे पद का पदार्थ के साथ बोध्य-बोधक-भाव सम्बन्ध भी नित्य ही है। किन्तु तार्किक कहते हैं—पद और पदार्थ का सम्बन्ध सांकेतिक है, ईश्वर यहाँ सङ्केत-कर्ता है। तार्किकों के अभिमत ईश्वर के निराकरण से ही उनके इस मत का भी निराकरण समझ लेना चाहिए।[५४] शब्द-नित्यता का उपसंहार करते हुए वहाँ कहा गया है—यदि शब्द अनित्य होंगे तो शब्दात्मक वेदों की नित्यता इसी प्रकार हास्यास्पद हो जायेगी जिस प्रकार शशशृङ्ग का प्रहार।[५५]

यहाँ वेदसम्प्रदाय के विच्छेद से बचने के लिये ही लोकों का आत्यन्तिक नाश किं वा सृष्टि प्रलय नहीं माने जाते—

लोकस्यात्यन्तिको नाशो वैदिकानां न संमतः।
महतां वेदमार्गाणां स्रोतोभङ्गप्रसङ्गतः।[५६]

इस प्रकार वेदनित्यता वेद की अपौरुषेयता का साधन है अथवा वेद की अपौरुषेयता को ही इस शब्द द्वारा प्रकारान्तर से कहा जाता है। इसी हेतु अनेक दार्शनिक सम्प्रदायों ने यह कह दिया है कि पूर्वमीमांसा में वेदनित्यता से ही वेद-प्रामाण्य स्वीकारा गया है। न्यायभाष्य में कहा गया है—नित्यत्वाद् वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यादित्ययुक्तम्।[५७] इसी प्रकार वेदान्तपरिभाषा का कथन है—'अस्माकं तु मते वेदो न नित्यः उत्पत्तिमत्त्वात्'।[५८]

---

५३. शास्त्रदीपिका, १. १. ५ (औत्पत्तिक सूत्र०)।
५४. नारायण, मानमेयोदय (अड्यार, मद्रास, १९७५), पृ० २३२।
५५. अनित्यत्वे हि शब्दानां शशशृङ्गप्रहारवत्।
शब्दात्मकानां वेदानां नित्यत्वं हास्यतां व्रजेत्॥ वही, पृ० २३३।
५६. वही, पृ० १७४।
५७. वात्स्यायनभाष्य, २.१.६९।
५८. वेदान्तपरिभाषा, आगम परिच्छेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. वाङ्मय में वेदनित्यता का निरूपण

भारतीय वाङ्मय के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि यहाँ वेदों की उत्पत्ति, नाम तथा संख्या आदि का वेद मन्त्रों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी निरूपण किया गया है। वहाँ कुछ सन्दर्भ ऐसे भी आए हैं जिनसे विद्वानों ने वेदनित्यता का अनुमान किया है। इसी प्रकार वेदाङ्गों में भी कुछ ऐसे सन्दर्भ हैं जिनमें इन विषयों की चर्चा हुई है। स्मृतियाँ, वाल्मीकिरामायण, महाभारत तथा पुराणों में भी इस विषय के कुछ उल्लेख मिलते हैं। साथ ही कौटिल्य के अर्थशास्त्र, चरक-सुश्रुत तथा भरत के नाट्यशास्त्र में भी इन विषयों में से कुछ के सन्दर्भ देखे जा सकते हैं जिनका आगे निरूपण किया जायेगा। फिर भी ये सभी विषय परवर्ती वाङ्मय में अधिक स्पष्ट हुए हैं। विशेष रूप से इन विषयों पर भारतीय दर्शन के ग्रन्थों में विचार किया गया है।

भारतीय दर्शन के किस सम्प्रदाय में प्रथमतः वेदोत्पत्ति तथा वेद-नित्यता आदि के विषय में विचार किया गया है यह निश्चितरूप से कहना कठिन है। न तो दर्शनों के विकास का कालक्रम विवाद से परे है और न ही यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि किस दर्शन-ग्रन्थ की सर्वप्रथम रचना हुई होगी। भारत का सांस्कृतिक इतिहास भी इस विषय को सर्वसम्मत रूप से नहीं बतला सकता। वस्तुतः प्राचीन इतिहास अथवा प्रागैतिहासिक काल के विषय में अनुमान और कल्पनाओं का ही सहारा लिया जा सकता है। उसी प्रकार प्रस्तुत विषय में भी कुछ अनुमान ही किया जा सकता है।

दर्शनशास्त्र के सूत्र-ग्रन्थों में मीमांसासूत्र और ब्रह्मसूत्र को सबसे प्राचीन माना जाता है। सूत्रों के अर्थ जानने का साधन परवर्ती भाष्य या व्याख्याएं ही हैं। उन्हीं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूत्र का अर्थ क्या है? मीमांसा के एक सूत्र में कहा गया है—'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः'[५९] इस का अर्थ करते हुए शाबर भाष्य में कहा गया है—'औत्पत्तिक इति नित्यं ब्रूमः'[६०] अर्थात् औत्पत्तिक शब्द का अर्थ नित्य है, यह हम कहते हैं। इसी प्रकार मीमांसासूत्र में शब्द की नित्यता सिद्ध करने के लिये कहा गया है—'नित्यस्तु स्यादर्शनस्य परार्थत्वात्'[६१]— शब्द नित्य है, क्योंकि इसका दर्शन अर्थात् उच्चारण

५९. मीमांसासूत्र, १.१.५।

६०. शाबरभाष्य, वही, १.१.५।

६१. मीमांसासूत्र, १.१.१८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों के लिये होता है। व्याख्याकारों का विचार है कि शब्द की नित्यता और इसी प्रकार पद-पदार्थ-सम्बन्ध आदि की नित्यता सभी वेद की नित्यता का प्रतिपादन करने के लिये दिखलाई गई हैं।

मीमांसासूत्रों में वेद की नित्यता सिद्ध करने के लिये एक अधिकरण[६२] भी रखखा गया है जिसे परवर्ती विद्वानों ने 'वेदनित्यता+अधिकरण' नाम दिया है।[६३] इस अधिकरण में नित्य शब्द का प्रयोग तो नहीं किया गया, परन्तु पूर्वपक्षी की ओर से 'अनित्यदर्शनाच्च'[६४] यह अवश्य कहा गया है। मीमांसा सम्प्रदाय के परवर्ती ग्रन्थों में अनेक युक्तियों के द्वारा वेदनित्यता को सिद्ध किया गया है जिसका आगे विवेचन किया जायेगा। सम्भवतः भारतीय दर्शन का यह एक ऐसा सम्प्रदाय है जो आरम्भ से लेकर परवर्ती व्याख्याओं तक किसी न किसी रूप में वेद-नित्यता को स्वीकारता रहा है। यहाँ वेद को अनादि नित्य तथा अपौरुषेय माना गया है। अतः वेदोत्पत्ति के निरूपण का प्रश्न ही नहीं उठता।

अन्य वैदिक दर्शनों के विषय में विचार करने से प्रतीत होता है कि ब्रह्मसूत्र में 'अत एव च नित्यत्वम्'[६५] आदि में वेद-नित्यता का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के सूत्रों की व्याख्या में यह भी स्पष्ट किया गया है कि प्रलयकाल में वेद ब्रह्म में लीन हो जाते हैं और फिर सृष्टि के आरम्भ में पूर्व सर्ग के अनुसार उनकी रचना की जाती है।[६६] इस प्रकार वेद प्रवाह से नित्य हैं, स्वरूप से नहीं। सम्भवतः इसी आधार पर अद्वैत वेदान्त के परवर्ती व्याख्याकारों ने यह कह दिया है कि हमारे मत में वेद नित्य नहीं।[६७] फिर भी, इनके विवेचन से यह स्पष्ट है कि ये सभी वेद को प्रवाह रूप से नित्य मानते ही हैं। वेद की अपौरुषेयता का तो वेदान्त के सभी विद्वानों ने प्रतिपादन किया ही है। हाँ, यह अपौरुषेयता मीमांसक की अपेक्षा भिन्न प्रकार की है।

इसी प्रकार सांख्य सम्प्रदाय में भी वेद की नित्यता न मानकर भी उसकी अपौरुषेयता स्वीकारी गई है। सांख्यसूत्रों में वेद-नित्यता का निराकरण किया

---

६२. द्र०, वही, १.१.२७-३२।

६३. द्र०, श्लोकवार्त्तिक, पृ० ६६६, ६७२।

६४. मीमांसासूत्र, १.१.१८।

६५. ब्रह्मसूत्र, १.३.२६।

६६. एवं य एव वेदा अस्मिन् कल्पे त एव कल्पान्तरे। भामती, ब्रह्मसूत्रभाष्य, १.१.३०।

६७. द्र०, वेदान्तपरिभाषा, आगम परिच्छेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है, ऐसा व्याख्याओं से प्रतीत होता है।[६८] वहाँ वेद को कई प्रसङ्गों में अपौरुषेय कहा गया है और वेद की पौरुषेयता का निराकरण भी किया गया है। सांख्यकारिका में वेद की नित्यता या अपौरुषेयता का उल्लेख नहीं किया गया, किन्तु इसकी विविध व्याख्याओं में अपौरुषेयता का निरूपण किया गया है, नित्यता का नहीं। फिर भी, यह विचारणीय ही है कि सांख्य सम्प्रदाय की दृष्टि से अपौरुषेयता का क्या अभिप्राय है।

वैदिक दर्शनों के अन्य सम्प्रदाय भी वेद को स्वरूपतः नित्य नहीं मानते, योगसूत्र में इस विषय का कोई संकेत नहीं मिलता; किन्तु व्यासभाष्य तथा इसकी व्याख्या तत्त्ववैशारदी एवं योगवार्त्तिक से इस विषय में कुछ सामग्री उपलब्ध होती है। उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि योग की दृष्टि में वेद ईश्वरप्रणीत हैं।[६९] न्यायसूत्र में तथा न्यायभाष्य में वेदों को आप्तोपदेश कहा गया है।[७०] सूत्र में श्रुति ब्राह्मण आदि का प्रयोग तो हैं; किन्तु वेदोत्पत्ति आदि के विषय में स्पष्टतः नहीं कहा गया। परवर्ती व्याख्याकारों ने स्पष्टतः वेदों को ईश्वरोक्त कहा है।[७१] साथ ही वेदों की अनित्यता का प्रतिपादन किया है।[७२] और, यह भी दिखलाया है कि प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में ईश्वर वेदों की रचना करता है। वैशेषिक सूत्रों में वेद को बुद्धिपूर्वक रचना माना गया है।[७३] इसी प्रकार यह भी कहा गया है—'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'[७४] यहाँ तद् (उसके) इस शब्द की व्याख्याकारों ने विविध व्याख्याएँ की हैं। किन्हीं के अनुसार यह शब्द ईश्वर के लिए आया है। यदि यह अर्थ माना जाये तो वेद ईश्वरोक्त हैं यह वैशेषिकसूत्रकार का अभिप्राय समझा जा सकता है। परवर्ती व्याख्याओं के अनुशीलन से यही वैशेषिक सम्प्रदाय का मन्तव्य प्रतीत होता है। फिर भी, इस विषय में आगे अनुसन्धान करना उपयोगी होगा। इस प्रकार योग, न्याय तथा वैशेषिक सम्प्रदायों में वेदोत्पत्ति

---

६८. नापौरुषेयत्वात् नित्यत्वम् अङ्कुरादिवत्। सांख्यसूत्र, ५.४८ तथा प्रवचनभाष्य।

६९. द्र०, व्यासभाष्य, तत्त्ववैशारदी तथा योगवार्त्तिक, योगसूत्र, १.२४,२५।

७०. द्र०, तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्। २.१.६९।

७१. द्र०, वेदे तु परमाप्तश्रीमहेश्वरेण कृतं सर्वमेव वाक्यं प्रमाणम्। तर्कभाषा, शब्दप्रमाण, पृ० १३४।

७२. द्र०, न्यायवार्त्तिक, २.१.६९।

७३. बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे। वै०सू०, ६.१.१।

७४. वही, १.१.३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रवाह ही विवेचनीय है, अनादि नित्यता नहीं। इसी प्रकार यहाँ वेद की ईश्वरोक्तता विचार का विषय हो सकती है, अनादि नित्यता नहीं। किञ्च, जिनके मत में ईश्वरोक्तता का अर्थ है सामान्य पुरुष के द्वारा अनुक्त अथवा अपौरुषेय उनकी दृष्टि से यहाँ अपौरुषेयता भी कही जा सकती है।

जो दार्शनिक सम्प्रदाय वेद को प्रमाण ही नहीं मानते उनकी दृष्टि में वेद न नित्य है न अपौरुषेय है, न ईश्वरोक्त है। ऐसे दर्शन अवैदिक दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके ग्रन्थों में विशेष रूप से वेद की अपौरुषेयता का निराकरण किया गया है।[७५] किन्हीं स्थलों पर वेद की ईश्वरोक्तता का भी खण्डन वहाँ मिलता है।[७६] वे महाभारत आदि ग्रन्थों के समान ही किसी पुरुष को वेदों का कर्त्ता मानते हैं और उस पुरुष को सर्वथा आप्त न मान कर वेदों की यथार्थता को भी स्वीकार नहीं करते।[७७]

ऐसा प्रतीत होता है कि वेद-विरोधियों के आक्षेपों का परिहार करने के लिये वेदानुयायियों ने वेद की प्रामाणिकता सिद्ध की थी, वेद को स्वतः प्रमाण मानने वालों ने इसकी अपौरुषेयता सिद्ध की, नित्यता स्वीकार की। दूसरी ओर वेद को परतः प्रमाण मानने वालों ने इसे ईश्वरोक्त=ईश्वर-प्रणीत सिद्ध किया। ये सभी वेदानुयायी भी एक दूसरे के विचारों से प्रभावित होते रहे। फलतः अपौरुषेयता का अर्थ (सामान्य) पुरुष द्वारा अप्रणीत मात्र रह गया। जिसकी मीमांसकों, वेदान्तियों और नैयायिकों ने भिन्न-भिन्न व्याख्याएं कीं। इसी प्रकार वेद-नित्यता की भी पृथक्-पृथक् व्याख्याएं हुईं और उत्तरकाल में अनादि नित्यता तथा प्रवाह-नित्यता के रूप में इसका भेद किया जाने लगा। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाये तो प्रवाह-नित्यता में भी वेद अनादि ही ठहरते हैं, अन्तर केवल इतना है कि प्रलयकाल में ये ईश्वर या ब्रह्म में बीज रूप से रहते हैं जब कि मीमांसक की अभिमत नित्यता में ये सदा से इसी रूप में हैं, इसी रूप में रहेंगे। कारण, वह सृष्टि और प्रलय को स्वीकार नहीं करता।

५. प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय

वेद विरोधी मतों के प्रतिष्ठित होने से पूर्व वेदों की प्रामाणिकता को नतमस्तक होकर स्वीकारा जाता रहा; किन्तु वेद-विरोध की मति उत्पन्न हो जाने

---

७५. द्र०, आगे, परि० ४, अनु० १।

७६. द्र०, आगे, परि० ४, अनु० १ (ग)।

७७. द्र०, आगे, परि० ४, अनु० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर वेदों की प्रामाणिकता में प्रश्न चिह्न लगाया जाने लगा। भारतीय इतिहास में यह कौनसा समय रहा होगा? यह निश्चित रूप से कहना कठिन है और यह भी कौन जाने कि किस वेद-विरोधी ने सर्वप्रथम वेद की प्रामाणिकता को चुनौती दी। उपलब्ध वाङ्मय से तो केवल यही प्रतीत होता है कि चार्वाक, बौद्ध, जैन जैसे मतों ने वेद का विरोध किया था। तभी वेद के अनुयायियों ने उस विरोध का सामना किया। उस विरोध तथा विरोध के प्रतिकार के कुछ संकेत भारतीय वाङ्मय में विद्यमान हैं। चार्वाक के नाम से जो कुछ वचन आज प्रचलित हैं उन में वेद-विरोध का स्वर सुनाई देता है। इसी प्रकार बुद्ध के वचनों के रूप में प्रसिद्ध पालि साहित्य में भी उसकी कुछ झलक देखी जा सकती है। इस विरोध का प्रतिकार वेद के अनुयायियों ने किया था। उसकी आरम्भिक झलक स्मृति तथा महाभारत आदि में प्राप्त होती है तथा इसका व्यवस्थित विवेचन भारतीय दर्शन के ग्रन्थों में उपलब्ध होता है जिनका विश्लेषण यहाँ किया जा रहा है।

यहाँ वेद-मन्त्रों से लेकर दर्शनशास्त्र के परवर्ती ग्रन्थों तक के आधार पर यह विचार करने का प्रयास किया जा रहा है कि वेद-स्वरूप, वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता के विषय में किस-किस प्रकार का विचार किया गया है। प्रथमतः दर्शनेतर वाङ्मय का अनुशीलन करना अपेक्षित है। यद्यपि यहाँ इन विषयों का निरूपण अल्प मात्रा में ही उपलब्ध होता है तथापि कुछ तथ्य मिल ही जाते हैं। वेद-मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद्, वेदाङ्ग तथा स्मृति, महाभारत और पुराण आदि में उन तथ्यों को खोजने का प्रयास किया जा रहा है। ज्ञात होता है कि वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री यहाँ विद्यमान है।

वेदोत्पत्ति के विषय में वेद-विरोधी मतों में कुछ विचार किया जाता रहा है; किन्तु वह प्रायः वेदवादियों की युक्तियों के निराकरण में ही विशेष तत्पर है, चार्वाक, बौद्ध और जैन ग्रन्थों में वेदोत्पत्ति सम्बन्धी जो अनेक विचार विद्यमान हैं, यहाँ विशेष रूप से उनके आधार पर ही इस विषय का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। एतत्सम्बन्धी कतिपय विचार वेद-प्रामाण्य-मीमांसा के प्रसंग में भी प्रस्तुत किये जा चुके हैं।[७८] वेद के अनुयायियों में जो विद्वान् वेद की उत्पत्ति का निरूपण करते हैं अथवा वेद की नित्यता सिद्ध करते हैं उनके विचारों का विशद विवेचन करना भी यहाँ अभीष्ट रहा है।

---

७८. श्रीनिवास शास्त्री, वेद प्रामाण्य-मीमांसा तथा ऋषि दयानन्द (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र १९८०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपौरुषेयता वेद-प्रामाण्य का प्रमुख आधार रही है। कैसे ? मनुष्य अल्पज्ञ है, राग-द्वेष से युक्त है अतः मनुष्य (पुरुष) के वचनों में दोष भी हो सकते हैं, वे अप्रामाणिक भी हो सकते हैं। यदि वेद पुरुषकृत हैं तो इनकी यथार्थता में शङ्का बनी रहेगी, इनका असन्दिग्ध प्रामाण्य सिद्ध न हो सकेगा। अतः वेद अपौरुषेय हैं, यह मानना आवश्यक प्रतीत होता है। किन्तु प्रश्न यह है, देखा जाता है कि महाभारत आदि किसी पुरुष ने बनाये हैं, इसी प्रकार वेद भी किसी पुरुष की कृति होने चाहियें। इसके उत्तर में कहा गया है कि वेद का निर्माता कोई पुरुष होता तो हमें या हमारे पूर्वजों को उसका पता चला होता, किन्तु सदा से गुरु-शिष्य-परम्परा से वेद इसी प्रकार कर्ता का स्मरण किये बिना पढ़े जाते रहे हैं, अतः इनका कोई कर्ता नहीं ये अपौरुषेय हैं। वेद सदा से इसी प्रकार चले आ रहे हैं इसके लिये दो बातें सिद्ध करनी होंगीं : (१) वेद नित्य हैं, कभी नष्ट नही हुए न नष्ट होंगे; फलतः (२) सृष्टि-प्रलय नहीं होते हैं। मीमांसा-सम्प्रदाय को ये बातें अभीष्ट हैं। मीमांसा सूत्रों से लेकर परवर्ती ग्रन्थ मानमेयोदय पर्यन्त के एतद्विषयक विचारों का यहाँ विश्लेषण किया जा रहा है।

वेद की अपौरुषेयता से इन्हें दोषरहित मानने वालों में से कुछ विद्वान् ऐसे भी हैं जो इन्हें अपौरुषेय मानकर भी नित्य मानने को तैयार नहीं हैं। कर्त्ता का स्मरण न होने से वे उन्हें अपौरुषेय तो मानते हैं, किन्तु इनकी नित्यता नहीं स्वीकारते, न ही सृष्टि-प्रलय का अभाव मानना ही युक्तिसंगत समझते हैं। इन विद्वानों के भी दो वर्ग हैं एक तो वे हैं जो अपौरुषेयता का अर्थ मानते हैं रचना में पुरुष की स्वतन्त्रता न होना, जैसे अद्वैतवादी कहते हैं कि पुरुष या परमपुरुष सर्वज्ञ है वही प्रत्येक सर्ग के आदि में वेद की पूर्व सर्ग के समान ही रचना किया करता है, वह वेद-रचना में स्वतन्त्र नहीं है। इसीलिये वेद अपौरुषेय कहलाते हैं और वे निर्दोष हैं अतः उनका स्वतः प्रामाण्य सिद्ध ही है। प्रलयकाल में वेद इसी रूप में नहीं रहते, समस्त प्रपञ्च के समान ब्रह्म में लीन हो जाते हैं। इसी हेतु वेद स्वरूपतः नित्य नहीं, प्रवाह से नित्य हैं। वेदान्त के इस प्रकार के विचारों का क्रमिक अध्ययन यहाँ करना अभीष्ट है। इस वर्ग के दूसरे विचारक हैं सांख्य-वादी। उनके भी सूत्र और कारिका से लेकर व्याख्या ग्रन्थों तक में उपलब्ध एतद्विषयक विचारों का अनुशीलन करना वाञ्छनीय है।

दूसरी ओर वेद को अपौरुषेय मानना वेद की प्रामाणिकता के लिये आवश्यक नहीं समझा जाता अपितु आप्तोक्त होने से ही इन्हें प्रमाण माना जाता है। वेद स्वरूपतः नित्य नहीं अपि तु प्रत्येक सृष्टि के आदि में सर्वज्ञ पुरुष द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R 14 SAS-V

इनकी रचना की जाती है। न्याय-वैशेषिक तथा पातञ्जलयोग की यही विचार-धारा दृष्टिगोचर होती है उनका इस प्रकार का विचार सूत्र ग्रन्थों से लेकर परवर्ती स्वतन्त्र ग्रन्थों तक में किस प्रकार विकसित होता रहा, इसका क्रमिक अध्ययन यहां किया जा रहा है। न्यायपरम्परा में उद्योतकर के न्यायवार्त्तिक, वाचस्पति मिश्र की न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका, जयन्त भट्ट की न्यायमञ्जरी तथा उदयनाचार्य की न्यायकुसुमाञ्जलि आदि में एतद्विषयक विचार विशेषतः उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार वैशेषिक-परम्परा के प्रशस्तपाद भाष्य के व्याख्या-ग्रन्थों में इस विषय का निरूपण उपलब्ध होता है। इन सभी ग्रन्थों के प्रासङ्गिक स्थलों का यहाँ विवेचन करना है। जहाँ तक योग-परम्परा का प्रश्न है, व्यास भाष्य तथा उसकी टीकाओं का ही यहाँ अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

पुस्तकालय गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

इन प्राचीन तथा मध्यकालीन ग्रन्थों के आधार पर वेदोत्पत्ति, वेदनित्यता आदि का विवेचन करना इसलिये आवश्यक समझा गया है कि इससे एतद्विषयक भारत की परम्परा पर प्रकाश पड़ता है। साथ ही यह भी विदित होता है कि कोई विचार किस रूप में विकसित होता हुआ कहाँ तक पहुंच गया है। इस विवेचन का एक विशेष महत्त्व और भी है, वह यह कि ऋषि दयानन्द जो यह घोषणा करते हैं कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषियों का जो मत है वही उनका भी मत है,[७९] उनकी इस घोषणा का प्रमाण यहाँ मिल जाता है। ऋषि दयानन्द के वेदनित्यता सम्बन्धी विचारों का यहाँ विस्तृत विवेचन किया ही जा रहा है।

075494

स्वामी जी समन्वयवादी दार्शनिक हैं। वे आर्षग्रन्थों को ही प्रमाण मानते हैं अतः उनके मतों को अर्वाचीन व्याख्याकारों के मत में खोजना उपयोगी न होगा। हां, यह दूसरी वात है कि प्राचीनतम ऋषि-मुनियों के बिचार देश-काल के अनुसार विकसित होते रहे, स्वामी दयानन्द के सामने भी वे विकसित रूप में ही उपस्थित हुए। फलतः उनके विचारों में तथा परवर्ती व्याख्याकारों के विचारों में कहीं-कहीं साम्य अवश्य परिलक्षित होता है।

स्वामी दयानन्द के वेद-संज्ञा, वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता आदि के विषय में जो मन्तव्य हैं उनका अन्यत्र विशद विवेचन किया जा चुका है।[८०] यहाँ उसका

---

७९. 'अब जो वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्तों के माने हुये ईश्वरादि पदार्थ हैं, जिनको कि मैं भी मानता हूँ, सब सज्जन महाशयों के सामने प्रकाशित करता हूँ। स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश (आरम्भ में)।

८०. द्र०, वेद तथा ऋषि दयानन्द, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९७९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यक अङ्ग ही दिया गया है, इस विषय में यह भी उल्लेखनीय है कि वेदों के विषय में स्वामी जी का मन्तव्य महत्त्वपूर्ण कहा जा सकता है : यहाँ केवल मन्त्रभाग या मन्त्रसंहिता को ही वेद कहा गया है। वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता शब्दों की समन्वित व्याख्या करते हुए स्वामी जी ने दोनों का विशद निरूपण किया है। अपने मन्तव्यों के समर्थन में वेदसंहिताओं से लेकर स्मृति तथा दार्शनिक ग्रन्थों से प्रमाण जुटाए हैं। उनके वेदविषयक मन्तव्य भारतीय दर्शन के किसी एक प्रस्थान का अनुसरण नहीं करते, अपितु युक्तिपूर्वक विभिन्न मतों का सामञ्जस्य करते हैं। साथ ही उनके समय तक वेदोत्पत्ति के विषय में जो नवीन मत यूरोपीय विद्वानों ने प्रतिष्ठापित किये थे उनका निराकरण करने का भी उन्होंने प्रयास किया है। उन सभी विषयों पर यथासम्भव प्रकाश डालने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यहाँ वेद मन्त्रों से लेकर स्वामी दयानन्द तक के वेदविषयक कतिपय मन्तव्यों का विश्लेषण किया गया है। विशेषकर वेदसंज्ञा, वेदसंख्या, वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता तथा वेदों की अपौरुषेयता आदि का। साथ ही यहाँ वेद को पुरुष-निर्मित या पुरुष-विशेष-प्रणीत मानने वालों के मत का भी विवेचन किया जा रहा है। इनमें वेदनित्यता एक प्रमुख विचार है सभी विचारों का केन्द्रबिन्दु है। स्वामी दयानन्द ने 'वेदनित्यत्व' के प्रकरण में ही वेद-प्रामाण्य तक का विवेचन प्रस्तुत कर दिया है। साथ ही यह वेदनित्यता वेद की अपौरुषेयता का दृढ़ आधार है। एक मत में वेद की निर्दोषता तथा प्रामाणिकता अपौरुषेयता पर ही निर्भर है। अतः वेदनित्यता को केन्द्रबिन्दु बनाकर विशेषतः स्वामी दयानन्द के कतिपय वेद-विषयक मन्तव्यों पर यहाँ विचार किया जा रहा है। यह अनुसन्धान करने का भी उद्देश्य रहा है कि स्वामी दयानन्द के वेदनित्यता आदि के विषय में जो मन्तव्य हैं वे प्राचीन या मध्यकालीन विचारकों से किस अंश में साम्य या वैषम्य रखते हैं। इन्हीं सब दृष्टियों से इस ग्रन्थ का नाम 'वेदनित्यता तथा ऋषि दयानन्द' ही उपयुक्त समझा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिच्छेद २

मन्त्र-ब्राह्मण तथा वेदाङ्गों में वेदनित्यता

१. वेद-मन्त्रों में वेद-संख्या और वेद-नित्यता :

मन्त्रों में वेद शब्द का कई प्रकार से प्रयोग मिलता है। एक वेद शब्द क्रियावाचक है जिसका अर्थ है—जानता है।[1] दूसरा वेद शब्द दर्भमुष्टि के अर्थ में है। कुछ व्याख्याकारों ने कई वेद-मन्त्रों में उसी का प्रयोग स्वीकार किया है। उदाहरणार्थ—वेदोऽसि येन (यजुर्वेद २.२१) इत्यादि मन्त्र में जो वेद शब्द का प्रयोग हुआ है उवट और महीधर ने इसका अर्थ दर्भमुष्टि किया है।[2] किन्तु स्वामी दयानन्द ने यहां वेद शब्द के जगदीश्वर तथा ऋग्वेदादि वेद दो अर्थ किये हैं। उन्होंने यहाँ यह भी कहा है कि ऋग्वेदादि को वेद इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह ज्ञान का साधन है।[3]

ऋग्वेद में कहीं केवल 'ऋक्' का उल्लेख है,[4] कहीं ऋक् और साम का उल्लेख है;[5] किन्तु वेदों की उत्पत्ति का उल्लेख करते हुए एक मन्त्र में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा छन्दस् (छन्दांसि) की उत्पत्ति दिखलाई गई है।[6] सायण ने यहाँ छन्दांसि का अर्थ 'छन्दांसि गायत्र्यादीनि' (गायत्री आदि छन्द) इस प्रकार किया है।[7] स्वामी दयानन्द ने छन्दांसि का अर्थ अथर्ववेद किया है। अतः उनके अनुसार इस मन्त्र मे चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है।[8] ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका मे उन्होंने कहा है—वेदों के गायत्री आदि छन्दों से युक्त होने

---

१. यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति। ऋग्वेद, १.१६४.३९।

२. द्र०, उवट महीधर भाष्य, यजुर्वेद, २.२१।

३. द्र०, यजुर्वेदभाष्य, २.२१।

४. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्। ऋग्वेद, १.१६४.३९।

५. वही, ५.४४.१४,१५।

६. द्र०, वही, १०.९०.९।

७. द्र०, सायणभाष्य, वही, १०.९०.९।

८. द्र०, यजुर्वेदभाष्य, ३१.७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के कारण फिर छन्दांसि यह पद चतुर्थ 'अथर्ववेद' की उत्पत्ति को प्रकट करता है, यह समझना चाहिए।[९]

जहाँ तक वेदोत्पत्ति तथा वेद-नित्यता का सम्बन्ध है ऋग्वेद के एक मन्त्र में स्पष्टतः यज्ञ से वेदों की उत्पत्ति दिखलाई गई है। वह मन्त्र है—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥[१०]

इस मन्त्र के सायण भाष्य में कहा गया है - उस 'सर्वहुत' पूर्वोक्त यज्ञ से ऋचाएं और साम उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से छन्द अर्थात् गायत्री आदि उत्पन्न हुए। उस यज्ञ से यजुर्वेद भी उत्पन्न हुआ।[११] इस भाष्य में स्पष्टतः चारों वेदों की उत्पत्ति का उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु स्वामी दयानन्द ने इस मन्त्र के भाष्य में कहा है - उस यज्ञ अर्थात् सच्चिदानन्द आदि लक्षण वाले पूर्ण पुरुष से सर्वहुतात्=सब के द्वारा पूजनीय, सब के उपासनीय, सर्वशक्तिमान् परब्रह्म से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद (छन्दांसि) उत्पन्न हुए। चारों वेद उसने ही प्रकाशित किये यह जानना चाहिए।[१२]

यहाँ स्वामी दयानन्द ने दिखलाया है कि यज्ञ विष्णु अर्थात् परमेश्वर है। सर्वहुतः का अर्थ है सब के द्वारा पूजनीय से। मन्त्र में 'तस्मात्' शब्द का दो बार प्रयोग हुआ है। यह इस अवधारण के लिये है कि वेद ईश्वर से ही उत्पन्न हुए हैं। जैसा, ऊपर दिखलाया जा चुका है, यहाँ 'छन्दांसि' शब्द से स्वामीजी ने अथर्ववेद का ग्रहण किया है।[१३] यहाँ स्वामी दयानन्द ने स्पष्टतः वेद मन्त्र के आधार पर वेदों की उत्पत्ति ईश्वर से दिखलाई है। आचार्य शङ्कर ने भी वेदों का कारण ब्रह्म को ही बतलाया था।[१४]

---

९. वेदानां गायत्र्यादिच्छन्दोन्वितत्वात्पुनश्छन्दांसीति पदं चतुर्थस्याथर्ववेदस्योत्पत्तिं ज्ञापयतीत्यवधेयम्। ऋग्वेदादि०, (रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, १९६७), पृ० ११।

१०. ऋग्वेद, १०.९०.९।

११. द्र०, सायणभाष्य, ऋग्वेद, १०.९०.९।

१२. ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्तिविषय, पृ० ११ (सं०)।

१३. द्र०, वही, पृ० ९।

१४. द्र०, ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य, १.१.३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेद के एक मन्त्र[१५] में 'वाचा विरूपनित्यया' शब्दों का प्रयोग हुआ है। वहां सायण ने कहा है—'नित्यया=उत्पत्तिरहितया, वाचा=मन्त्ररूपया'। इस से विदित होता है कि सायण की दृष्टि में वेद के इन शब्दों द्वारा मन्त्ररूप वाणी की नित्यता कही गयी है। स्वामी दयानन्द के वेद-नित्यत्व सम्बन्धी विचारों का आगे विशद निरूपण किया जायेगा।

यजुर्वेद में वेद शब्द का प्रयोग कई स्थलों पर हुआ है, जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है 'वेदोऽसि' (२.२१) इत्यादि मन्त्र में भी किन्हीं व्याख्याकारों के अनुसार वेद शब्द से ऋग्वेद आदि वेद का ग्रहण होता है। एक अन्य मन्त्र में वेदेन शब्द आया है।[१६] यहां उवट ने वेदेन शब्द का अर्थ परिज्ञान या त्रयी विद्या किया है।[१७] स्वामी दयानन्द ने वेदेन शब्द का अर्थ ईश्वर द्वारा प्रकाशित वेद-चतुष्टय किया है।[१८] यजुर्वेद में अनेक स्थलों पर वेदों का नामतः उल्लेख मिलता है। कहीं केवल यजुर्वेद का नाम है।[१९] अन्यत्र ऋक्, साम, यजुः का उल्लेख किया गया है।[२०] कई स्थलों में अथर्वन् तथा अङ्गिरस् आदि शब्दों का प्रयोग भी मिलता हैं, जैसे 'त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत' यहां उवट ने 'अथर्वा=अतनवान् प्राणः' इस प्रकार अथर्वा का अर्थ प्राण किया है।[२१] महीधर ने ऋषि या प्राण किया है। स्वामी दयानन्द ने अथर्वा का अर्थ अहिंसक किया है।[२२] इसी प्रकार—'त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहाहितम्' (यजुर्वेद १५.२८) में अङ्गिरसः शब्द का प्रयोग किया गया है। उवट के अनुसार इसका अर्थ ऋषि है और महीधर के अनुसार अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न ऋषि है। स्वामी दयानन्द के अनुसार इसका अर्थ 'विद्वान्' है। अन्य कई सन्दर्भों में भी अथर्वन् तथा अङ्गिरस् शब्दों का प्रयोग मिलता है।[२३] उन स्थलों पर भी इसी प्रकार के अर्थ भाष्यकारों ने किये हैं।

---

१५. ऋग्वेद, ८.७५.६।

१६. वेदेन रूपे व्यपिबत्सुतासुतौ प्रजापतिः। यजुर्वेद, १९.७८।

१७. वेदेन=परिज्ञानेन त्रय्या वा विद्यया। यजुर्वेदभाष्य, १९.७८।

१८. ईश्वरप्रकाशितेन वेदचतुष्टयेन। यजुर्वेदभाष्य, १९.७८।

१९. यजुर्भिराप्यन्ते ग्रहाः। यजुर्वेद, १९.२८।

२०. (क) ऋक्सामाभ्यां संतरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम। वही, ४.१।
(ख) ऋचो नामास्मि यजूंषि नामास्मि सामानि नामास्मि।
वही, १८.६७। इसी प्रकार यजुर्वेद ३४.५; ३६.१ आदि में भी।

२१. अथर्वाख्य ऋषिः प्राणो वा। यजुर्वेदभाष्य, ११.३२।

२२. द्र०, यजुर्वेदभाष्य, १५.२२।

२३. द्र०, यजुर्वेद, १९.५०; ३४.१२, १६, १७ इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्हीं मन्त्रों मे यजुर्वेद आदि के साथ छन्दस् शब्द का प्रयोग भी मिलता है। उदाहरणार्थ, एक स्थल पर यजुः और साम के साथ 'छन्दोभिः' का प्रयोग है।[२४] और अन्य स्थल पर वेदों की उत्पत्ति का निरूपण करते हुए ऋक्, यजुः, साम तीनों के साथ छन्दस् शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है वहां 'छन्दांसि' का अर्थ स्वामी दयानन्द ने अथर्ववेद किया है।

यजुर्वेद में कहीं स्पष्टतः वेद चार हैं इस प्रकार का कथन दृष्टिगोचर नहीं होता। जैसा कि आगे दिखलाया जायेगा उत्पत्ति के प्रसङ्ग में चारों वेदों के नाम स्वीकारे जायें तो यजुर्वेद के आधार पर वेदों की संख्या चार कही जा सकती है। इसी प्रकार 'चत्वारि श्रृङ्गा[२५]' इत्यादि मन्त्र के भाष्य मे स्वामी दयानन्द ने ही नहीं, अपितु निरुक्तकार यास्क ने भी चार वेद यह अर्थ किया है। इससे यह समझा जा सकता है कि यजुर्वेद में वेदों की संख्या चार कही गई है।

यहां वेदों की उत्पत्ति तथा नित्यता के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वेदोत्पत्ति—विषयक जो मन्त्र आया है वही यजुर्वेद में भी है।[२६]

सामवेद में भी वेद शब्द का प्रयोग मिलता है। साथ ही यहाँ ऋक् और साम आदि का भी उन मन्त्रों में प्रयोग है जिनमें ऋग्वेद में उपलब्ध होता है।[२७]

अथर्ववेद में अनेक स्थलों पर वेद शब्द का प्रयोग हुआ है। उनमें से कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ व्याख्याकारों की दृष्टि में वेद शब्द दर्भमुष्टि के लिये आया है, जैसे 'वेदेः स्वस्तिर्द्रुघणः स्वस्तिः' (७.२८.१)। किन्तु कई स्थलों पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेद शब्द यजुर्वेद आदि के लिये आया है, जैसे —'यस्मिन् वेदा निहिता विश्वरूपाः' (४.३५ ६६), 'वेदः पृष्टः शचीयते' (७.५५.२), 'ब्रह्म प्रजापतिधाता लोका वेदाः सप्त ऋषयोऽग्नयः' (१९.९.१२) 'स्तुता मया वरदा वेदमाता' (१९.७१.१), तथा यस्मात् कोशादुदभराम वेदम्' (१९.७२.१)। यहाँ

---

२४. द्र०, वही, १६.२८।

२५. वही, १७.९१।

२६. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ वही, ३१.७। ऋग्वेद, १०,९०.९।

२७. सामवेद, मन्त्र, १८२०, ५८२७
ऋग्वेद, ५.४४.१४,१५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'ऋक्' या 'ऋचः' शब्द का भी अनेक बार प्रयोग हुआ है ।[२८] किन्हीं स्थलों पर ऋक् और साम दोनों का प्रयोग हुआ है, जैसे--'ऋचं साम यजामहे, (७.५५.१,२) इत्यादि। किन्ही मन्त्रों में ऋक्, साम और यजुः तीनों का प्रयोग मिलता है।[२९] किन्हीं स्थलों पर तो ऋक्, यजुः और साम के साथ छन्दस् शब्द का प्रयोग है।[३०] इनमें से एक मन्त्र वेदोत्पत्ति के सन्दर्भ में ऊपर उद्धृत किया जा चुका है।[३१] यह भी ऊपर कहा गया है कि स्वामी दयानन्द ने 'छन्दांसि' का अर्थ अथर्ववेद किया है। यह 'छन्दांसि' शब्द अथर्ववेद के अन्य मन्त्र[३२] में भी आया है। वहां भी वेदों की उत्पत्ति का ही निरूपण किया गया है। एक अन्य सन्दर्भ में तो 'छन्दांसि' शब्द के स्थान पर स्पष्टतः 'अथर्वाङ्गिरसः, शब्द का प्रयोग मिलता है । यथा—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।

सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।[३३]

इस मन्त्र पर सायण का भाष्य नहीं है। ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में इस मन्त्र को उद्धृत किया है और वहाँ इस की व्याख्या करते हुए कहा है – जिस सर्वशक्तिमान् से ऋचः=ऋग्वेद, अपातक्षन् =उत्पन्न हुआ, जिस परब्रह्म से यजुर्वेद प्रादुर्भूत हुआ। इसी प्रकार जिससे सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न हुए।[३४] आगे उन्होंने कहा है, जिससे चारों वेद

---

२८. अथर्ववेद ६.५.५; १०.१८.१६ इत्यादि।

२९. द्र०, वही, ६.६. (१) १,२; ११.७.५।

३०. (क) ऋचः सामानि छन्दांसि पुराणं यजुषा सह ॥ वही, ११.७.२४।

(ख) तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ॥ वही, १९.६.१३।

३१. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः । अथर्ववेद, १९.६.१३ । ऋग्वेद, १०.९०.९ ऋग्वेद में छन्दो ह जज्ञिरे के स्थान पर छन्दांसि जज्ञिरे पाठ है।

३२. द्र०, अथर्ववेद, ११.७.२४।

३३. वही, १०.७.२०।

३४. द्र०, ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्ति. पृ० ६ (सं०)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पन्न हुए हैं वह कौन सा देव है ? इसका उत्तर है—उसको स्कम्भ अर्थात् समस्त जगत् का धारक परमेश्वर तुम जानो।"[35] इस मन्त्र के स्कम्भ शब्द का अर्थ सायण ने इस प्रकार किया है – 'स्कम्भ इति सनातनतमो देवो ब्रह्मणोऽप्याद्यभूतः। अतो ज्येष्ठं ब्रह्मेति तस्य संज्ञा,"[36] - ब्रह्मा का भी मूल होने वाला शाश्वत देव स्कम्भ कहलाता है इसलिये ज्येष्ठ ब्रह्म यह उसकी संज्ञा है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अथर्ववेद के इस मन्त्र में परमेश्वर से वेदों की उत्पत्ति कही गई है। अथर्ववेद के उपर्युक्त सन्दर्भों से यह प्रतीत होता है कि ऋक्ः, यजुः, साम तथा अथर्व चार वेद हैं। ये वेद किसी विशिष्ट शक्ति से उत्पन्न हुए हैं।

इस प्रकार वेद-मन्त्रों के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है कि यहाँ वेद शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है। किन्तु ऋक् आदि के साथ ऋग्वेद, सामवेद इत्यादि रूप से प्रयोग नहीं उपलब्ध होता; अपितु कहीं केवल ऋक् का प्रयोग है, कहीं ऋक्, साम का, कहीं ऋक्, साम, यजुः का और कुछ स्थलों में ऋक् साम, यजुः तथा छन्दस् अथवा अथर्व का प्रयोग भी मिलता है। ऐसे कम ही स्थल हैं जहाँ वेद की चार संख्या का सङ्केत मिलता है। जहाँ तक वेदों की उत्पत्ति का सम्बन्ध है, पुरुष से, यज्ञ से अथवा किसी परमदेव से वेदों की उत्पत्ति कही गई है। यहाँ केवल शब्द का भेद है अर्थ का नहीं। एक स्थल पर सम्भवतः वेद के लिये नित्य वाणी शब्द का भी प्रयोग मिलता है। किन्तु इन सभी तथ्यों का स्पष्ट निरूपण वेदों में नहीं मिलता।

२. ब्राह्मण ग्रन्थ तथा वेदनित्यता

ब्राह्मण ग्रन्थों में वेदों की संज्ञा, संख्या, वेदोत्पत्ति तथा वेद-नित्यता के सम्बन्ध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। सभी वेदों के पृथक्-पृथक् ब्राह्मण ग्रन्थ हैं जिनकी पर्याप्त संख्या है; किन्तु यहाँ कुछ प्रसिद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर ही प्रस्तुत विषय का निरूपण करना है।

ऋग्वेद का प्रमुख ब्राह्मण ऐतरेय है। यहाँ वेद शब्द का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है।[37] कई स्थलों पर केवल ऋक् शब्द का प्रयोग किया गया है।[38]

---

३५. द्र०, वही, पृ० ६-१० (सं०)

३६. सायण भाष्य, अथर्ववेद, १०.७.१ (अवतरणिका)।

३७. (क) ऐतरेय ब्राह्मण (आनन्दाश्रम, पूना १६७७) अध्याय २५, पृ० ६६७।
(ख) वही, अ० २५, पृ० ६७० इत्यादि।

३८. वही, अ० १, पृ० २४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं केवल साम शब्द का ही ग्रहण किया गया है (अ० १९, पृ० ५२५)। अनेक स्थलों पर ऋक् और साम दोनों का ग्रहण किया गया है।[39] यहाँ साम शब्द की निरुक्ति भी दिखाई गई है।[40] किन्हीं स्थलों पर तीन वेदों का नाम उपलब्ध होता है।[41] एक स्थल पर तीन वेदों के नाम के पश्चात् वेदमय तथा ब्रह्मभय आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यहाँ सायण भाष्य में कहा गया है—वेदशब्देनाथर्ववेदः – वेद शब्द से अथर्ववेद का ग्रहण होता है।[42] इस प्रकार इस व्याख्या के आधार पर ऐतरेय ब्राह्मण में चारों वेदों का उल्लेख माना जा सकता है ?

ऐतरेय ब्राह्मण में वेदों की उत्पत्ति का आख्यान द्वारा वर्णन किया गया है —प्रजापति ने कामना की कि मैं प्रजा का उत्पादन करूँ बहुत हो जाऊँ। उसने तप किया। तप करके लोकों को उत्पन्न किया पृथ्वी को, अन्तरिक्ष को तथा द्यौ को। उन लोकों को तप्त किया अथवा भली भांति आलोचित किया (अभितः पर्यालोचितवान्—सायण भाष्य) उन अभितप्त लोकों से तीन ज्योतियाँ उत्पन्न हुइ। पृथ्वी से अग्नि, अन्तरिक्ष से वायु और द्यौ से सूर्य। उन ज्योतियों को अभितप्त किया और उनसे तीन वेद उत्पन्न हुए—ऋग्वेद अग्नि से, यजुर्वेद वायु से और सामवेद आदित्य से।[43]

यहाँ सायण ने तप का अर्थ 'पर्यालोचन' किया है और कहा है कि यह वस्तु ऐसी है, इस प्रकार का पर्यालोचन ही तप है 'उसे करके यह पदार्थ उत्पन्न हो जाये, इस प्रकार का सङ्कल्प करके लोकत्रय की रचना की। उसी प्रकार आगे तीन ज्योतियों से वेद-त्रय की उत्पत्ति की।[44]

---

३९. (क) वही, अ० ८, पृ० २२८।
(ख) वही, अ० १२, पृ० ३४८।

४०. वही, अ० १२, पृ० ३४८-४९।

४१. वही, अ० २५, पृ० ६६९-६७४।

४२. ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयो वेदमयो ब्रह्ममयोऽमृतमयः। वही, ४, २२, पृ० ९८।

४३. प्रजापतिरकामयत प्रजायेय भूयान्त्स्यामिति स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वेमाँल्लोकानसृजत पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं ताँल्लोकानभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि ज्योतींष्यजायन्ताग्निरेव पृथिव्या अजायत वायुरन्तरिक्षादादित्यो दिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात्——। वही, अ० २५, पृ० ६६७।

४४. द्र०, सायण-भाष्य, वही, पृ० ६६८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ऐतरेय ब्राह्मण के वचन की व्याख्या में षड्गुरु शिष्य ने यह भी कहा है कि यहां वेद का अर्थ 'मन्त्र' है। विद् धातु से कर्म में घञ् करके यह वेद शब्द निष्पन्न होता है। वस्तुतः ऋग्, यजुः और साम तीन प्रकार का मन्त्र कहा गया है जो पादबद्ध (मन्त्र) हैं वे ऋक् हैं। गीतियाँ साम हैं और गद्य मन्त्र यजुः माना गया है। चारों वेदों में ये तीन प्रकार के मन्त्र विद्यमान हैं। और बाहुल्य के कारण वेदों के पृथक् पृथक् नाम हो गये हैं। ऋचाओं के आधिक्य से ऋग्वेद इत्यादि मानने चाहिए।"[45]

ऐतरेय ब्राह्मण में कुछ वचन ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जहाँ त्रयी विद्या का उल्लेख किया गया है। जैसे—तदेतत्त्रय्यै विद्यायै (अ० २५, पृ० ६६८), त्रयी विद्या भवति (अ० २५, पृ० ६७१)। इस पर षड्गुरु शिष्य लिखते हैं—'ऋग्यजुः सामरूपा हि विद्या प्रोक्ता त्रयीति ह'।[46] यहाँ यह भी कहा गया है—अथ केन ब्रह्मत्वं क्रियत इति त्रय्या विद्ययेति ब्रूयात्, इति[47] (यदि पूछा जाये कि किस साधन से ब्रह्मत्व निष्पन्न होता है तो उत्तर देवें कि त्रयी विद्या से)।

इस प्रकार ऐतरेय ब्राह्मण में यद्यपि ऋक् यजुः, साम की उत्पत्ति कही गयी है और इनके साथ ऋग्वेद आदि के रूप में वेद शब्द का भी प्रयोग किया गया है तथापि षड्गुरुशिष्य जैसे टीकाकारों के अनुसार यहाँ तीन प्रकार के मन्त्रों (ऋक्, यजुः, साम) की उत्पत्ति का कथन है और चारों वेदों में ये तीन प्रकार के ही मन्त्र हैं। अतः यहाँ चारों वेदों का उल्लेख समझना चाहिये।

शतपथ ब्राह्मण में वेद का कितने ही स्थलों में प्रयोग मिलता है; कहीं ऋग्वेद आदि के रूप में, कहीं केवल वेद के रूप में, जैसे—'सर्वे वेदा आविशन्ति (११.३.३.७), अग्नेर्ऋग्वेदः (११.५.८.३), वेदवित् (१४.६.७.४) इत्यादि।

---

४५. वेदोऽत्र विनियोक्तव्यो मन्त्रः कर्मणि घञ् विदेः।
ऋग्यजुः सामरूपो हि त्रिविधो मन्त्र उच्यते॥
ऋक् पादबद्धा गीतिस्तु साम गद्यं यजुर्मतम्।
चतुर्ष्वपि हि वेदेषु मन्त्रोऽयं वर्तते त्रिधा॥
ऋचां बहुत्वादृग्वेद इत्याद्याख्योक्तिरिष्यताम्।

ऐतरेयब्राह्मण षड्गुरुशिष्यवृत्ति (त्रावणकोर यूनिवर्सिटी, १९५२), अ० २५ खण्ड ७ पृ० ३१५।

४६. वही, पृ० ३२३।

४७. ऐतरेय ब्राह्मण, अ० २५, पृ० ६७१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शतपथ ब्राह्मण में ऋग्, यजुः, साम और अथर्व के साथ ही वेद शब्द का प्रयोग नहीं किया गया अपितु 'सर्पविद्यावेदः (१३.४.३.९) मायावेदः (१३.४.३ ११) इतिहासो वेदः (१३.४.३.१२), पुराणं वेदः (१३.४.३.१३) इत्यादि रूप में भी वेद शब्द का प्रयोग किया गया है। साथ ही यहाँ 'अथर्वाणो वेदः' तथा 'अङ्गिरसो वेदः' को पृथक्-पृथक् कहा गया है।[४८] यहाँ वेद शब्द से क्या अभिप्राय है? यह विचारणीय ही है। यहाँ यजुः और साम का अनेकशः नाम लिया गया है। ऋक्, यजुः और साम तीनों का एक साथ भी अनेक स्थलों पर प्रयोग किया गया है।[४९] कई स्थलों पर त्रयो वेदाः (५.५.५.१०,१२), (११.५.८.३), त्रीन् वेदान् (११.५.८.४)। इस प्रकार तीन वेदों का उल्लेख किया गया है और यह कहा गया है—'ते सर्वे त्रयो वेदाः' (१०.४.२.२५)। अन्य स्थलों पर 'सर्वान् वेदान्, (१३.४.३.१५), 'सर्वेषां वेदानाम्' (१४.८.३.१२) इत्यादि प्रकार से निर्देश किया गया है। सम्भवतः ऐतरेय ब्राह्मण की रीति से यहाँ भी तीन वेदों की तीन विद्याओं का ग्रहण किया गया है। यहाँ एक स्थल पर बतलाया गया है कि विद्या तीन प्रकार की है—ऋक्, यजुः और साम।[५०] त्रयी विद्या आदि शब्द का कई स्थलों पर प्रयोग किया गया है।[५१] यह भी बतलाया गया है कि त्रयो विद्या से ऋत्विज् की योग्यता प्राप्त होती है—त्रय्या विद्ययाऽऽर्त्विज्यं कृतं भवति (१२.३.३.२)। ऋक्, यजुः तथा साम को वाणी के तीन रूप कहा गया है (६.५.३.४)। यह भी बतलाया गया है—वह यह वाणी त्रिधा की गई है—ऋक्, यजुः, साम।[५२]

जहाँ तक वेदोत्पत्ति का प्रश्न है, शतपथ में भी ऐतरेय के समान अग्नि आदि से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद की उत्पत्ति कही गयी है—स इमानि त्रीणि ज्योतींष्यभितताप। तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः।[५३] यहाँ भी कई स्थलों में 'अथर्वाङ्गिरसः' शब्द का प्रयोग मिलता हैं।[५४] इसी प्रकार शतपथ का अन्तिम भाग जो बृहदारण्यक के रूप में प्रसिद्ध

---

४८. द्र०, शतपथ (प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली, १९७०), १३.४.३.७.८)।

४९. द्र०, वही, ३.२.१.३७; ११.५.४.१८; ११.५.८.३; १२,३.४.९; १२.८.३.३०।

५०. त्रयी वै विद्या। ऋचो यजूंषि सामानि। वही, ४.६.७.१।

५१. त्रय्या विद्यया। वही, ६.३.१.१०; त्रयी सा विद्या, एषा त्रयी विद्या। वही, ६.३.१.११.। त्रय्यै विद्यायै। वही, १९.५.८.४। त्रय्या विद्ययेति। ११.५.८.७।

५२. सा वा एषा वाक्त्रेधा विहिता। ऋचो यजूंषि सामानि। वही, १०.५.१.२,५।

५३. द्र०, वही, ११.५,८.३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसमें भी कई सन्दर्भों में 'अथर्वाङ्गिरस्' शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः यह मानना पड़ता है कि शतपथ में चार वेदों का ही उल्लेख है।

सामवेद के कई ब्राह्मण हैं जिनमें ताण्ड्य महाब्राह्मण प्रमुख है। यहाँ कई स्थलों पर ऋक् शब्द का प्रयोग हुआ है (४.९.४ इत्यादि)। साम शब्द का प्रयोग बहुत अधिक संख्या में उपलब्ध होता है। अथर्वन् शब्द का भी प्रयोग किया गया है (८.२.५,६)। इसी प्रकार आङ्गिरस शब्द का भी प्रयोग मिलता है (१५.९.९)। यहाँ सायण ने 'आङ्गिरसः=ऋषयः' यह अर्थ किया है। अनेक स्थलों पर ऋक् और साम शब्दों का साथ-साथ प्रयोग मिलता है।[55] कुछ स्थलों पर ब्रह्म साम,[56] क्षत्रसाम[57] शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। इसी प्रकार अग्निष्टोम[58] साम, अच्छावाकसाम[59] इत्यादि शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

ताण्ड्य महाब्राह्मण में विविध सामों के महत्त्व का वर्णन किया गया है; किन्तु वेदों की उत्पत्ति एवं नित्यता आदि के विषय में स्पष्ट विवेचन उपलब्ध नहीं होता।

अथर्ववेद से सम्बद्ध गोपथ ब्राह्मण में वेदों की संख्या, उत्पत्ति तथा नित्यता आदि के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है। फलतः यहाँ वेद शब्द का अनेकशः प्रयोग हुआ है। कहीं एकवचन में, कहीं बहुवचन में। यहाँ किन्हीं स्थलों में तीन वेदों का उल्लेख किया गया है, जैसे— (i) त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसः श्रिताः (१.२९)। (ii) अन्तरैते त्रयो वेदा भृगूनङ्गिरसोऽनुगाः (१.३९)। अन्य स्थलो में चार वेदों का उल्लेख है। जैसे—चत्वारो वा इमे वेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति (२.१६)। यहाँ 'चत्वारि शृङ्गा' इस मन्त्रांश की व्याख्या करते हुए भी 'वेदा वा एत उक्ताः' (२.१६)-अथवा 'चत्वारि शृङ्गा' शब्द से चार वेदों को कहा गया है। इसी प्रकार चतुर्षु वेदेषु (२.२४) चत्वारो वेदाः (३.१६), चत्वारो वै वेदाः (४.२४) इत्यादि स्थलों में चार वेदों का उल्लेख है।

---

५४. मेद आहुतयो ह वा एता देवानाम्। यदथर्वाङ्गिरसः स य एवं विद्वानथर्वाङ्गिरसोऽहरहः स्वाध्यायमधीते मेद आहुतिभिरेव तद्देवांस्तर्पयति। वही, ११.५.६.७।

५५. ताण्ड्य महाब्राह्मण (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९३५), ४. ३. ४-६; ८.१. ७।

५६. द्र०, वही, ४.३.१, २, १३; ५.२.१२; ८.१.३; ८.२.१, ५ इत्यादि।

५७. द्र०, वही, ९.२.७, १५ इत्यादि।

५८. द्र०, वही, ५.३.६।

५९. द्र०, वही, ८.८.२६; ८.१०.१, ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य कई प्रसङ्गों में भी चार वेदों का निरूपण किया गया है।[६०] साथ ही ऋग्वेदादि से भिन्न विद्याओं के लिये भी वेद शब्द का प्रयोग किया गया है। 'पञ्च वेदान् निरमिमीत सर्पवेदं पिशाचवेदम् असुरवेदम् इतिहासवेदं पुराणवेदम् इति (१.१०)।

यहां वेदोत्पत्ति का वर्णन करते हुए कहा गया है—उसने तीन वेदों की रचना की ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद। अग्नि से ऋग्वेद, वायु से यजुर्वेद और आदित्य से सामवेद।[६१] किन्तु इसके आगे ही अङ्गिरस् शब्द की व्युत्पत्ति दिखलाते हुए आङ्गिरस वेद की उत्पत्ति भी दिखलाई गई है—'स आङ्गिरसो वेदोऽभवत्' (१.८)। इसी प्रकार 'स आथर्वणो वेदोऽभवत्' (१.५)। यहां अथर्ववेद की उत्पत्ति का भी उल्लेख किया गया है। 'ओम्' इस पद का विश्लेषण करते हुए कहा गया है कि वकार की मात्रा (संप्रसारण उकार) से अथर्ववेद हुआ (१.२०)। इसके अतिरिक्त अन्य कई स्थलों पर अथर्वा और अङ्गिरस का पृथक्-पृथक् उल्लेख भी किया गया है। जैसे (i) अथर्वाणश्च ह वा आङ्गिरसश्च भृगुचक्षुषी (२.२२), (ii) अथर्वाङ्गिरोविदमेव ब्रह्माणं वृणीष्व (२.२४), (iii) अथर्वभिरङ्गिरोभिश्च (५.२४) इत्यादि। अथर्वन् और अङ्गिरस् दो शब्दों के मिलने से बने हुए 'अथर्वाङ्गिरस' शब्द के आधार पर यह कल्पना भी की जाती है कि सम्भवतः अथर्वन् और अङ्गिरस पृथक्-पृथक् ऋषि थे और दोनों ने मिलकर अथर्ववेद का निर्माण किया था। अथर्वन् शब्द विशेषकर वेदों के माङ्गलिक विधानों अथवा भेषजों को सूचित करता है और आङ्गिरस शब्द वेद की आभिचारिक क्रियाओं को सूचित करता है।[६२] इस कल्पना के अनुसार अथर्ववेद के इन दो स्वरूपों का चित्रण गोपथ ब्राह्मण में किया गया है।[६३]

अन्य विद्वान् अथर्वाङ्गिरस शब्द को यौगिक मानते हैं और, यह स्वीकार नहीं करते कि इन नामों के ऋषि अथर्ववेद के रचयिता हैं।[६४] अग्रिम अनुसन्धानों से ही इस विषय में अधिक प्रकाश पड़ सकता है।

---

६०. द्र०, गोपथ ब्राह्मण (३४, लूकरगंज, इलाहाबाद, १९७७). १.२७; ३.३; ५.२४,२५ इत्यादि।

६१. त्रीन् वेदान्निरमिमीत ऋग्वेदं यजुर्वेदं सामवेदमिति, अग्नेर्ऋग्वेदं, वायोर्यजुर्वेदमादित्यात्सामवेदम्। वही, १.६। (यहां निरमिमीत के स्थान पर किन्हीं पुस्तकों में निरमिमत पाठ है।)

६२. द्र०, एम० ब्लूमफील्ड, The Atharvaveda and Gopatha Brahmaṇa- (सूर्यकान्त कृत हिन्दी अनुवाद, वाराणसी, १९६४), पृ० १३-१४।

६३. द्र०, वही, पृ० १४।

६४. द्र०, क्षेमकरणदास त्रिवेदी, गोपथ ब्राह्मण भाष्य, १.२९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोपथ ब्राह्मण में कई स्थलों पर अथर्ववेद का महत्त्व दिखलाया गया है।[६५] अथर्ववेद को ब्रह्मा का वेद कहा जाता है और गोपथ ब्राह्मण में कई स्थलों पर यह कहा गया है—'एष ह वै विद्वान्त्सर्वविद् ब्रह्मा यद्भृग्वङ्गिरोविद् (२.१८), अथर्वाङ्गिरोविदमेव ब्रह्माणं वृणीष्व स हि ब्रह्मत्वं वेद (२.२४) इत्यादि। इसी प्रकार कई स्थलों पर अथर्ववेद को ब्रह्मवेद के नाम से कहा गया है।[६६] इस प्रकार गोपथ ब्राह्मण में वेदों की संख्या आदि का स्पष्ट वर्णन मिलता है। यहाँ अथर्ववेद के विषय में कुछ अधिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

उपर्युक्त सन्दर्भों से यह विदित होता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद संज्ञा, संख्या तथा वेदोत्पत्ति आदि के विषय में बहुत कुछ बतलाया गया है। फिर भी उनसे जो सूचनाएँ मिलती हैं उनके विषय में विवाद हो सकता है और होता भी रहा है। जहाँ तक वेदोत्पत्ति और वेद-नित्यता का प्रश्न है उसके विषय में ब्राह्मणों के निश्चित मत को जानने के लिये निरन्तर अध्ययन करना आवश्यक है।

३. उपनिषदों में वेद तथा वेद-नित्यता

उपनिषदों में वेद की संख्या तथा उत्पत्ति आदि के विषय में अनेक बार उल्लेख किया गया है। यहाँ ऋग्वेद आदि के रूप में वेद शब्द का एकवचन में प्रयोग मिलता है; किन्तु जहाँ वेद शब्द का पृथक् प्रयोग किया गया है वहाँ प्रायः बहुवचन में ही प्रयोग उपलब्ध होता है।[६७] अनेक स्थलों पर ऋचः, यजूंषि, सामानि इत्यादि रूप में ऋक् आदि का बहुवचन में प्रयोग किया गया है जिससे विदित होता है कि यहाँ ऋचाओं इत्यादि का उल्लेख है ऋग्वेद आदि का नहीं।[६८] उपनिषद् के एक स्थल से यह भी प्रतीत होता है कि ऋचाओं इत्यादि को ही त्रयी

---

६५. द्र०, वही, १.२६, ३९; ५.२५।

६६. द्र०, वही, २.१६, १९।

६७. (क) वेदाः। केन०, ८ (उपनिषत्सङ्ग्रह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७०), पृ० ७।
(ख) सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति। कठ०, १.२.१५, वही, पृ० ६।
(ग) सर्वान्वेदाननुब्रुवीत। बृहदारण्यक०, ६.४.१८, वही, पृ० १३२।
(घ) यच्च वेदा वदन्ति। श्वेता०, ४.९, वही, पृ० १३८।
(ङ) वेदांश्च प्रहिणोति। श्वेता०, ६.१८, वही, पृ० १४१।

६८. ऋचो यजूंषि सामानि। प्रश्नो०, २.६, वही, पृ० १२; इसी प्रकार वही, ५.३-७; मुण्डक०, २.१.६, वही, पृ० १७; तैत्तिरीय०, शीक्षा, ५.२.३, वही, पृ० २२; बृहदा०, १.२.५, वही, पृ० ८५ इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या के रूप में कहा गया है—'ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्य एतत् स यावतीयं त्रयी विद्या ।'[69] ऋक् इत्यादि के रूप में वेदों के तीन प्रकार के मन्त्रों का उल्लेख प्रतीत होता है। वे तीन प्रकार के मन्त्र ही त्रयी विद्या कहे जाते हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है—ऋचाओं की प्रचुरता के कारण ऋग्वेद आदि नाम सार्थक हैं। इसी दृष्टि से यह कहना भी सङ्गत हो जाता है कि ऋग्वेद आदि तीन वेद हैं।[70]

वस्तुतः अनेक स्थलों में उपनिषदों में चार वेदों का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है; जैसे—मुण्डकोपनिषद् में परा और अपरा विद्याओं का उल्लेख करते हुए चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है।[71] तैत्तिरीय उपनिषद् में भूः भुवः स्वः महः इन चार व्याहृतियों का वर्णन करते हुए चारों वेदों की ओर सङ्केत किया गया है। सम्भवतः यहाँ अथर्ववेद का ब्रह्म शब्द से अभिधान किया गया है।[72] इसी प्रकार ब्रह्म का वर्णन करते हुए मनोमय आत्मा को पुरुषरूप में बतलाया गया है और यजुः को उसका सिर, ऋक् को दक्षिण पक्ष, साम को उत्तर पक्ष और अथर्ववेद को पुच्छ कहा गया है।[73]

छान्दोग्योपनिषद् में कई प्रसङ्गों में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का उल्लेख किया गया है। वहाँ अथर्व को स्पष्टतः चतुर्थ वेद कहा गया है।[74] इन प्रसङ्गों में कई स्थलों पर इतिहास पुराण को पञ्चम वेद भी कहा गया है।[75] बृहदारण्यक उपनिषद् में भी कई स्थलों पर चारों वेदों का

---

६९. बृहदा०, ५.१४.२, वही, पृ० १२५ इत्यादि।

७०. त्रयो वेदा एत एव वागेवर्ग्वेदो मनो यजुर्वेदः प्राणः सामवेदः। बृहदा०, १.५.५, वही, पृ० ६१।

७१. द्र०, मुण्डक०, १.१.५, वही, पृ० १६।

७२. द्र०, तैत्तिरीय०, शीक्षा, ५.२.३, वही, पृ० २२।

७३. अन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम् अन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः। ऋग् दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा। अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तैत्तिरीय०, ब्रह्मवल्ली, ३, वही, पृ० २६।

७४ (क) ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थम्। छान्दोग्य०, ७.१.२, वही, पृ० ७१।

(ख) नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थः। छान्दोग्य०, ७.१.४, वही, पृ० ७१।

७५. (क) इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः। छान्दोग्य०, ७.१.४, वही, पृ० ७१।

(ख) इतिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्। छान्दोग्य०, ७.१.२, वही, पृ० ७१; ७.२.१, वही, पृ० ७१; ७.७.१, वही, पृ० ७३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम लिया गया है।[७६] कहीं-कहीं अथर्वाङ्गिरस का नाम न लेकर 'छन्दांसि' शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[७७]

वेदों की उत्पत्ति के विषय में मुण्डकोपनिषद् में कहा गया है कि उस परम पुरुष से प्राण इत्यादि उत्पन्न होते हैं और उसी से ऋक्, यजुः और साम उत्पन्न होते हैं।[७८] बृहदारण्यक में एक स्थल पर कहा गया है—उसने ईक्षण किया और उस वाणी तथा प्रयत्न से ऋक्, यजुः तथा साम एवं छन्दों की रचना की।[७९] याज्ञवल्क्य मुनि ने महाराज जनक को बतलाया है—महाराज वाणी ही प्रज्ञा है, वाणी के द्वारा ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वाङ्गिरस इत्यादि जाने जाते हैं।[८०]

बृहदारण्यक के किन्हीं सन्दर्भों में चारों वेदों को महान् आत्मा का निःश्वास मात्र कहा गया है—जैसे स्थापित की गई आर्द्रसमिधाओं की अग्नि से धूम निकलते हैं। इसी प्रकार इस महान् भूत आत्मा के निश्वसित ये सब हैं ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्वाङ्गिरस इत्यादि।[८१] यद्यपि इन सन्दर्भों में चार वेदों के पश्चात् इतिहास, पुराण तथा व्याख्यान पर्यंत को भी उसका निश्वसित कहा गया है तथापि शङ्कराचार्य जैसे विद्वानों ने 'शास्त्रयोनित्वात्' का भाष्य करते हुए शास्त्र शब्द से ऋग्वेद आदि का ग्रहण किया है और बृहदारण्यक (२.४.१०) के वचन को उद्धृत करते हुए ऋग्वेदादि को परम पुरुष के नि.श्वास के समान वतलाया है।[८२] स्वामी दयानन्द ने भी उपनिषद् के इस वचन में अनेक

---

७६. बृहदारण्यक०, ४.१.२, वही, पृ० १११; ४.५.११, वही, पृ० १२१।

७७. द्र०, बृहदा०, १.२ ५, वही, पृ० ८५।

७८. द्र०, मुण्डक०, २.१.६, वही, पृ० १७।

७९. स ऐक्षत ... ...स तया वाचा तेनात्मनेदं सर्वमसृजत यदिदं कचर्चो यजूंषि सामानि च्छन्दांसि यज्ञान्प्रजाःपशून्। बृहदा०, १.२.५, वही, पृ० ८५।

८०. द्र०, बृहदारण्यक०, ४.१.२, वही, पृ० १११।

८१ स यथाऽऽर्द्रैधाग्नेरभ्याहितात्पृथग्धूमा विनिश्चरन्त्येवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्याख्यानानि व्याख्यानान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निश्वसितानि। बृहदारण्यक०, २.४.१०, वही, पृ० ९८, तथा ४.५.११, वही, पृ० १२०।

८२. महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपवृंहितस्य, प्रदीपवत्सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म..........पुरुषनिःश्वासवद्यस्मान् महतो भूताद्योनेः संभवः, अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः इत्यादिश्रुतेः। शाङ्करभाष्य, ब्रह्मसूत्र, १.१.३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाक्य मान कर ऋग्वेदादि चारों को उस परम शक्ति का साक्षात् निःश्वास माना है और अन्यों को परम्परा सम्बन्ध से।[८३] उनके मन्तव्य का विशद विवेचन आगे किया जायेगा। फिर भी उपनिषद् के इस प्रकार के वचनों के विषय में मतभेद हो सकता है जिस पर अग्रिम अनुसन्धानों से कुछ अधिक प्रकाश पड़ सकेगा।

इन प्रसिद्ध उपनिषदों के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी कहीं स्पष्टतः चारों वेदों का नाम लेकर यह बतलाया गया है कि ये चार वेद है, जैसे—ऋग्यजुःसामाथर्वणश्चत्वारो वेदाः।[८४] कहीं चारों वेदों का उल्लेख मात्र किया गया है।[८५] किन्हीं स्थलों पर तो बृहदारण्यक के समान ही वेदों को उस महान् आत्मा का निःश्वसित कहा गया है।[८६] कहीं प्रजापति को वेदों का कर्त्ता कहा गया है।[८७]

इस प्रकार प्रमुख उपनिषदों में अनेक स्थलों पर चार वेदों का उल्लेख किया गया है। इनकी उत्पत्ति के विषय में इन्हें परात्मा का निःश्वास मात्र कहा गया है। यदि निःश्वास का तात्पर्य स्वाभाविक स्फुरण मात्र लिया जाये तो वेदों की नित्यता भी अभिव्यक्त होती है, किन्तु 'स ऐक्षत—इदं सर्वमसृजत यदिदं किंचर्चो यजूंषि सामानि छन्दांसि, (बृहदा० १.२.५) इत्यादि सन्दर्भों में असृजत किया का प्रयोग है सजिसे ज्ञात होता है कि ईक्षण के पश्चात् परा शक्ति ने वेदों की रचना की। अतः वेदों की उत्पत्ति और नित्यता का यहाँ उपर्युक्त प्रकार से ही सामञ्जस्य करना होगा।

४. वेदाङ्गों में वेदोत्पत्ति एवं वेद-नित्यता

वेदों के सम्यक् उच्चारण तथा वेदार्थ के सम्यक् बोध के लिये वेदाङ्गों का अध्ययन आवश्यक समझा गया है। ये वेदाङ्ग वेदों के ज्ञान में सहायक हैं। ये वेद के विविध पक्षों को लेकर प्रवृत्त हुए हैं। वेदाङ्ग छः हैं जिनका भिन्न-भिन्न स्थलों में विविध प्रकार से निर्देश मिलता है। मुण्डकोपनिषद् में

---

८३. द्र०, भ्रमाच्छेदन, द० ल०, पृ० २४६।

८४. नृसिंहपूर्वतापनीयोपनिषद्, १.२, वही, उपनिषत्संग्रह पृ० २१८।

८५. द्र०, सीतोपनिषद्, ५, वही, पृ० ३३८; महोपनिषद्, १.१, वही, पृ० ४२७ इत्यादि।

८६. द्र०, सुबालोपनिषत्, खण्ड-२, वही, पृ० २४२।

८७. द्र०, अव्यक्तापनिषद्, ५, वही, पृ० ४६०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदाङ्गों का क्रम इस प्रकार है—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः और ज्योतिष।[८८]

इनमें से शिक्षा को वेदाङ्गों में प्रथम स्थान पर रक्खा गया है इससे वर्णों के उच्चारण की विधि का बोध होता है। उच्चारण की शुद्धता और वेद के सुचारु पाठ के लिए इसकी महती आवश्यकता है। अनेक शिक्षा ग्रन्थ लिखे गये हैं। प्रातिशाख्यों में भी उच्चारण-सम्बन्धी कुछ नियम हैं। अतः भिन्न-भिन्न वेदों के उच्चारण के नियम कुछ पृथक्-पृथक् भी हैं। शिक्षा का सामान्यतः व्याकरण से भी सम्बन्ध समझा जाता है। व्याकरण-सम्बन्धी शिक्षाओं में आज पाणिनीय शिक्षा का विशेष प्रचलन है। यह शिक्षा ग्रन्थ लोक और वेद दोनों के उच्चारण-सम्बन्धी सामान्य नियमों का निरूपण करता है।[८९] इसमें कई स्थलों पर वेद शब्द का ग्रहण किया गया है (१,४१,४२,५५)। यहाँ वेद के छहों अङ्गों को वेदरूपी शरीर के छः अङ्गों के रूप में बतलाया गया है।[९०] यहाँ दो स्थलों पर ऋक्, यजुः और साम का उल्लेख मिलता है।[९१] किन्तु यहाँ वेदों की संख्या का उल्लेख नहीं किया गया। सम्भवतः यहाँ ऋक्, यजुः और साम तीन प्रकार के मन्त्रों का निर्देश है फिर भी यह विषय विचारणीय ही है। यहाँ वेदों की उत्पत्ति या नित्यता आदि के विषय में स्पष्टतः कुछ भी नहीं कहा गया।

शिक्षा के अनन्तर कल्प के विषय में विचार करना क्रम-प्राप्त है। कल्प, व्याकरण तथा निरुक्त में इस विषय की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। अतः उनका आगे विस्तारपूर्वक पृथक्-पृथक् विचार किया जायेगा। यहाँ छन्द और ज्योतिष के विषय में भी विचार कर लेना उचित प्रतीत होता है।

छन्दः शास्त्र को वेदों का पाद कहा गया है।[९२] वेद के अध्ययन-अध्यापन के लिये छन्दों का ज्ञान अनिवार्य समझा गया है। बृहद्देवता में कहा गया है—

---

८८. शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। मुण्डक०, १.१.४-५।

८९. यथोक्तं लोकवेदयोः। पाणिनीयशिक्षा, १।

९०. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। द्र०, वही, ४१-४२।

९१. द्र०, वही, ५४, ५५।

९२. छन्दः पादौ तु वेदस्य। वही, ४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि, छन्द, देवता और प्रयोग (योग) ज्ञान के विना जो अध्यापन अथवा जप करता है वह पापी हो जाता है।[९३] वहाँ ऋषि, छन्द और देवता के क्रम का भी निर्देश किया गया है।[९४] पिङ्गलच्छन्दःसूत्र को वेदाङ्गों में गिना जाता है।[९५] विन्टरनिट्स के विचार से यह परवर्ती रचना है। इसके पूर्व भाग में वैदिक छन्दों का विवरण दिया गया है। विविध छन्दों के प्रसङ्ग में ऋचा, यजुः और साम का उल्लेख मिलता है।[९६] किन्तु यहाँ वेदों की संख्या तथा वेदोत्पत्ति आदि के विषय में कोई विशेष सूचना नहीं मिलती।

ज्योतिष शास्त्र की वेदाङ्गों में गणना की गई है। इसे वेदों का चक्षुः कहा गया है।[९७] आज वेदाङ्ग ज्योतिष के नाम से जो ग्रन्थ उपलब्ध होता है उसके दो संस्करण हैं—एक यजुर्वेद सम्बन्धी, दूसरा ऋग्वेद सम्बन्धी। विन्टरनिट्स के अनुसार यह ग्रन्थ परवर्ती काल की रचना है।[९८] इस ग्रन्थ के अतिरिक्त सूर्य-सिद्धान्त, आर्यभट्ट कृत महासिद्धान्त इत्यादि कुछ प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं। सूर्यसिद्धान्त में ज्योतिषशास्त्र को वेदाङ्गों में श्रेष्ठ कहा गया है।[९९]

सूर्यसिद्धान्त में कई स्थलों पर चार संख्या को सूचित करने के लिये वेद शब्द का प्रयोग किया गया है।[१००] एक स्थल पर ऋक्, यजुः तथा साम का बहुवचन में प्रयोग किया गया है।[१०१] सम्भवतः यहाँ तीन प्रकार के वैदिक मन्त्रों का उल्लेख है। इसी आधार पर सूर्य को 'त्रयीमय' कहा गया है। अनेक स्थलों में जो वेद शब्द का चार संख्या का बोध कराने के लिये प्रयोग किया गया है उस से यही स्पष्ट विदित होता है कि ग्रन्थकार ने वेदों की संख्या चार मानी है।

---

९३. अविदित्वा ऋषिं छन्दो दैवतं योगमेव च।
योऽध्यापयेज्जपेद्वापि पापीयान्जायते तु सः॥ बृहद्देवता, ८.१३६।

९४. द्र०, वही, ८.१३८।

९५. पिङ्गलच्छन्दः सूत्रम् (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी-१, १९६९)।

९६. द्र०, वही, अध्याय २।

९७. ज्योतिषामयनं चक्षुः। पाणिनीयशिक्षा, ४१।

९८. प्राचीन भारतीय साहित्य-१, पृ० २२३।

९९. वेदाङ्गमग्रयमखिलं ज्योतिषां गतिकारणम्। सूर्यसिद्धान्त (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७८), १.३।

१००. द्र०, वही, १.३१; २.२४, ५३।

१०१. द्र०, ऋचोऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मूर्त्तिर्यजूंषि च। वही, १२.१७। (उस्राः=रश्मयः)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए हिरण्यगर्भ का वर्णन किया गया है तथा हिरण्यगर्भ का सूर्य, आदित्य, सविता आदि अनेक नामों से निरूपण करके बतलाया गया है—वह प्रकाशस्वरूप है, अन्धकार को नष्ट करने वाला है, महान् रूप में प्रसिद्ध है, ऋक् मन्त्र उसके मण्डल हैं, साम मन्त्र उसकी रश्मियां हैं और यजुर्मन्त्र उसका आकार है। यह भगवान् त्रयीमय है।[१०२] फिर आगे कहा गया है कि वेदात्मक सूर्य से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई।[१०३] सब लोकों के पितामह उस ब्रह्मा को अत्युत्तम वेद प्रदान करके उसे स्वर्णमय ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थापित करके वह स्वयं लोकों को प्रकाशित करता हुआ घूमने लगा।[१०४] यहाँ यह भी बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने गुण और कर्म के अनुरूप पहले (कल्प) के समान क्रमशः वेद प्रतिपादित रीति से यथायोग्य लोक की व्यवस्था की।[१०५]

इस प्रकार ज्योतिषशास्त्र के अनुसार वेदों की संख्या चार है। ऋक्, यजुः और साम यह त्रयी कहलाती है। सूर्यात्मक भगवान् त्रयीमय है, उसी ने ब्रह्मा को वेद दिये। वेद प्रतिपादित रीति से ही ब्रह्मा ने सृष्टि का विभाजन किया। इन सब वर्णनों से ऐसा भासित होता है कि सूर्यसिद्धान्त आदि में वेदों को नित्य माना गया है, सृष्टि के आदि में यथापूर्व उनका प्रकाशन भगवान् द्वारा हुआ करता है।

५. कल्प और वेद-नित्यता

कल्प ग्रन्थ वेद के छः अङ्गों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कल्प को वेदों का हाथ कहा गया है।[१०६] सभी वेदों की विविध शाखाओं का आश्रय लेकर इनका प्रणयन किया गया है। कल्प ग्रन्थ सूत्र रूप में हैं। ये कई प्रकार के हैं—जैसे—(१) श्रौतसूत्र, (२) गृह्यसूत्र, (३) धर्मसूत्र, (४) शुल्वसूत्र।

---

१०२. द्र०, वही, १२.१७।

१०३. द्र०, वही, १२.२०।

१०४. तस्मै वेदान् वरान् दत्त्वा सर्वलोकपितामहम्।
प्रतिष्ठाप्याण्डमध्येऽथ स्वयं पर्येति भावयन्॥ वही, १२.२१।

१०५. गुणकर्मविभागेन सृष्ट्वा प्राग्वदनुक्रमात्।
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेददर्शनात्॥ वही, १२.२७।

१०६. छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते। पाणिनीयशिक्षा, ४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनके प्रणेता विविध आचार्य हैं। एक ही आचार्य के नाम से कुछ श्रौतसूत्र, धर्मसूत्र तथा गृह्यसूत्र भी प्रसिद्ध हैं। कतिपय कल्प ग्रन्थों के आधार पर ही यहां वेद-संज्ञा, संख्या तथा वेदोत्पत्ति एवं वेद-नित्यता आदि पर विचार किया जा रहा है।

कुछ कल्प ग्रन्थों में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों को वेद शब्द से अभिहित किया गया है।[१०७] किन्तु विद्वानों का एक वर्ग ऐसा रहा है जो मध्यकाल में भी केवल मन्त्र भाग को ही वेद मानता रहा है। आपस्तम्ब श्रौतसूत्र की व्याख्या करते हुए हरदत्त मिश्र तथा धूर्तस्वामी बतलाते हैं—किन्हीं ने केवल मन्त्रों को ही वेद माना है।[१०८]

श्रौत्रसूत्र—ऋग्वेद के दो श्रौतसूत्र हैं– आश्वलायन तथा शाङ्खायन श्रौतसूत्र। शुक्ल यजुर्वेद का कात्यायन श्रौतसूत्र प्रसिद्ध है। कृष्ण यजुर्वेद के कई श्रौतसूत्र उपलब्ध हैं, जैसे—बौधायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशिन् या सत्याषाढ, वैखानस भारद्वाज तथा मानव श्रौतसूत्र। सामवेद का श्रौतसूत्र आर्षेयकल्प या मशक श्रौतसूत्र नाम से प्रसिद्ध है। अथर्ववेद का वैतान श्रौतसूत्र है जिसका कात्यायन श्रौतसूत्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।[१०९]

आश्वलायन श्रौतसूत्र में 'समाम्नाय' शब्द का प्रयोग हुआ है।[११०] उसके विषय में व्याख्याकार का कथन है कि समाम्नाय शब्द से ऋग्वेद का निर्देश किया गया है। यहां कई स्थलों पर ऋक्[१११], यजुः[११२], साम[११३] का उल्लेख भी मिलता है। कात्यायन श्रौतसूत्र में कहा गया है—ऋचो यजूंषि सामानि निगदा मन्त्राः (१ ३.१) अर्थात् ऋक्, यजुष्, साम तथा निगद ये मन्त्र कहलाते हैं। यहां

---

१०७. मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्। आप० श्रौत०, २४.१.३१; मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदशब्दः। कौषीतकि गृह्य०, ३.१२.२३।

१०८. कैश्चिन्मन्त्राणामेव वेदत्वमाश्रितम्। व्याख्या, आपस्तम्ब श्रौतसूत्र, २४.१.३१।

१०९. द्र०, बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति (शारदा संस्थान, वाराणसी-५, १९८०), पृ० ३०७, ३१०, ३१५, ३२३, ३२८।

११०. द्र०, आश्वलायन श्रौतसूत्र, १.१.१।

१११. द्र०, ऋचोऽनूच्य यजुर्भिरेके यजन्ति। वही, २.१२.६; २.१२.११; २.१५.३।

११२. द्र०, वही, १.१२.३४; २.१२.६।

११३. द्र०, वही, १.३.२२; १.१२.३५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसा के समान ही ऋक्, यजुः और साम मन्त्रों का लक्षण किया गया है। निगद 'प्रैष' नामक मन्त्र होते हैं जो दूसरे के सम्बोधन के लिये हुआ करते हैं; जैसे—'प्रोक्षणीरासादय', 'अग्नीद् अग्नीन् विहर' इत्यादि। यद्यपि ये यजुर्मन्त्र ही हैं तो भी इन्हें पृथक् कह दिया गया है; क्योंकि इनका ऊँचे स्वर से पाठ किया जाता है।[११४] यहां कई स्थलों पर वेद शब्द[११५] तथा यजुर्मन्त्र[११६] (यजुर्वेद) आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसी प्रकार साम[११७] का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है।

आपस्तम्ब श्रौतसूत्र में कृष्ण वेद को प्रतीक रखकर दर्शपौर्णमास आदि यज्ञों की प्रक्रिया का विस्तार से निरूपण किया गया है। यहां यजुः या यजुर्वेद इत्यादि शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग मिलता है।[११८] कहीं-कहीं ऋग् और यजुः दोनों का ग्रहण किया गया है; जैसे—आज्यं यज्ञ ऋचो यजुर्याज्याश्च वषट्काराः (४.३.११.६)। किन्हीं प्रसङ्गों में साम का भी ग्रहण किया गया है।[११९]

कृष्णयजुर्वेद से सम्बन्ध रखने वाला वैखानस श्रौतसूत्र भी है। यहां भी यजुष् शब्द का अनेकशः प्रयोग हुआ है।[१२०] यहां साम शब्द का भी उल्लेख किया गया है।[१२१] भारद्वाज श्रौतसूत्र में यजुष् शब्द का प्रयोग अनेक बार हुआ है।[१२२]

---

११४. द्र०, कात्यायन श्रौतसूत्र (चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७२), १.३.१ पर भाष्य।

११५. वही, १.८.२९ आदि।

११६. यजुष्क्रियासम्भवात्। वही, १.१०.१३; ११.१.६; १४.४.१२; १७.३.२५; १७.९ १५, २४.७.१९ इत्यादि।

११७. द्र०, वही, १४.४.१; १७ ३.२८; १७.४.४; १७.४.१६; १८.३.१; २६.७.७ इत्यादि।

११८. यजुषा। १.५.१७.११, पृ० ५६; १.८.२४.४, पृ० ६८; ३.४.१३.४; ४.१.३.५; ४.२.५.२ इत्यादि।

११९. (क) रथन्तरेण साम्ना। वही, इष्टि हौत्रकल्प, ६, पृ० २१६।
(ख) ब्रह्माग्न्याधेये सामानि गायति। वही, ५.४.१६.६, पृ० २६४।
इसी प्रकार ५.८.२६.५, पृ० २९४ इत्यादि।

१२०. द्र०, वैखानस श्रौतसूत्र (रॉयल एसियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९४१), ८.११; १२.४,२२; १४.१३; १५.८, १७; १६.१,२२ इत्यादि।

१२१. द्र०, १७.१०; १८,१७; २१.११ इत्यादि।

१२२. भारद्वाज श्रौतसूत्र (वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९६४), १.१९.१२; १.२१.५; १.२३.४; १.२४.११; १.२५.३; ३.१२.१; ७.२२.१६, १७; ८.४.९, १०; ८.५.१०; ८.११.५; १४.१९.६, १० इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ कई स्थलों पर ऋक्, यजुः, साम शब्दों का प्रयोग देखा जाता है। जैसे—अथैकेषां यदृचा यदि यजुषा यदि साम्ना क्रियते वाचमेव यच्छेदिति।[१२२*] किन्हीं स्थलों पर केवल ऋक् और यजुः का नाम आया है।[१२३]

मैत्रायणी शाखा से सम्बन्ध रखने वाले मानव श्रौतसूत्र तथा वाराह श्रौतसूत्र प्रसिद्ध हैं। यहाँ कई स्थलों पर यजुर्वेद, ऋग्वेद तथा सामवेद का उल्लेख हुआ है। जैसे—(१) अध्वर्युर्यजुर्वेदेन करोत्यृग्वेदेन होता सामवेदेनोद्गाता सर्वैर्ब्रह्मा।[१२४] (२) उच्चैर्ऋग्वेदसामवेदाभ्यामुपांशु यजुषोच्चैः संप्रैषैः।[१२५] अनेक स्थलों पर यजुष् शब्द का प्रयोग भी मिलता है।[१२६] कई स्थलों पर साम शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[१२७] यहाँ भी वेदोत्पत्ति तथा वेद-नित्यता के बारे में कुछ उपलब्ध नहीं होता।

सामवेद के श्रौतसूत्रों में मसक (आर्षेय) श्रौतसूत्र, लाट्यायन श्रौतसूत्र और द्राह्यायन श्रौतसूत्र हैं। इनमें लाट्यायन श्रौतसूत्र अधिक प्रसिद्ध है जो सामवेद की कौथुम शाखा से सम्बन्ध रखता है। यहाँ साम शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।[१२८] कहीं-कहीं किसी विशेष 'साम' का निर्देश किया गया है[१२९] कुछ स्थलों पर ऋक् शब्द का प्रयोग मिलता है।[१३०] इसी प्रकार 'यजुष्' शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[१३१] सम्भवतः वह अधिकतर ऋक्, साम और यजुर्मन्त्र के अर्थ में ही है। किन्हीं प्रसङ्गों में ऋक्, यजुः तथा साम तीनों का साथ-साथ उल्लेख मिलता है। जैसे—ऋङ्मयो यजुर्मयः साममयो भव-

---

१२२*. वही, ३.१५.५ तथा आगे।

१२३. द्र०, वही, ४.१७.३।

१२४. वाराह श्रौतसूत्र (मेहरचन्द लच्छमनदास, दिल्ली, १९७१), १.१.१.६।

१२५. वही, १.१.१.७।

१२६. वही, १.२.२.२४; १.२.४.२८, ६४; १.३.१.११, ४१; १.७.३.४; २.१.१.२१, २२; २.१.५.२२; २.२.४.१२ इत्यादि।

१२७. वही, २.२.४.१४; ३.१.१.३७; ३.२.७.३१, ३२; ३.३.४,२२ इत्यादि।

१२८. द्र०, लाट्यायन श्रौतसूत्र (विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९३२), १.५.१, ८; १.६.१५ इत्यादि।

१२९. द्र०, वामदेव्यं गायेत्। वही, १.६.१३; १.६.२९; सिन्धुसाम। १.६.३१; लोकसाम। १.५.१०; वाजपेयसाम्ना। २.५.२३; व्याहृतिसाम। १.५.८।

१३०. द्र०, वही, १.१.६; १.५.२।

१३१. द्र०, वही, १.१.५, २५; १.८.४; १.९.५ इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीति ह्याह।[132] इस श्रौतसूत्र में वेदों की संख्या, उत्पत्ति तथा नित्यता आदि के बारे में विवरण उपलब्ध नहीं होता।

वैतान श्रौतसूत्र में वेद शब्द का प्रयोग हुआ है (यथावेदम् ७.१.२४, पृ० १८१)। यहाँ 'यजुष्' या 'यजुर्वेद' का कई स्थलों पर प्रयोग किया गया है; जैसे—(१) देवताहविर्दक्षिणा यजुर्वेदात्।[133] (२) समिष्टयजुषः।[134] अनेक स्थलों में 'साम' का उल्लेख किया गया है।[135] यहाँ ब्रह्मवेद तथा 'अथर्व' और 'आङ्गिरस' शब्दों का भी प्रयोग किया गया है, जैसे—ब्रह्मवेदवित् (१.१.१, पृ० १), आथर्वणीभिः आङ्गिरसीभिः (२.१.१०, पृ० २४)। इसके अतिरिक्त कुछ स्थलों पर चारों वेदों का नामनिर्देश किया गया है तथा यह भी दिखलाया गया है कि चारों ऋत्विजों में से प्रत्येक किस वेद का ज्ञाता हुआ करता है – अथर्वाङ्गिरोविदं ब्रह्माणं सामविदम् उद्गातारम् ऋग्विदं होतारं यजुर्विदम् अध्वर्युम्।[136] इन श्रौतसूत्रों में वेदों की उत्पत्ति और नित्यता के विषय में कोई सूचना उपलब्ध नहीं होती।

गृह्यसूत्र—चारों वेदों के गृह्यसूत्र भी पृथक्-पृथक् उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद के दो गृह्यसूत्र प्रसिद्ध हैं—आश्वलायन गृह्यसूत्र और शाङ्खायन गृह्यसूत्र। ऋग्वेद की कौषीतकि शाखा का एक अन्य गृह्यसूत्र कोषीतकि गृह्यसूत्र नाम से प्रकाशित हुआ है। शुक्ल यजुर्वेद का प्रसिद्ध गृह्यसूत्र पारस्कर गृह्यसूत्र है, जिस पर अनेक भाष्य हो चुके हैं। इस वेद के अन्य गृह्यसूत्रों का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है। कृष्ण यजुर्वेद के कई गृह्यसूत्र उपलब्ध हैं; जैसे—बौधायन गृह्यसूत्र, भारद्वाज गृह्यसूत्र, आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, हिरण्यकेशिन् गृह्यसूत्र, वैखानस गृह्यसूत्र, अग्निवेश्य गृह्यसूत्र, मानव गृह्यसूत्र, काठक गृह्यसूत्र और लौगाक्षि गृह्यसूत्र। किन्हीं के अनुसार काठक गृह्यसूत्र का ही नाम लौगाक्षि गृह्यसूत्र है।।[137] सामवेद के तीन

---

१३२. द्र०, वही १.६.३७।

१३३. वैतान श्रौतसूत्र (होशियारपुर, १९६७), १.१.८, पृ० ५।

१३४. वही, १.४.१३, पृ० १८ इत्यादि।

१३५. द्र०, वही, ४.१.१ (क), पृ० १४५; ४.३.१३, पृ० १२५; ४.३.२३, २४, पृ० १२६, १२७; ५.३.१६, पृ० १४२; ६.१.१२,१३, पृ० १४७-४८; ६.३.३, पृ० १६३; ६.५.१८, २३, पृ० १७६, १७७ इत्यादि।

१३६. वही, ३.१.२ (ख), पृ० ५०।

१३७. द्र०, बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति, पृ० ३२३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गृह्यसूत्र प्रकाशित हुए हैं--गोभिल गृह्यसूत्र, खदिर गृह्यसूत्र और जैमिनीय गृह्यसूत्र। इनमें गोभिल गृह्यसूत्र अधिक प्रसिद्ध है। अथर्ववेद के गृह्यसूत्रों में कौशिक गृह्यसूत्रों उपलब्ध है। गृह्यसूत्र के आधार पर वेदों की संख्या, उत्पत्ति तथा नित्यता आदि के विषय में यहाँ विचार करना है।

आश्वलायन गृह्यसूत्र में वेद शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।[१३८] यहाँ भी प्रत्येक वेद के लिये १२ वर्ष का ब्रह्मचर्यकाल बतलाया गया है।[१३९] यहाँ कई स्थलों पर ऋक् का ग्रहण किया गया है; जैसे—(१) अथाप्यृच उदाहरन्ति (१.१.४), इसी प्रकार (२) सावित्रीमन्वाह पच्छोऽर्धर्चशः सर्वामिति ततीयम् (३ २.४), (३) तदुक्तमृग्भ्याम् (१.२३ ५) इत्यादि। यहाँ चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है अथ स्वाध्यायमधीयीत ऋचो यजूंषि सामान्यथर्वाऽङ्गिरसो ब्राह्मणानि कल्पान्गाथा नाराशंसीरितिहासपुराणानीति (३ ३.१)। इसी प्रकार अग्रिम दो सूत्रों में भी चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है।[१४०] शाङ्खायन गृह्यसूत्र में भी अनेक स्थलों पर वेद शब्द के एकवचन तथा बहुवचन का प्रयोग मिलता है; जैसे—(१) प्रत्पृचं वेदेन जुहुयादिति हैक आहुः,[१४१] (२) वेदानाम् (१.१६ ३), (३) सर्वेषां वेदानामाधिपत्याय (२.३.१) इत्यादि। यहाँ ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अनेकशः उल्लेख किया गया है; जैसे—भूऋग्वेदं त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, भुवो यजुर्वेदं त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा, स्वः सामवेदं त्वयि दधाम्यसौ स्वाहा भूर्भुवः स्वर्वाकोवाक्यमितिहासपुराणमों सर्वान् वेदांस्त्वयि दधाम्यसौ स्वाहेति वा।[१४२] इसी प्रकार अन्यत्र भी तीन वेदों का नामोल्लेख किया गया है।[१४३] एक स्थल पर इन तीनों वेदों के साथ ब्रह्मवेद' का भी उल्लेख मिलता है - चन्द्रेन देवेन दिशां लोकेन लोकानां 'ब्रह्मवेदेन वेदानां तेन त्वा शमयाम्यसौ स्वाहा।[१४४] यहाँ ब्रह्मवेद शब्द से अथर्ववेद का निर्देश किया गया है। सूत्र के एक अन्य वचन से भी यह विदित होता है कि वे वेदों की संख्या तीन से अधिक मानते

१३८. द्र०, आश्वलायन गृह्यसूत्र (ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९७६), १.१.५; आचार्याधीनो वेदमधीष्व। वही, १.२२.२; ब्राह्मणान्भोजयित्वा वेदसमाप्तिं वाचयीत। वही, १.२२.१६ तथा ३ ४.१ इत्यादि।

१३९. द्वादश वर्षाणि वेदब्रह्मचर्यम्। ग्रहणान्तं वा। वही, १.२२.३, ४।

१४०. द्र०, वही, ३.३.२,३।

१४१. शांखायन गृह्यसूत्र, ४.५.३।

१४२. वही, १.२४.८।

१४३. द्र०, वही, १.१६.३; १.२४.३ इत्यादि।

१४४. वही, १.१६.३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। एक स्थल पर वे कहते हैं—स एतेषां वेदानामेकं द्वौ, त्रीन् सर्वान्वाऽधीते य एवं हुत्वाग्निमुपतिष्ठते।[१४५] यहाँ त्रीन् (तीन को) के पश्चात् (सर्वान्) सबको पढ़ता है, यह कहा गया है। इससे प्रतीत होता है कि सूत्रकार सब वेदों को तीन से अधिक मानता है। इस प्रकार वेदों की संख्या चार प्रकट होती है।

पारस्कर गृह्यसूत्र[१४६] में अनेक बार वेद शब्द का प्रयोग किया गया है; जैसे— (१) वेदब्रह्मचर्यम् (२.५.१३), (२) द्वादश वा प्रतिवेदम् (२.५.१४), (३) समाप्य वेदम् (२.५.३४)। इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी।[१४७] यहाँ वेद के लिये श्रुति शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[१४८] इस गृह्यसूत्र में कहा गया है कि वेद को समाप्त करके स्नातक होवे।[१४९] यहाँ वेद से क्या अभिप्राय है? यह बतलाते हुए कहा गया है—विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः (२ ६.५)। इससे विदित होता है कि पारस्कर गृह्यसूत्र की दृष्टि में इस स्थल पर विधि रूप मन्त्र तथा विधेय रूप ब्राह्मण वाक्य और वैदिक वाक्यों पर विचार करने वाला मीमांसा शास्त्र सभी वेद हैं।[१५०] इसी प्रकार किन्हीं अन्यों का मत दिखलाते हुए यहाँ कहा गया है—षडङ्गमेके (२.६.६) इससे ज्ञात होता है कि किन्हीं के मत में शिक्षा आदि छः अङ्गों सहित वेद की समाप्ति का नियम है। पारस्कर गृह्यसूत्र में चारों वेदों के नामों का भी उल्लेख मिलता है, जैसे— (१) पृथिव्याऽअग्नय इत्यृग्वेदे, (२) अन्तरिक्षाय वायव इति यजुर्वेदे, (३) दिवे सूर्यायेति सामवेदे, (४) दिग्भ्यश्चन्द्रमस इत्यथर्ववेदे (२.१० ४-७)। फिर भी यहाँ स्पष्टतः वेदों की संख्या का निर्देश नहीं किया गया। न ही वेदों की उत्पत्ति और नित्यता के विषय में कुछ कहा गया है।

आपस्तम्ब गृह्यसूत्र[१५१] में वेद शब्द का कई बार प्रयोग हुआ है।[१५२] यहाँ अनेकशः यजुष् शब्द का प्रयोग किया गया है, जो प्रायः यजुर्मन्त्र के अर्थ में प्रतीत

---

१४५. वही, २.१०.७।

१४६. पारस्कर गृह्यसूत्र (भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९७७)।

१४७. द्र०, वही, २.६.१,५; २.१२.२ इत्यादि।

१४८. द्र०, वही, ३.१५.१९।

१४९. वेदान् समाप्य स्नायात्। वही, २.६.१।

१५०. द्र०. वही, २.६.५ पर हरिहर भाष्य।

१५१. आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७१)।

१५२. वही, अथोपाकर्मोत्सर्जनपटलः, ३; ५.१२.१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता है। कहीं चारों वेदों का नाम भी उपलब्ध होता है—सावित्र्या ऋग्वेदाय यजुर्वेदाय सामवेदायाथर्वणवेदायेति।[153] काठक गृह्यसूत्र में अनेक स्थलों पर वेद शब्द का प्रयोग हुआ है।[154] यहां वेद के लिये 'छन्दस्' तथा 'श्रुति' शब्द का भी प्रयोग हुआ है; जैसे—छन्दस्यर्थान्बुद्ध्वा (१.३.१), इति श्रुतिः (४.१.२४)। अनेक स्थलों पर यजुष् शब्द का प्रयोग किया गया है।[155] त्रैविद्यक शब्द का भी प्रयोग हुआ है जिसका व्याख्याकारों ने 'वेदत्रयात्मक' (तीन विद्याओं में होने वाला) यह अर्थ किया है।[156] वेदाध्ययन के विषय में कहा गया है– अधीते हैतेषां वेदानामेकं द्वौ त्रीन्सर्वान्वा यमेवं विद्वानुपनयत इति श्रुतिः।[157] यहां वेदों की संख्या तीन बतला कर आगे सर्वान् (सबको) शब्द का प्रयोग किया गया है जिससे यह प्रतीत होता है कि वेदों की संख्या तीन से अधिक है; किन्तु व्याख्या में इस प्रकार का सङ्केत दृष्टिगोचर नहीं होता।

गोभिल गृह्यसूत्र[158] में वेद शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है; जैसे—ब्रह्मचारी वेदमधीत्य (१.१.७; ३.४.१-४ इत्यादि)। यहां 'आम्नाय' शब्द का भी प्रयोग हुआ है; जैसे—[159]यच्चाम्नायो विदध्यात् (१.६.११, १२)। अनेक स्थलों पर यजुष् शब्द का प्रयोग किया गया है।[160] ऋक् शब्द का भी प्रयोग मिलता है।[161] इसी प्रकार साम शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[162] गृह्यसूत्रों में वेदों की संख्या, उत्पत्ति तथा नित्यता के विषय में कुछ उपलब्ध नहीं हो सका है।

---

१५३. द्र०, वही, अथोपाकर्मोत्सर्जनपटल:; ३।

१५४. (क) श्रोत्रियोऽन्यो वेदाध्यायी। काठक गृह्यसूत्र (दयानन्द महाविद्यालय लाहौर, वि०सं० १९८१), १.३.२।

(ख) सर्वेषां वेदानाम्। वही, १.४.२२।

(ग) वेदस्य निधिगोपो भूयासमिति। वही, ४.१.२१।

(घ) यद्वेदव्रतं तदव्र व्रतम्। वही, ४.३.८३ इत्यादि।

१५५. वही, ४.१ १६ इत्यादि।

१५६. त्रैविद्यकम्। वही, ४.२.१।

१५७. वही, ४.१.२४।

१५८. गोभिल गृह्यसूत्र (मधुरपुर, मुजफ्फरपुर, १९३४)।

१५९. यहाँ व्याख्याकारों ने 'आम्नाय' शब्द का अर्थ वेद किया है।

१६०. यजुर्वा जपेत्। वही, १.६.१५–२०; सकृद्यजुषा। वही, २.८.६,७ इत्यादि।

१६१. वही, १.६.१५-२०।

१६२. वही, १.२.५४; ३.३.३,४ इत्यादि।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्मसूत्र—धर्मसूत्र भी कल्प नामक वेदाङ्ग के अन्तर्गत माने जाते हैं। यद्यपि श्रौतसूत्रों तथा गृह्यसूत्रों के समान वेदों की प्रत्येक शाखा के पृथक्-पृथक् धर्मसूत्र होने चाहिएं तथापि आज कतिपय धर्मसूत्र ही उपलब्ध होते हैं। इनमें से गौतम धर्मसूत्र को प्राचीनतम माना जाता है। इसका सम्बन्ध सामवेद से है। बौधायन धर्मसूत्र, आपस्तम्ब धर्मसूत्र तथा हिरण्यकेशिन् धर्मसूत्र को कृष्ण यजुर्वेद से सम्बद्ध माना जाता है। वसिष्ठ धर्मसूत्र का सम्बन्ध ऋग्वेद के साथ है तथा हारीत धर्मसूत्र का भी। इसी प्रकार विष्णुधर्मसूत्र का सम्बन्ध यजुर्वेद की कठ शाखा से माना जाता है और शङ्खलिखित धर्मसूत्र का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयिशाखा से माना गया है।[163]

गौतम धर्मसूत्र में वेद शब्द का एकवचन तथा बहुवचन में प्रयोग मिलता है; जैसे - वेदो धर्ममूलम् (१.१.१), एकवेदे (१.२.६१), सर्वेषु वेदेषु (३.८.२४)। कहीं-कहीं समास में वेद शब्द का प्रयोग मिलता है।[164] वहाँ एकवचन या बहुवचन का निर्णय विग्रह के आधार पर ही किया जा सकता है। यहां वेद का आम्नाय[165] तथा ब्रह्म[166] आदि शब्दों से उल्लेख किया गया है तथ ऋक्, यजुः और साम तीनों शब्दों का प्रयोग मिलता है---ऋग्यजुषं च सामशब्दो यावत् (२.७.२२)। कहीं-कहीं प्रसङ्गानुसार किसी एक वेद का भी उल्लेख किया गया है; जैसे— एतैर्यजुर्भिः (३.२.१२), चतुर्ऋचं (३.६.२)। गौतम धर्मसूत्र में वेदों की संख्या, नाम, तथा उत्पत्ति और नित्यता का विवेचन नहीं किया गया। व्याख्याकार हरदत्त ने कई प्रसङ्गों में वेद चार हैं[167], तथा ऋग्, यजुः, साम और अथर्व चार वेद हैं[168] का उल्लेख किया है। यद्यपि त्रय्यामान्वीक्षिक्यां वाऽभिविनीतः (२.२.३) की व्याख्या में हरदत्त ने कहा है---ऋग्यजुःसाम ये तीनों वेद त्रयी कहलाते हैं तथापि वहीं यह भी स्पष्ट कर दिया है कि अथर्ववेद का भी उन्हीं में अन्तर्भाव हो

१६३. द्र०. भूमिका, गोतम धर्मसूत्र (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९६६), पृ० ८-९; बलदेव उपाध्याय, वैदिक साहित्य और संस्कृति (पञ्चम संस्करण, १९८०), पृ० ३२९-३४१।

१६४. वेदानुवचनाच्च। वही, १.१.११; लोकवेदवेदाङ्गवित्। १.८.५. इसी प्रकार १.८.१५; ३.२.१।

१६५. यत्र चाऽऽम्नायो विदध्यात्। वही, १.१.४८।

१६६. ब्रह्मानुवचने चाऽऽद्यन्तयोः। वही, १.१.५४; १.२.९।

१६७. (क) यस्तु चतुरो वेदानध्येतुं। वही, १.२.५२ पर व्याख्या।
(ख) चतुर्णां वेदानां पारगः। वही, ३,१०.४७ पर व्याख्या।

१६८. वेदाश्चत्वार ऋग्यजुः सामाथर्वाणः। वही, १.८.५ पर व्याख्या।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है; क्योंकि वहां ऋक्, यजुष्, मन्त्र ही हैं।[१६९] व्याख्याकार ने वेद की शाखाओं का भी विवरण दिया है।[१७०]

बौधायन धर्मसूत्र वेदोपदिष्ट धर्म की व्याख्या करता है।[१७१] यहाँ वेद शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है।[१७२] यहाँ वेदों के अध्ययन के लिये ४८ वष का समय निर्धारित किया गया है जबकि प्रत्येक वेद के लिये १२ वर्ष का।[१७३] इससे यह प्रतीत होता है कि सूत्रकार को चार वेद अभीष्ट हैं। उन्होंने कई स्थलों पर वेद शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया है; जैसे—तमेवं विद्वांसमेव चरन्तं सर्वे वेदा आविशन्ति।[१७४] इसी प्रकार 'वेदानां गुप्त्यै' (पृ० १२८) इत्यादि में। यहाँ 'त्रयीं विद्यां' शब्द का भी प्रयोग किया गया है।[१७५] ऋक्, यजुः और साम शब्द का भी बहुवचन में प्रयोग किया गया है।[१७६] इससे यह प्रतीत होता है कि यहाँ ऋक् मन्त्र यजुर्मन्त्र तथा साममन्त्रों का उल्लेख है। इसी को त्रयी विद्या भी कहा गया है। कहीं ऋग्, यजुः, और सामवेद का ही उल्लेख है; जैसे—ऋग्यजुस्सामवेदानाम् (पृ० ३९२) इत्यादि। कई स्थलों पर ऋक्, यजुः, साम और अथर्व चारों का बहुवचन में प्रयोग मिलता है।[१७७] कहीं चारों वेदों का एक-

---

१६९. द्र०, वही, २.२.३ पर व्याख्या।

१७०. द्र०, वही, १.२.५१ पर व्याख्या।

१७१. (क) उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्।

(ख) तस्यानु व्याख्यास्यामः। बौधायन धर्मसूत्र (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २०२९ वि०), १.१.१.१, २, पृ० १।

१७२. द्र०, वही, १.१.१.१, पृ० १

१७३. द्र०, वही, पृ० १६।

१७४. वही, पृ० ३३।

१७५. द्र०, वही, पृ० २१८।

१७६. (क) ऋचो यजूंषि सामानीति श्राद्धस्य महिमा।
तस्मादेवंविदं सपिण्डमप्याशयेत्॥

(ख) रक्षोघ्नानि च सामानि स्वाधावन्ति यजूंषि च।
मध्वृचोऽथ पवित्राणि श्रावयेदाशयन्छनैः॥ वही, पृ० २७०, इसी प्रकार पृ० १००।

१७७. (क) अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहा विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वयम्भुव ऋग्भ्यो यजुर्भ्यो सामभ्योऽथर्वभ्यश्श्रद्धायै प्रज्ञायै मेधायै श्रियै ह्रियै सवित्रे सावित्र्यै सदसस्पतयेऽनुमतये च व्याहरेन्न चाऽन्तरा विरमेत्। वही, पृ० ३५२।

(ख) ऋग्यजुस्सामवेदानामथर्वाङ्गिरसामपि। वही, पृ० ४०८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वचन में भी प्रयोग किया गया है।[१७८] इससे यह स्पष्ट ही है कि बौधायन धर्मसूत्र में चारों वेदों का उल्लेख हुआ है। यहाँ एक प्रसङ्ग में 'द्वादश वेदसंहिता' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार संहितासहस्रम् शब्द का भी।[१७९] वहाँ संहिता के १२ बार अथवा सहस्र बार अध्ययन का विधान ही माना गया है। एक स्थल पर कहा गया है—वेद वृक्ष है उसका मूल प्रणव है। वेद की आत्मा प्रणव है। प्रणव ब्रह्म है, प्रणव का ही ध्यान करे।[१८०] दूसरे स्थल पर कहा गया है कि वेदों का आदि प्रणव है। वे प्रणव में ही स्थित होते हैं। प्रणव और व्याहृतियां ही नित्य सनातन ब्रह्म हैं।[१८१] इस प्रकार के वचनों से यह प्रकट होता है कि सूत्रकार की दृष्टि से ब्रह्म से ही वेदों की उत्पत्ति होती है उसी में वे विलीन हो जाते हैं। इसकी प्रक्रिया क्या है यह यहाँ स्पष्ट नहीं होता।

आपस्तम्ब धर्मसूत्र धर्म में वेदों को ही मूल प्रमाण मानकर प्रवृत्त हुआ है।[१८२] यहाँ वेद शब्द का एकवचन तथा बहुवचन में प्रयोग किया गया है। यजुः, साम आदि का नामतः उल्लेख किया गया है (द्र०, पृ० ७८, ९१)। इसी प्रकार 'त्रैविद्य' शब्द का भी प्रयोग यहाँ मिलता है (द्र०, वही, पृ० ३४९, ३५२)। साथ ही आथर्वणवेद शब्द का भी प्रयोग उपलब्ध होता है (द्र०, वही, पृ० ३७४)। बौधायन के समान ही वेदों के अध्ययन के लिए ४८ वर्ष का समय नियत किया गया है।[१८३] यहाँ वेद के छः अङ्गों का नामतः उल्लेख हुआ है।[१८४] किन्तु वेद की उत्पत्ति, नित्यता आदि का विवेचन धर्मसूत्रों में भी अल्प मात्रा में ही उपलब्ध होता है।

---

१७८. (क) यत्प्रथममाचामति तेनर्ग्वेदं प्रीणाति यद्द्वितीयं तेन यजुर्वेदं, यत्तृतीयं तेन सामवेदम्। यत्प्रथमं परिमार्ष्टि तेनाऽथर्ववेदं यद्द्वितीयं तेनेतिहासपुराणम्। वही, पृ० ३७६।
(ख) अथाऽतस्संप्रवक्ष्यामि सामर्ग्यजुरथर्वणाम्।
कर्मभिर्येरवाप्नोति क्षिप्रं कामान् मनोगतान्॥ वही, पृ० ३८१।

१७९. द्र०, वही पृ० ३५३, ३५४।

१८० (क) वेदो वृक्षः तस्य मूलं प्रणवः।
(ख) प्रणवात्मको वेदः।
(ग) प्रणवो ब्रह्म प्रणवं ध्यायेत्। वही, पृ० ३०१,३०२।

१८१. प्रणवाद्यास्तथा वेदाः प्रणवे पर्यवस्थिताः।
प्रणवो व्याहृतयश्चैव नित्यं ब्रह्म सनातनम्। वही, पृ० ३७०।

१८२. द्र०, वेदाश्च। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी. १९६९), १.१.१.३, पृ० ३।

१८३. अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि, वही, पृ० १७।

१८४. षडङ्गो वेदः। वही, पृ० २६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६. पाणिनीय व्याकरण तथा वेद-नित्यता

व्याकरण को वेद का मुख कहा गया है—मुखं व्याकरणं स्मृतम्; पाणिनीय शिक्षा, (४१-४२)। जैसा कि पहले दिखलाया जा चुका है, पाणिनीय व्याकरण की ही वेदाङ्गों में गणना की जा सकती है।[१८५] अतः यहां पाणिनीय व्याकरण के आधार पर ही वेद-नित्यता का विचार करना उचित प्रतीत होता है। आचार्य पाणिनि ने स्थल-स्थल पर वैदिक शब्दों की प्रक्रिया का निरूपण किया है। छन्दसि, वेदे, मन्त्रे, निगमे आदि शब्दों द्वारा अनेकशः वेद के शब्दों के नियम दिखलाये हैं। पाणिनि के सूत्रों में छन्द और वेद आदि शब्दों का क्या अर्थ है? यह विवाद का विषय है। परवर्ती वैयाकरणों का विचार है कि इन शब्दों से मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का ग्रहण होता है। इस विवाद का अन्यत्र निरूपण किया जा चुका है।[१८६]

महाभाष्यकार पतञ्जलि ने अनेक स्थलों पर वेद शब्द का प्रयोग किया है।[१८७] इसी प्रकार वैदिक शब्द का भी।[१८८] उन्होंने 'अथ शब्दानुशासनम्' की व्याख्या करते हुए कहा है—किन शब्दों का अनुशासन? लौकिक और वैदिक शब्दों का। फिर वैदिक शब्दों के उदाहरण देते हुए चारों वेद संहिताओं के मन्त्रों की प्रतीकों को प्रस्तुत किया है। ब्राह्मण के वचनों को नहीं। इससे यह प्रतीत होता है कि उन्होंने वेद और ब्राह्मण में अन्तर किया है। 'न सर्वैर्लिङ्गैर्नसर्वाभिर्विभक्तिभिर्वेदे मन्त्रा निगदिताः'[१८९]—सब लिङ्गों तथा सब विभक्तियों से वेद में मन्त्र नहीं पढ़े गये। इस वचन से यह भी स्पष्ट है कि वेद के नियत अंश मन्त्र कहे जाते हैं। महाभाष्य में वेद चार हैं, यह कहा गया है और चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है।[१९०] साथ ही वेद की शाखाओं का भी परिगणन

---

१८५. (क) द्र०, वेद-प्रामाण्य-मीमांसा तथा ऋषि दयानन्द, पृ० ५९-६०।
(ख) वेदाङ्गत्वमस्येवेति। नागेश भट्ट, उद्योत, महाभाष्य, २.१.५७, पृ० ४०३।

१८६. द्र०, वेद तथा ऋषिदयानन्द, पृ० २६-२८।

१८७. रक्षार्थं वेदानामध्येयं व्याकरणम्। महा०, पस्पशा०, पृ० १५;
वेदमन्त्राः। वही, पृ० १६; ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मःषडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयः इति। वही, पृ० १६; वेदेऽपि। वही, पृ० ७४; नान्यस्मिन् वेदे। वही, पृ० ७९ इत्यादि।

१८८. द्र०, वही, पृ०, ६, ७४ (ऋलृक्)।

१८९. वही, पृ० १६।

१९०. चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्नाः, एकशतमध्वर्युशाखा, सहस्रवर्त्मा सामवेदः, एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्, नवधाऽथर्वणो वेदः। वही, पृ० ५४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है। महाभाष्य के अनुसार ये शाखाएँ इस प्रकार हैं—१०१ यजुर्वेद की शाखाएँ है, सहस्र शाखाएँ सामवेद की, २१ ऋग्वेद की तथा ९ अथर्ववेद की। इस प्रकार कुल ११३१ शाखाएँ हैं। महाभाष्य में यत्र-तत्र किसी एक वेद या वेद-मन्त्र का भी उल्लेख किया गया है, जैसे 'प्रत्यृचं चैव तत्कर्म चोद्यते' (पृ० ८३)।

जहाँ तक वेदनित्यता का प्रश्न है, महाभाष्य के आधार पर इस विषय में बहुत से विद्वानों ने विचार किया है। प्रथमतः यह कहा जाता है, महाभाष्यकार ने कई स्थलों पर बतलाया है कि शब्द नित्य है। 'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे' (पृ० ४७) की व्याख्या में कहा गया है—'नित्यपर्यायवाची सिद्धशब्दः'—सिद्ध शब्द नित्य शब्द का समानार्थक है। इससे विदित होता है कि शब्द, अर्थ तथा शब्द और अर्थ का सम्बन्ध सभी महाभाष्यकार की दृष्टि में नित्य हैं। शब्दों के एकत्व और नानात्व का विचार करते हुए कहा गया है—शब्द तो नित्य हैं और नित्य शब्दों में वर्ण भी रूपान्तरित न होने वाले (अविचालिभिः) लोप (नाश) अपाय, आगम (उपजन) और आदेश (विकार) से रहित होने चाहिएं।[१९१] शब्द का लक्षण देते हुए भाष्यकार ने कहा हैं—'प्रयोगेणाभिज्वलितः'।[१९२] इस शब्द का अर्थ है—प्रयोग से अभिव्यक्त होने वाला। अभिव्यक्ति विद्यमान पदार्थ की हुआ करती हैं अतः पहले से विद्यमान शब्द की तालु आदि द्वारा अभिव्यक्ति होती है, यह भाष्यकार का आशय प्रतीत होता है। फलतः शब्द की नित्यता उन्हें अभिप्रेत है। फिर भी इस विषय में एक प्रश्न उठता है वह यह कि वैयाकरणों के अनुसार स्फोट रूप शब्द ही नित्य है वर्ण-समुदाय रूप शब्द तो नित्य नहीं; क्योंकि वर्ण ध्वन्यात्मक है और ध्वनियां अनित्य ही हैं। फिर वर्ण-समुदाय रूप शब्द तथा शब्द-समुदाय रूप वाक्य नित्य कैसे हो सकते हैं और इनके नित्य न होने पर वेद की नित्यता कैसे सिद्ध की जा सकती है। इस विषय में अग्रिम अनुसन्धान अपेक्षित है।

तेन प्रोक्तम्[१९३] इस सूत्र के भाष्य में दो बार यह कहा गया है—छन्दस् अर्थात् वेद तो नित्य हैं उनकी रचना नहीं की जाती।[१९४] इस का समाधान करते

---

१९१. नित्याश्च शब्दाः। नित्येषु च शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्भवितव्यम्, अनपायोपजनविकारिभिः। महाभाष्य, १.१.२ अइउण्, पृ० ६९।

१९२. श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगणाभिज्वलित आकाशदेशः शब्दः। वही, १.१.२. अइउण्, पृ० ७०।

१९३. द्र०, वही, अष्टा० ४.३.१०१।

१९४. न हि च्छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानिच्छन्दांसीति। महाभाष्य, ४.३.१०१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए महाभाष्यकार ने कहा है—यद्यपि अर्थ नित्य है किन्तु यह जो वर्णानुपूर्वी है वह तो अनित्य है, उसके भेद से काठक, कालापक, मौदक तथा पैप्लादक इत्यादि नाम हो जाते हैं। इससे यह विदित होता है कि वेदोक्त एक ही अर्थ कठ आदि के भिन्न-भिन्न प्रवचनों के आधार पर पृथक्-पृथक् दिखाई देता है। उनके शब्दों की आनुपूर्वी में भेद हो जाता है। इसी से काठक, कालापक आदि शाखा-भेद हो जाया करते हैं।

इस प्रकार काठक आदि शाखाओं की वर्णानुपूर्वी को अनित्य बतलाकर अन्यत्र आम्नाय के शब्दों के स्वर, वर्णानुपूर्वी आदि को नियत कहा गया है—स्वरो नियत आम्नाये-अस्यवामशब्दस्य—वर्णानुपूर्वी खल्वप्याम्नाये नियता-अस्य-वामशब्दस्य।[१९५] इन सन्दर्भों की व्याख्या भिन्न-भिन्न प्रकार से की गई है। अर्थ की नित्यता और आनुपूर्वी की नित्यता से महाभाष्यकार का क्या अभिप्राय है? इसे स्पष्ट करने का कैय्यट तथा नागेश ने प्रयत्न किया है। कैय्यट के अनुसार महाप्रलय आदि में वर्णानुपूर्वी नष्ट हो जाती है, फिर उत्पन्न होकर ऋषिजन संस्कार के अतिशय से वेदार्थ का स्मरण करके शब्द-रचना कर देते हैं। इस प्रकार उसी अर्थ को बार-बार प्रकट किया जाता है।[१९६] अतः अर्थ नियत है, नित्य है, यह कहना सङ्गत है। महाभाष्य के इस प्रकार के कथनों के आधार पर वेदों की नित्यता सिद्ध की जाती है; किन्तु इनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि यह नित्यता पूर्वमीमांसा के समान है अथवा अद्वैत वेदान्त के समान।[१९७]

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में वेदों की संख्या, वेदोत्पत्ति तथा वेद-नित्यता आदि के विषय में कुछ महत्त्वपूर्ण विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने ब्रह्मकाण्ड की कुछ कारिकाओं में आदि और अन्त रहित शब्द ब्रह्म का प्रतिपादन करके उसकी प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए कहा है—उस ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय और अनुकृति वेद है जो एक है तथापि महर्षियों ने अनेक रूपों में उसका समाम्नान अलग-अलग प्रकार से किया है।[१९८]

---

१९५. द्र०, महाभाष्य, ५.२.५९।

१९६. महाप्रलयादिषु वर्णानुपूर्वीविनाशे पुनरुत्पद्य ऋषयः संस्कारातिशयाद्वेदार्थं स्मृत्वा शब्दरचनां विदधतीत्यर्थः। प्रदीप, महाभाष्य, ४.३.१०१।

१९७. इन दोनों की दृष्टि से वेद-नित्यता का क्या अभिप्राय है यह आगे दिखलाया जायेगा।

१९८. प्राप्त्युपायोऽनुकारश्च तस्य वेदो महर्षिभिः।
एकोऽप्यनेकवर्त्मेव समाम्नातः पृथक्-पृथक्। वाक्यपदीय (चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, १९७५), ब्रह्मकाण्ड, कारिका ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ यह भी बतलाया गया है कि उन वेदों की विभिन्न शाखाओं में बहुत से मार्ग दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु एक ही कर्म में सब उपकारक हो जाया करते हैं।[१९९] इसके अनन्तर यह बतलाते हुए कि सभी भिन्न-भिन्न विद्यायें वेद के ही अङ्ग हैं, भर्तृहरि ने कहा है कि बुद्धिमानों ने व्याकरण को वेदों का प्रथम (प्रधान) अङ्ग कहा है।[२००] यहाँ भर्तृहरि ने वेद के अर्थ में छन्दस् शब्द का प्रयोग किया है। कई स्थलों पर 'वेद' तथा 'श्रुति' आदि शब्द का ही प्रयोग किया गया है (का० ५, ७, १४४ आदि)। उन्होंने स्फोट का निरूपण करते हुए चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया है।[२०१]

भर्तृहरि ने वेद को अनादि, नित्य, दैवीवाग् (१५४) बतलाया है। वे कहते हैं—अनादिमव्यवच्छिन्नं श्रुतिमाहुरकर्तृकाम्[२०२] अर्थात् विद्वान् लोग श्रुति को आदि रहित निरन्तर रहने वाली (अव्यवच्छिन्ना) कहते हैं तथा बतलाते हैं कि इसका कोई कर्त्ता नहीं। वेदों की नित्यता उन्होंने कई प्रकार से दिखलाई है; जैसे—(१) एक स्थल पर कहा है कि यह समस्त जगत् शब्द ब्रह्म का विवर्त है आदि में वेद के शब्दों से ही इस समस्त विश्व का प्रादुर्भाव हुआ।[२०३] यह कथन मनुस्मृति के ही समान है।[२०४] यहाँ वेद को अनादि और जगत् को आदिमान् दिखलाया गया है। (२) दूसरे स्थल पर भर्तृहरि ने बतलाया है कि चैतन्य के समान जो आगम अविच्छिन्न रूप से प्रवृत्त हो रहा है उसका आश्रय लेने वाले जन को तार्किक वादों से विचलित नहीं किया जाता।[२०५]

एक अन्य स्थल पर उन्होंने महर्षियों के अनुसार शब्द, अर्थ और उनके सम्बन्ध की नित्यता दिखलाई है।[२०६] इससे शब्द रूप वेद को भी नित्य कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई प्रसङ्गों में भी उन्होंने वेदों को अकर्तृक

---

१९९. वही, का० ६।

२००. प्रथमं छन्दसामङ्गं प्राहुर्व्याकरणं बुधाः। वही, का० ११।

२०१. द्र०, अथर्वणामङ्गिरसां साम्नामृग्यजुषस्य च।
यस्मिन्नुच्चावचा वर्णाः पृथक्स्थितिपरिग्रहाः। वही, का० २१।

२०२. वही, का० १४४।

२०३. छन्दोभ्य एव प्रथममेतद्विश्वं व्यवर्तत। वही, का० १२०।

२०४. वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्-संस्थाश्च निर्ममे। मनुस्मृति, १.२१।

२०५. चैतन्यमिव यश्चायमविच्छेदेन वर्तते।
आगमस्तमुपासीनो हेतुवादैर्न बाध्यते। वा० ब्रह्मकाण्ड, का० ४१।

२०६. नित्याः शब्दार्थसम्बन्धास्तत्राम्नाता महर्षिभिः। वही, का० २३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जिसका कोई कर्त्ता न हो) कहा है।[२०७] इस प्रकार भर्तृहरि की दृष्टि से वेद अनादि तथा नित्य हैं।

७. निरुक्त और वेदनित्यता

निरुक्त को वेदों का प्रमुख अङ्ग कहा गया है। यह वेद का श्रोत्र है निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते (पाणिनीयशिक्षा ४१-४२)। यद्यपि अनेक निरुक्त ग्रन्थ विभिन्न लेखकों ने लिखे थे तथापि आज यास्क का निरुक्त ही प्रसिद्ध है। उसी की वेदाङ्गों में गणना है। इस शास्त्र का वेद के अर्थ के बोध के लिए अत्यधिक उपयोग है। इसमें वेद के शब्दों के निर्वचन किये गये हैं। निरुक्तकार यास्क ने स्वयं ही विस्तार से निरुक्त के महत्त्व का वर्णन किया है।[२०८]

यास्क ने निरुक्त में वेद का अनेक शब्दों से स्मरण किया गया है। यहाँ विशेषकर निगम[२०९] शब्द से वेद का उल्लेख मिलता है। कुछ स्थलों पर 'आम्नाय' शब्द का प्रयोग भी हुआ है।[२१०] मन्त्र, छन्द आदि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है तथा इन शब्दों की निरुक्ति भी की गई है; जैसे—मन्त्रा मननात् (वही, ७.१२) अर्थात् मन्त्र मनन के कारण कहे जाते हैं। इसी प्रकार छन्दांसि छादनात् (वही, ७.१२) अर्थात् छन्द छादन के कारण कहे जाते हैं। यद्यपि इन निरुक्तियों का तात्पर्य अर्थ का अध्याहार करके ही निकाला जा सकता है तथापि इतना निश्चित है कि निरुक्तकार ने इन शब्दों का अर्थ की दृष्टि से निर्वचन किया है। निरुक्त में ऋग्[२११], यजुः,[२१२] और साम[२१३] तीनों नामों का कई बार प्रयोग हुआ है।[२१४] एक स्थल पर बताया गया है कि ऋचाओं से शस्त्र पढ़ते हैं, यजुषों से यजन करते

---

२०७. द्र०, वही, का० १०,१३।

२०८. द्र०, निरुक्तशास्त्र (रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर, २०२१ वि०), १.१५-२०।

२०९. 'इत्यपि निगमो भवति' इत्यादि बहुशः प्रयोग किया गया है।

२१०. (क) आम्नायवचनादेतद् भवति। वही, ७.२४।

(ख) आम्नायवचनाद् अहिंसा प्रतीयेत। वही, १.१६।

२११. द्र०, वही, १.८; २.१६; ३.४,१९; ५.१४,२७; ७.१,८,१३,२६; ९.४,६,२३; १०.२६,३२; १२.१०; १३.७,९,१० इत्यादि।

२१२. द्र०, वही, ३.१९; ७.१२; ११.४३; १४.१४ इत्यादि।

२१३. द्र०, वही, ७.१२; १३.७; १४.१४ इत्यादि।

२१४. द्र०, वही, १३.७,९ इत्यादि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, सामों से स्तुति करते हैं।[२१५] यद्यपि यहाँ अथर्वा[२१६] तथा अङ्गिरस[२१७] शब्द का भी प्रयोग हुआ है तथापि निरुक्त के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि वह किसी अन्य अर्थ में है वेद के नाम के लिये नहीं। फिर भी निरुक्त के एक सन्दर्भ से यह विदित होता है कि वहाँ वेदों की संख्या चार मानी गई है—चत्वारि शृङ्गा (ऋक्, ४.५८.३) इस मन्त्र की व्याख्या करते हुए निरुक्तकार ने कहा है—वेदा वा एत उक्ताः—अथवा ये चार वेद ही कहे गये हैं।[२१८]

निरुक्तकार ने ऋक्, यजुः और साम तीनों शब्दों की निरुक्ति भी दिखलाई है जैसे—ऋगर्चनी (वही, १.८) अर्थात् स्तुति वाली है। यजुर्यजतेः (वही, ७.१२) अर्थात् यजुष् शब्द यज् धातु से होता है। इसी प्रकार साम सम्मितमृचा स्यतेर्वा (वही, ७.१२) अर्थात् साम का अर्थ है ऋक् के तुल्य अथवा यह शब्द स्यति[२१९] धातु से निष्पन्न होता है। निदान के ज्ञाताओं का कथन है कि यह ऋचा के समान होता है।

वेदों की उत्पत्ति तथा नित्यता के विषय में भी निरुक्त से कुछ सामग्री मिलती है। निरुक्त में कहा गया है—धर्म को साक्षात् करने वाले ऋषि हुए हैं उन्होंने अपने से छोटों (अवर) के लिये जिन्हें धर्म का साक्षात्कार नहीं था उपदेश के द्वारा मन्त्र दिये। उपदेश में हार मानने वाले अवर ऋषियों ने स्पष्ट ग्रहण के लिये इस (निघण्टु) ग्रन्थ का समाम्नान किया और वेद तथा वेदाङ्गों का भी।[२२०] इस सन्दर्भ में किन्हीं के अनुसार 'समाम्नासिषुः' शब्द का अर्थ है सङ्ग्रह किया जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि वेदों को भी किसी समय व्यवस्थित किया गया होगा। किन्तु दूसरे विद्वान् 'समाम्नासिषुः' शब्द का अर्थ धातु (म्ना अभ्यासे)

---

२१५. यदेनमृग्भिः शंसन्ति यजुर्भिर्यजन्ति सामभिः स्तुवन्ति। वही, १३.७।

२१६. वही, ११.१८,१९ इत्यादि।

२१७. वही, ११.१७,१८,१९ इत्यादि।

२१८. द्र०, वही, १३.७।

२१९. यहाँ कुछ व्याख्याकारों ने स्यति से अस् धातु का ग्रहण किया है। व्याकरण के अनुसार षो अन्तकर्मणि (दिवादि) धातु से स्यति रूप बनता है। अतः उसी से साम शब्द का निष्पत्ति मानना उचित प्रतीत होता है।

२२०. साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्त्सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः। वेदं च वेदाङ्गानि च। वही, १.२०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अर्थ के अनुसार अभ्यास किया, यह करते हैं।[२२१] इस अर्थ के अनुसार निरुक्त का यह वचन वेदों की व्यवस्था आदि के विषय में कुछ नहीं बतलाता।

निरुक्त में एक स्थल पर कहा गया है—पुरुषविद्याऽनित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे (वही, १.२) अर्थात् पुरुष का ज्ञान अनित्य होने से कर्म की सम्पन्नता (कराने) वाला मन्त्र वेद में है। इस कथन से यह परिणाम निकाला जाता है कि पुरुष का ज्ञान अनित्य है तथा वेद-विद्या नित्य है। पुरुष की विद्या अनित्य होने के कारण नित्य मन्त्रों द्वारा यज्ञादि कर्मों का प्रतिपादन किया गया है।

निरुक्त में कौत्स की ओर से पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि मन्त्र अनर्थक हैं। इस स्थापना के लिये अनेक युक्तियाँ दी गई हैं। जिनमें से एक युक्ति यह है—नियतवाचोयुक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति —अर्थात् मन्त्रों में पदों की योजना नियत होती है, आनुपूर्वी भी नियत होती है अतः मन्त्र अनर्थक हैं। इस आक्षेप का परिहार करते हुए सिद्धान्त की ओर से बतलाया गया है--जो (पूर्वपक्षी ने) यह कहा है कि मन्त्रों में पद-योजना तथा आनुपूर्वी नियत होती है अतः ये अनर्थक हैं यह ठीक नहीं। कारण, (कुछ) लौकिक रचनाओं में भी यही बात होती है; जैसे इन्द्राग्नी और पितापुत्रौ इत्यादि में इसी प्रकार की पद-योजना तथा आनुपूर्वी नियत है।[२२२]

निरुक्त के इन वचनों से यह स्पष्ट नहीं है कि यास्क ने मन्त्रों को अथवा वेद को किस प्रकार नित्य माना है। अतः यह कहना कठिन है कि निरुक्तकार की दृष्टि में वेदनित्यता का क्या अभिप्राय है।

●●

२२१. द्र०, समाम्नासिषुः सम्यगभ्यासं कारितवन्तः। स्वामी दयानन्द, ऋग्वेदादि०, प्रश्नोत्तरविषय, पृ० ३८६।

२२२. यथो एतन्नियतवाचोयुक्तयो नियतानुपूर्व्या भवन्ति इति। लौकिकेष्वप्येतद्, यथेन्द्राग्नी, पितापुत्राविति। निरुक्त, १.१६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिच्छेद ३

स्मृति, रामायण, महाभारत तथा पुराण आदि में वेदनित्यता

१. स्मृतियाँ और वेदनित्यता :

मनुस्मृति आदि स्मृतियां वेदों को प्रमाण मान कर प्रवृत्त हुई हैं, यह विस्तार से अन्यत्र दिखलाया जा चुका है। यहां संक्षेप में यह निरूपण करना है कि स्मृतियों में वेदों के नाम, संख्या तथा उत्पत्ति और नित्यता आदि के विषय में क्या कहा गया है?

स्मृतियों में मनुस्मृति प्रमुख है। यहां वेद तथा श्रुति नाम से वेद का उल्लेख किया गया है।[1] याज्ञवल्क्य आदि स्मृति में भी वेद, श्रुति आदि नाम से वेदों का उल्लेख किया गया है। व्यासस्मृति में 'वेदोपनिषदाम्' (३.१०) पद मिलता है जिससे यह प्रतीत होता है कि स्मृतिकार की दृष्टि में उपनिषद् वेद से पृथक् हैं। मनुस्मृति के एक श्लोक में मनुस्मृति की महत्ता दिखलाते हुए कहा गया है कि इस शास्त्र के धारण से चार वेदों के समान पुण्य होता है।[2] किन्तु अन्य कई स्थलों पर तीन वेदों का ही उल्लेख किया गया है। एक स्थल पर कहा गया है—एकाग्रचित्त होकर ऋक् संहिता का तीन बार अभ्यास करके अथवा यजुर्मन्त्रों का या उपनिषद् सहित साम मन्त्रों का तीन बार अभ्यास करके मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है।[3] इसी प्रकार कुछ अन्य स्थलों पर भी तीन वेदों का उल्लेख किया गया है।[4] वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है कि जहां तीन

---

१. द्र०, मनु० (चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७४), १.१०८; २.६-१४ इत्यादि।

२. चतुर्वेदसमं पुण्यमस्य शास्त्रस्य धारणात्। मनु०, १२.१०।
(यह श्लोक प्रक्षिप्त माना गया है जो १२५ श्लोक के पश्चात् है)।

३. ऋक्संहितां त्रिरभ्यस्य यजुषां वा समाहितः।
साम्नां वा सरहस्यानां सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ वही, ११.२६२।

४. द्र०, वही, ४.१२४; १२.११२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों का उल्लेख किया गया है वहाँ वेदों के तीन प्रकार के मन्त्रों के आधार पर ही ऐसा कहा गया है। कारण, एक स्थल पर वेद को त्रिवृत् कहा गया है। त्रिवृत् शब्द की टीका करते हुए कुल्लूक भट्ट लिखते हैं—ऋक् आदि रूप में तीन बार आवृत्ति होती है। अतः (वेद को) त्रिवृत् कहा गया है।[५] इसका स्पष्टीकरण अन्य स्थल पर हो जाता है। वहाँ कहा गया है—ऋचाएँ, यजुर्मन्त्र और अनेकविध साम इनको त्रिवृत् वेद जानना चाहिए जो इसे जानता है वही वेद का ज्ञाता है।[६]

मनुस्मृति में कई स्थलों पर वेद को सनातन (नित्य) कहा गया है।[७] एक स्थल पर कहा गया है—उस नित्य वेद की प्रजापति ने तप के द्वारा सृष्टि के आदि में रचना (आविर्भाव) की और ऋषिजनों ने उसे तप से ही प्राप्त किया।[८] यद्यपि मनुस्मृति के श्लोक में 'असृजत्' शब्द का प्रयोग है तथापि मनुस्मृति में जो कई स्थलों पर वेद को 'सनातन' कहा गया है; और वेद शब्दों से ही सर्ग के आदि में विविध नामों और भेदों की सृष्टि कही गई है उससे यही संगत प्रतीत होता है कि यहाँ 'असृजत्' का अर्थ 'प्रादुर्भाव किया' ही मानना होगा।

सृष्टि के क्रम का उल्लेख करते हुए मनुस्मृति में कहा गया है—उस ब्रह्मा ने यज्ञों की सिद्धि के लिये अग्नि, वायु और सूर्य से ऋग्वेद, यजुर्वेद और साम वेद को प्रकट किया (दुदोह=दोहन किया)[९] इस श्लोक की टीका में कहा गया है कि वेदों को अपौरुषेय मानना ही मनु को अभीष्ट है। पूर्वकल्प में जो वेद थे वही सर्वज्ञ ब्रह्मा की स्मृति में उपस्थित हो गये उनको कल्प के आदि में अग्नि, वायु और रवि से आकृष्ट किया।[१०] और, यह भी बतलाया गया है कि यहाँ दुह् धातु का 'आकर्षण' अर्थ है तथा विद्यमान वेदों की अभिव्यक्ति दिखलाने के लिये इसका इस अर्थ में प्रयोग किया गया है।

---

५. द्र०, वही, ११.२६३ तथा मन्वर्थमुक्तावली।

६. ऋचो यजूंषि चान्यानि सामानि विविधानि च।
एष ज्ञेयस्त्रिवृद्वेदो यो वेदैनं स वेदवित्॥ वही, ११.२६४।

७. द्र०, वही, १.२३; १२.९४,९९।

८. प्रजापतिरिदं शास्त्रं तपसैवासृजत्प्रभुः।
तथैव वेदानृषयस्तपसा प्रतिपेदिरे॥ वही, ११.२४३।

९. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥ वही, १.२३।

१०. द्र०, मन्वर्थमुक्तावली, मनु०, १.२३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों की नित्यता को प्रकट करने के लिए यह भी कहा गया है कि उस ब्रह्मा ने सब के पृथक्-पृथक् नाम, कर्म और पृथक् व्यवस्था को सृष्टि के आदि में वेद के शब्दों से ही निर्मित किया।[११] टीकाकार ने दिखलाया है कि सृष्टि के आदि में वेद के शब्दों से ही जानकर इन सबका निर्माण किया। उनका यह भी विचार है कि जगत् की सृष्टि प्रत्येक सर्ग में वेदपूर्वक ही होती है।[१२]

अन्य स्मृतियों में भी वेद के विषय में विविध प्रकार के विचार प्रकट किये गये हैं। वहां वेद और स्मृति को धर्म का मूल माना गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। याज्ञवल्क्य स्मृति में चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है।[१३] अत्रि-स्मृति के 'अधीत्य चतुरो वेदान्' इस वचन में वेदों की संख्या चार कही गई है।[१४] सम्वर्त स्मृति में ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का उल्लेख किया गया है।[१५] व्यासस्मृति में चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है।[१६] इसी प्रकार शङ्ख-स्मृति (१४.७), गोभिलस्मृति (प्र०, २.५३, ५४) में चारों वेदों का नामतः निर्देश किया गया है। कहीं-कहीं तीन वेद भी कहे गये हैं।[१७]

इस प्रकार प्रायः सभी स्मृतियों में चार वेदों का उल्लेख है। कहीं-कहीं जो ऋक्, यजुः, साम तीन का ही उल्लेख मिलता है सम्भवतः वह तीन प्रकार के मन्त्रों को लक्ष्य करके ही कर दिया गया है। इन स्मृतियों में वेदों को सनातन (नित्य) बतलाया गया है; किन्तु प्रवाह से ही। प्रत्येक सृष्टि के आदि में अन्य सृष्टि के समान ही वेदों की भी पूर्ववत् रचना की जाती है, यही वेदों की नित्यता है। इसीलिये मनु ने अग्नि आदि से प्रजापति द्वारा इनका दोहन बतलाया है। इस कथन का क्या अभिप्राय हो सकता है इस पर आगे विचार किया जायेगा।

---

११. सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्पृथक् ॥
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे ॥ वही, १.२१ ॥

१२. द्र०, मन्वर्थमुक्तावली, मनु० १.२१ ॥

१३. द्र०, आचाराध्याय ४१-४४।

१४. द्र०, अत्रिस्मृति (३०३), बीस स्मृतियाँ द्वितीय खण्ड (संस्कृति संस्थान बरेली, १९६६), पृ० ४०१।

१५. द्र०, सम्वर्त्तस्मृति (२२३), बीस स्मृतियां, द्वितीय खण्ड, पृ० १८५।

१६. तिष्ठन् स्थित्वा तु गायत्रीं ततः स्वाध्यायमारभेत।
ऋचाञ्च यजुषां साम्नामथर्वाङ्गिरसामपि ॥ व्यासस्मृति, ३.१०।

१७. यस्माज्जातास्त्रयो वेदा जातवेदाः स उच्यते। वृद्धहारीतस्मृति, १०.५४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. वाल्मीकि रामायण और वेदनित्यता

वाल्मीकि रामायण में 'वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञ', 'वेदवित्', 'वेदपारग', 'वेदज्ञ', इत्यादि शब्दों का बहुशः प्रयोग किया गया है। यहाँ विशेष रूप से वेद शब्द का ही प्रयोग उपलब्ध होता है। कहीं-कहीं श्रुति शब्द का भी प्रयोग मिलता है।[१८] कई स्थलों पर वेद-श्रुति शब्द का भी प्रयोग मिलता है।[१९] उनमें से कुछ स्थलों पर यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वेदश्रुति नाम की नदी है।[२०] वाल्मीकि-रामायण में 'क्षत्रवेद' तथा 'ब्रह्मवेद' शब्दों का भी उल्लेख मिलता है।[२१] ग्रन्थकार को इनसे क्या अभिप्राय अभीष्ट रहा होगा, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। इसी प्रकार एक स्थल पर 'मन्त्रवेदविदो विप्रान्' (युद्ध० १०.६) शब्द का भी प्रयोग मिलता है। कुछ टीकाकारों ने इसका अर्थ 'मन्त्रब्राह्मणविदः' किया है। सम्भवतः परवर्ती परिभाषा के आधार पर यह कहा गया है।

कहीं-कहीं प्रसङ्ग से किसी एक वेद का नाम-ग्रहण किया गया है; जैसे पुत्रेष्टि के प्रसङ्ग में अथर्ववेद का उल्लेख है।[२२] इसी प्रकार अन्य स्थल पर युजर्वेद का उल्लेख किया गया है—'यजुर्वेदविनीतश्च वेदविद्भिः सुपूजितः' (सुन्दर० ३५.१४)। वाल्मीकि रामायण में विशेषकर वेद शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया गया है; जैसे - वेदेषु निष्ठितम् (बा० २३.२१), वेदाः (अयोध्या० १४.७, ४६; ४५.२५; १००.७२; १०६.१४) इत्यादि। यदि कहीं एकवचन में भी प्रयोग है; जैसे 'लोके वेदे श्रुतः स्मृतः' (अयोध्या० २४.२७) तो वहाँ समुदित रूप से सभी वेदों को एकवचन द्वारा कह दिया गया है। कुछ स्थलों पर स्पष्टतः ऋक्, यजुः, साम का साथ-साथ उल्लेख किया गया है—हनुमान् को सुग्रीव के द्वारा राम के पास भेजा जाता है। हनुमान् शिष्ट शब्दों में अपना परिचय देते हुए बतलाते हैं कि धर्मात्मा सुग्रीव आपके साथ मित्रता चाहते हैं। उनके वचनों

---

१८. त्वत्तो मया श्रुतं वीर श्रुतिभ्यश्च मया श्रुतम्।
वाल्मीकि रामायण (चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-१; १९७७), उत्तरकाण्ड, ६३.४।

१९. सा तु वेदश्रुतिं श्रुत्वा वै तपसो निधिम्।
अभवत् पाण्डुदेहा सा सुव्यञ्जितशरीरजा॥ वही, २.१७।

२०. ततो वेदश्रुतिं नाम शिववारिवहां नदीम्।
उत्तीर्याभिमुखः प्रायादगस्त्याध्युषितां दिशम्॥ वही, अयोध्या०, ४९.९।

२१. क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रह्मवेदविदामपि॥ वही, बाल०, ६५.२२।

२२. इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात्।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विजानतः॥ वही, बाल०, १५.२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को सुनकर राम लक्ष्मण से कहते हैं कि ऋग्वेद में शिक्षित न होने वाला, यजुर्वेद को धारण न करने वाला, सामवेद को न जानने वाला इस प्रकार वार्तालाप करने में समर्थ नहीं है।[२३] यद्यपि इस सन्दर्भ में अथर्ववेद का उल्लेख नहीं किया गया है तथापि अन्यत्र[२४] जो अथर्ववेद का निर्देश मिलता है उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि रामायण में वेदों की संख्या चार मानी गई है।

वेदों की उत्पत्ति अथवा नित्यता के विषय में वाल्मीकि रामायण से अधिक सूचनाएँ नहीं मिलती। एक स्थल पर कहा गया है—सत्य ही अक्षय (नष्ट न होने वाले नित्य) वेद हैं।[२५] इससे यह सङ्केत मिलता है कि वेदों को नित्य माना गया है, किन्तु किस प्रकार? यह यहाँ स्पष्ट नहीं है। इस प्रसङ्ग में एक स्थल अवश्य विचारणीय है: हनुमान् राम से कहते कि हैं मैं सीता को नष्ट हुई वेदश्रुति के समान ले आऊँगा। चाहे वह रसातल में हो अथवा नभस्थल में।[२६] 'नष्टां वेदश्रुतीमिव' यहाँ पर लुप्त हुई वेदश्रुति को उपमान रूप में रक्खा गया है। इससे प्रतीत होता है कि वेदश्रुति का लोप उस समय लोक-प्रसिद्ध था। जैसा कि ऊपर बतलाया गया है रामायण में कई स्थलों पर वेदश्रुति नामक एक नदी का उल्लेख किया गया है; किन्तु यहाँ टीकाकारों ने 'वेदश्रुति' को समस्तपद माना है। रामायणभूषण में इसका अर्थ किया गया है—'नष्ट' का अर्थ है मधु एवं कैटभ द्वारा अपहृत। 'वेदश्रुतीम्' यहाँ श्रुति का अर्थ है श्रूयते इति अर्थात् जो सुनी जाती है=वेद शब्द। वेदरूपश्रुतीमिव=वेदगिरमिव, वेदवाणी के समान यहाँ 'श्रुति' शब्द में आर्ष होने से दीर्घ हुआ है।[२७] रामानुजीय टीका में यह भी कहा गया है—जो सुनी जाती है वह श्रुति है इस व्युत्पत्ति से श्रुति तो वेद शास्त्र आदि सभी की होती है। उसकी व्यावृत्ति के लिये वेदश्रुति कहा गया है।[२८] महेश्वरतीर्थकृत व्याख्या में इतना और बतलाया गया है—मधु और कैटभ के

---

२३. नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम्॥ वही, किष्किन्धा०, ३.२९।

२४. द्र०, वही, बाल०, १५.२।

२५. सत्यमेवाक्षया वेदाः। वही, अयोध्या०, १४.७।

२६. भार्यावियोगजं दुःखं न चिरात्त्वं विमोक्ष्यसे।
अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतीमिव॥ वही, किष्किन्धा०, ६.५।

२७. नष्टां मधुकैटभापहृताम्। वेदश्रुतीम् श्रूयत इति श्रुतिः शब्दः, वेदरूपश्रुतीमिव वेदगिरमिव दीर्घः आर्षः। गोविन्दराज, रामायणभूषण, किष्किन्धा, ६.५।

२८. द्र०, रामानुजीय व्याख्या, वही, ६.५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा पाताल में छिपाये गये वेद को मत्स्यरूपधारी विष्णु जिस प्रकार ले आये थे उसी प्रकार सीता को ले आऊँगा यह अर्थ है।[29] इसी प्रकार का भाव महाभारत में भी मिलता है—फिर वीर राम ने उन सब राक्षसों का नाश कर नष्ट हुई वेदश्रुति के समान अपनी पत्नी को लौटा लिया।[30]

प्रस्तुत सन्दर्भों में वेदश्रुति के नाश की बात कही गई है जिस से विदित होता है कि वेद का श्रवण कभी लुप्त हुआ और उसका पुनः उद्धार किया गया। यद्यपि रामायण के व्याख्याकारों ने यहाँ महाभारत और पुराणों के आख्यानों का भी सन्दर्भ दिया है तथा यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि रामायण के इस सन्दर्भ में उन आख्यानों का आधार लिया गया है। महाभारत के आधार पर वेदश्रुति नाश का विवेचन आगे किया जायेगा।

३. महाभारत तथा वेद-नित्यता

महाभारत में वेद-सम्बन्धी प्रचुर सामग्री विद्यमान है। यहाँ वेदों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है, वेदप्रतिपाद्य विषय का निर्देश किया गया है, वेदोक्त गुणों का वर्णन करते हुए वेदाध्ययन की भी चर्चा की गई है। इसके वेद प्रामाण्य-विषयक मन्तव्य का अन्यत्र विशद विवेचन किया जा चुका है। यहाँ संक्षेप में वेद-संज्ञा, वेद-संख्या तथा वेदोत्पत्ति एवं नित्यता आदि पर ही विचार करना है।

यहाँ वेद का वेद, श्रुति आदि शब्दों से उल्लेख किया गया है।[31] कहीं-कहीं श्रुति शब्द का वेद शब्द के साथ भी प्रयोग मिलता है[32] जिससे विदित होता है कि श्रुति और वेद भिन्नार्थक शब्द हैं। आम्नाय शब्द का भी प्रयोग किया गया है; किन्तु उसका वास्तविक अर्थ क्या है, यह अन्वेषणीय ही है। कारण,

---

२९. मधुकैटभाभ्यां पाताले गुप्तं वेदजातं मत्स्याकृतिहरिर्यथा
आनीतवान् तद्वत्सीतामानयिष्यामि, आनेष्यामीत्यर्थः।
वा० रा० व्याख्या, किष्किन्धा०, ६.५।

३०. ततो रामेण वीरेण हत्वा तान्सर्वराक्षसान्।
पुनः प्रत्याहृता भार्या नष्टा वेदश्रुतिर्यथा॥ महाभारत, ३.१४७.३६।

३१. (क) वेद शब्द का बहुशः प्रयोग किया गया है।
(ख) 'श्रुति' वही, कर्णपर्व, ६९.८५; शान्ति०, १२.६।

३२. वेदश्रुतिभिः। वही, शान्ति०, २२३.११; वेदश्रुतिः। वही, शान्ति०, ३२६. ९४;३३३.८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ 'आम्नाय' से वेद की उत्पत्ति बतलाई गई है।[३३] यद्यपि निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि यहाँ वेद शब्द से क्या अभिप्रेत है तथापि उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है—

(१) यहाँ वेद शब्द उपनिषदों से भिन्न ग्रन्थों को कहता है; क्योंकि कई स्थलों पर उपनिषद् से पृथक वेदों का उल्लेख किया गया है।[३४]

(२) आरण्यकों से भी वेद को भिन्न दिखलाया गया है।[३५]

(३) शास्त्र तथा वेद में भी अन्तर किया गया है।[३६]

(४) आगम में वेद का भी अन्तर्भाव किया गया है।[३७]

महाभारत में स्थान-स्थान पर चार वेदों का निरूपण किया गया है।[३८] चारों वेदों का नामतः उल्लेख भी किया गया है, जैसे—

ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदश्च पाण्डव।
अथर्ववेदश्च तथा पर्वाणि च विशांपते ।। (सभा०, ११.२३)
ऋग्यजुः सामभिर्जुष्टमथर्वाङ्गिरसैस्तथा। (शान्ति०, ३२२.१७)
ऋग्वेदे सयजुर्वेदे तथैवाथर्वसामसु। (शान्ति० ३२८.८)

इसी प्रकार अन्य स्थलों में चारों वेदों के नाम गिनाये गये हैं।[३९] यद्यपि कहीं कहीं तीन वेदों का उल्लेख भी मिलता है,[४०] तथापि अन्य अनेक प्रसङ्गों में

---

३३. आम्नायवचनं सत्यमित्ययं लोकसङ्ग्रहः।
आम्नायेभ्यः पुनर्वेदाः प्रसूताः सर्वतोमुखाः ॥ वही, शान्ति०, २४२.६;२६०.३२।

३४. (क) यो विद्याच्चतुरो वेदान्साङ्गोपनिषदो द्विजः। आदि०, २.२३५।
(ख) साङ्गोपनिषदान्वेदान्। आरण्यक०, ६७.२३।
(ग) वेदोपनिषदे। अनुशासन०, ८३.५; वेदाश्च सोपनिषदः। अनुशासन०, ८५.६।

३५. वेदवादानतिक्रम्य शास्त्राण्यारण्यकानि च। शान्ति०, १६.१७।

३६. आदि०, १.७६; ३.३०; स्त्री०, १.२२;१२.२; शान्ति०, १६. १७;३४१.६।

३७. शान्ति०, २६१.४०।

३८. वेदैश्चतुर्भिः। आदि०, १.१६; यो विद्याच्चतुरो वेदान्। २.२३५। चत्वारः एकतो वेदाः। १.२०८; आरण्यक०, ६.१६, चातुर्वेदे च यत्पुण्यम्। ८३.८०; योऽधीत्य चतुरो वेदान्। द्रोण० ८.२६; चतुर्वेदविदां तथा। शान्ति०, ५३.८, चतुर्वेदसमन्वितम्। ३२६.१००; अधीत्य चतुरो वेदान्। अनुशासन०, ११२.४०; वेदांश्च चतुरः। १५३.३१।

३९. द्र०, अनुशासन०।

४०. द्र०, वही, शान्ति०, २३०.८; २४३.२; ऋग्यजुः सामवित्। ६०.४२; ऋचायजूंषिसामानि। १६८.१८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अथर्ववेद का भी उल्लेख है।[४१] अतः महाभारतकार को चार ही वेद अभिमत हैं, यह पूर्वापर-अनुशीलन से विदित होता है। यहाँ अधिकतर चार वेदों का उल्लेख किया गया है तथा स्पष्टतः यह बतलाया गया है कि ऋक्, साम, यजुः तथा अथर्व से और अङ्गों से भी वेदों में कही गई त्रयी विद्या को देखें।[४२]

यह अवश्य विचारणीय है कि महाभारत में जो कई स्थलों पर कहा गया है कि व्यास ने एक वेद को चार भागों में किया, उसका क्या अभिप्राय है। जैसे—वेदज्ञों में श्रेष्ठ पर और अवर को जानने वाले (परावरज्ञः) सत्यव्रत-धारी, अतीतदर्शी (कवि) पवित्र ब्रह्मर्षि ने एक वेद को चार भागों में बांटा।[४३] इसी प्रकार क्योंकि ब्रह्म तथा ब्राह्मणों के अनुग्रह की इच्छा से वेदों का विभाग किया, इसलिये उसे व्यास कहा गया है।[४४] जिस भगवान् ऋषि ने तप से चारों वेदों का व्यास (विभाग) करके लोक में व्यास नाम को प्राप्त किया और कृष्ण वर्ण होने से कृष्ण नाम को[४५] इत्यादि सन्दर्भों में व्यास को वेदों का विभाग करने वाला कहा गया है, ऐसा टीकाकारों का कथन है। यह अग्रिम अनुसन्धान का विषय है कि वस्तुतः ऐसे सन्दर्भों का क्या अर्थ है।

वेदों की उत्पत्ति तथा नित्यता के विषय में महाभारत से कुछ सूचनाएं प्राप्त होती हैं। एक स्थल पर कहा गया है—यहाँ (पूर्व दिशा में) लोकस्रष्टा भगवान् ब्रह्मा ने पहले वेदों का गान किया था और यहीं सविता देवता ने ब्रह्मवादियों को सावित्री (मन्त्र) का उपदेश किया था। हे द्विजश्रेष्ठ! यहाँ सूर्य ने यजुर्मन्त्र दिये थे और यहाँ वरदान प्राप्त करने वाले देवों के द्वारा यज्ञों में सोमपान किया जाता है।[४६] दूसरे स्थल पर बतलाया गया है—ॐ तत् सत् इस प्रकार

---

४१. द्र०, कर्ण०, ६७.२१; ६.१६,४३ इत्यादि।

४२. त्रयीविद्यामवेक्षेत वेदेषूक्तामथाङ्गतः।
ऋक्सामवर्णाक्षरतो यजुषोऽथर्वणस्तथा॥ शान्ति०, २२७.१।

४३. विव्यासैकं चतुर्धा यो वेदं वेदविदां वरः।
परावरज्ञो ब्रह्मर्षिः कविः सत्यव्रतः शुचिः॥ आदि०, ५४.५।

४४. ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च तथानुग्रहकाम्यया।
विव्यास वेदान्यस्माच्च तस्माद्व्यास इति स्मृतः॥ वही, ५७.७३।

४५. यो व्यस्य वेदांश्चतुरस्तपसा भगवानृषिः।
लोके व्यासत्वमापेदे कार्ष्ण्यात्कृष्णत्वमेव च॥ वही, ६६.१४।

४६. (क) अत्र वेदाञ्जगौ पूर्वं भगवांल्लोकभावनः।
अत्रैवोक्ता सवित्रासीत्सावित्री ब्रह्मवादिषु॥ उद्योग०, १०६.१०।
(ख) अत्र दत्तानि सूर्येण यजूंषि द्विजसत्तम।
अत्र लब्धवरैः सोमः सुरैः क्रतुषु पीयते॥ वही, १०६.११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म का तीन प्रकार से निर्देश किया जाता है। उसी ब्रह्म ने पहले वेदों, यज्ञों और ब्राह्मणों की रचना की।[४७]

वेद का प्रणेता भगवान् को बतलाया गया है। एक स्थल पर कहा गया है—उपनिषद् सहित वेद-विद्याएं तथा गायत्री (सावित्री) और भूत, भविष्यत् तथा वर्तमान को भगवान् शिव धारण करते थे।[४८] इसी प्रकार अन्य स्थल पर कहा गया है—उसी प्रकार वेद शास्त्रों की और शाश्वत लोक धर्मों की, जो प्रलय में प्रकृति को प्राप्त हो गये थे, युग के आदि में वह पुनः सृष्टि करता है।[४९] इस श्लोक में 'शाश्वत' और 'पुनः सृजते' (फिर सृष्टि करता है) शब्दों से शाश्वत वेदों की सर्ग के आदि में पुनः सृष्टि बतलाई गई है, अन्य स्थल पर भी वेदों को अनादि तथा अनन्त कहा गया है—ऋषियों ने तप करके रात दिन वेदों का अध्ययन किया। स्वयम्भू ने अनादि, अनन्त और नित्य वाणी की सृष्टि की (उत्सृष्टा)।[५०] और, वेदों में ऋषियों के जो नाम हैं और जो रचनाएं हैं प्रलय (शर्वरी) के अन्त में रचे गये इन पदार्थों को वे ही नाम स्वयम्भू ने दे दिये।[५१]

महाभारत के कई सन्दर्भों में यह भी बतलाया गया है कि जब वेदश्रुति नष्ट हुई तभी मैंने उसे पुनः उपस्थित किया।[५२] इसी प्रकार अन्य एक स्थल पर भी 'वेदश्रुतिः प्रनष्टा' (१२.३३३.८) ऐसा कहा गया है। एक स्थान पर विस्तृत आख्यान[५३] द्वारा यह दिखलाया गया है कि ब्रह्मा जी जब प्राणियों की सृष्टि में प्रवृत्त हुए तो जिस कमल पर ब्रह्मा जी विराजमान थे उसका पत्ता सूर्य के समान प्रभा वाला था उस पर भगवान् नारायण की प्रेरणा से जल के दो बिन्दु थे जो रजोगुण और तमोगुण के प्रतीक थे। नारायण ने उन्हें देखा उनकी दृष्टि पड़ते ही तमोमय बिन्दु नारायण की आज्ञा से मधु नामक दैत्य हो गया और दूसरा

---

४७. ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा॥ भीष्म०, २९.२३।

४८. वेदाश्च सोपनिषदो विद्या सावित्र्यथापि च।
भूतं भव्यं भविष्यच्च दधार भगवाञ्छिवः॥ अनुशासन०, ८५.६।

४९. द्र०, वही, शान्ति०, २०३.१४।

५०. द्र०, शान्ति०, २२४.५५।

५१. द्र०, वही, शान्ति०, ९२४.५६।

५२. यदा वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता तदा।
सवेदाः सश्रुतीकाश्च कृताः पूर्वं कृते युगे॥ वही, शान्ति०, ३२६.६४।

५३. द्र०, वही, शान्ति०, ३३५.२० तथा आगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठोर राजस बिन्दु कैटभ दैत्य हो गया। जब उन्होंने मनोहर रूप धारण करने वाले चारों वेदों को बनाते हुए ब्रह्मा को देखा तो उन्होंने ब्रह्मा के देखते देखते चारो वेदों का हरण कर लिया और वे सनातन वेदों को लेकर रसातल में चले गये। ब्रह्मा जी नारायण के पास गये और वेद के विना अपनी विवशता प्रकट की। ब्रह्मा का वचन सुनकर नारायण की निद्रा भङ्ग हो गई और वे वेद-कार्य के लिए उद्यत हो गये। तब उन्होंने हयग्रीव का रूप धारण किया और वेदों को लाकर ब्रह्मा जी को अर्पित किया।

इसी प्रकार की वेदों के अपहरण तथा उद्धार की कथा अन्यत्र भी मिलती है। श्रुतिनाश और वेदोद्धार की अनेक कथाएँ पुराणों में भी वर्णित की गई हैं।[५४] इन आख्यानों में वेदोद्धार-कर्त्ता के रूप में मुख्यतः विष्णु का उल्लेख है। इस तरह का सङ्केत वाल्मीकि रामायण में भी मिलता है जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। पुराणों में मधु कैटभ द्वारा किये गये वेद के अपहरण का आख्यान भी है और कुछ अन्य आख्यान भी।[५५]

ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से अधिकांश आख्यान प्रलय काल में होने वाले श्रुतिनाश को लक्ष्य करते हैं। उस समय वेदश्रुति का लोप होने के पश्चात् सर्ग के आदि में वेदों की रचना की जाती है। ऐसा अनेक विद्वानों का विचार है। यदि कभी बीच में भी वेदश्रुति के नाश का प्रसङ्ग आता है तो उसका क्या तात्पर्य मानना होगा, यह अग्रिम अनुसन्धान का ही विषय है। उपर्युक्त विवेचन से इतना अवश्य विदित होता है कि महाभारत में वेदों को नित्य स्वीकारा गया है और प्रत्येक सर्ग के आदि में उनकी पूर्ववत् रचना बतलाई गई है।

यहाँ कहा गया है: सनातन वेद शास्त्र आदि प्रकृति में लीन हो जाते हैं तथा सृष्टि के आदि में भगवान् उनकी पुनः सृष्टि करते हैं।[५६] इसी प्रकार कल्प के अन्त में लुप्त हुए वेदों और इतिहासों को महर्षि लोगों ने ब्रह्मा की अनुमति से तपस्या

---

५४. द्र०, पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन, वेद का अपहरण और नाश, पृ० ३८६ तथा आगे।

५५. द्र०, वही, पृ० ३८६ से ३९४।

५६. द्र०, तथैव वेदशास्त्राणि लोकधर्मांश्च शाश्वतान्।
प्रलये प्रकृतिं प्राप्य युगादौ सृजते प्रभुः॥ शान्ति०, २०३.१४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा प्राप्त किया।[५७] अन्य कुछ सन्दर्भों में यह बतलाया गया है कि वेद अनादि और अनन्त विद्या है, ऋषियों ने तप से दिन रात वेदों का अध्ययन किया, स्वयम्भू ने इस आदि और अन्त से रहित वेदमयी वाणी का उच्चारण किया।[५८] इसी प्रकार यह भी कहा गया है कि वह (ईश्वर) प्रलय के अन्त में उत्पन्न होने वाले इन (प्राणियों) को ऋषियों के नाम और जो वेदों में सृष्टियां हैं वे सब दे देता है।[५९] इन सन्दर्भों से स्पष्ट विदित होता है कि महाभारत में वेद की अनादिता तथा अनन्तता कही गई है और प्रत्येक सृष्टि के आदि में उसकी रचना बतलाई गई है।

महाभारत के वेदविषयक अनुशीलन से यह स्पष्ट है कि यहाँ वेद नाम का निर्देश करते हुए 'वेद चार हैं' यह मत प्रकट किया गया है और उन्हें नित्य बतलाते हुए प्रत्येक सृष्टि के आदि में ब्रह्मा द्वारा उनका आविर्भाव होता है, यह कहा गया है।

४. पुराण और वेद-नित्यता

महाभारत में कहा गया है—'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्[६०]' अर्थात् इतिहास और पुराण द्वारा वेद का उपबृंहण(पुष्टि या समर्थन) करे। यहाँ महाभारत से पूर्ववर्ती किन्हीं पुराणों का उल्लेख युक्तियुक्त प्रतीत होता है; क्योंकि आज जो श्रीमद्भागवत आदि पुराण उपलब्ध हैं उन्हें महाभारत से परवर्ती माना जाता है। फिर भी, इन पुराणों में कुछ ऐसे सन्दर्भ मिलते हैं जिनसे वेदों की व्याख्या में कुछ सहायता मिल सकती है। साथ ही, यहाँ वेद में सङ्केतित किन्हीं अर्थों का आख्यान रूप में विशद विवेचन भी किया गया है। उन आख्यानों से भी वेदार्थ को समझने में सहायता मिलती है। इन पुराणों में वेदों के नाम संख्या, उत्पत्ति एवं नित्यता तथा प्रतिपाद्य विषय आदि के बारे में भी चर्चा की गई है। इस प्रकार पुराणों में वेद-विषयक सामग्री किसी मात्रा में विद्यमान है जो

---

५७. युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयंभुवा॥ वही, ३०.३.१७।

५८. ऋषयस्तपसा वेदानध्यैषन्त दिवानिशम्।
अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयंभुवा॥ वही, २२४.५५।

५९. ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु सृष्टयः।
शर्वर्यन्तेषु जातानां तान्येवैभ्यो ददाति सः॥ वही, २२४.५६।

६०. आदिपर्व, १.२६७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथक्शः अध्ययन का विषय है।[61] यहाँ तो संक्षेप में वेद-सम्बन्धी कुछ विषयों का निरूपण किया जा रहा है।

पुराणों में वेद-विद्या (कूर्म० १.५२.२५, रेवा० १.१७, अग्निपुराण ३८२.२) शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे विदित होता है कि वेद को विद्याओं में गिना गया है। पुराणों में त्रयी विद्या का कई स्थलों में उल्लेख किया गया है।[62] यहाँ वेदों का वेद (ब्रह्माण्ड २.३.३५.१४; ३.४.१.३० इत्यादि) श्रुति (ब्रह्माण्ड २.३.३.१२६; ३.४.६.६४) आदि शब्दों से उल्लेख किया गया है। पुराणकारों की दृष्टि से ब्राह्मण भी वेद हैं (पुराणगत०, पृ० ९५)। किन्तु पुराणों में साथ-साथ वेद और उपनिषद् का ग्रहण किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि वहाँ इन दोनों में भेद किया गया है।[63] यहाँ वेद शब्द का एकवचन तथा बहुवचन दोनों में प्रयोग मिलता है। कहीं ऋक्, यजुः, साम इन तीनों का उल्लेख किया गया है।[64] अन्य स्थल पर अथर्व, ऋक्, साम का उल्लेख किया गया है।[65] किन्हीं स्थलों पर चारों वेदों का साथ-साथ नाम भी लिया गया है।[66] इससे यह स्पष्ट ही है कि पुराणों के अनुसार चार वेद हैं।

वेदोत्पत्ति और नित्यता के विषय में पुराणों में अनेक मत मिलते हैं। वस्तुतः भारतीय दर्शन के विविध सम्प्रदायों में एतद्विषयक जो मत प्रचलित हैं उन सभी की झलक पुराणों में मिलती है। पुराणों में वेद-सृष्टि के प्रसङ्ग में आविर्भूत, सृष्ट आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। यहाँ जो सृष्टि या उत्पत्ति कही गई है उसमें भी आविर्भाव अर्थ ही देखा जा सकता है। कहीं-कहीं 'स्मृताः' (वेदाः स्मृता ब्रह्मणादौ, गरुड० १०७.२) आदि शब्द का स्पष्टतः प्रयोग किया गया है। इससे भी यही विदित होता है कि पूर्व सर्ग में अधीत वेदों का

---

६१. इस विषय पर डा० रामशंकर भट्टाचार्य ने पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६५) नामक एक शोध ग्रन्थ लिखा है।

६२. ब्रह्माण्डपुराण (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७३), १.२.१९.१२२; १.२.३२.४०; १.२.३५.१९५।

६३. वेदोपनिषदः (वायु० २०.२५); वेदान्साङ्गोपनिषदः (भाग० १०.४५.२३) तु०, पुराणगत०, पृ० १०६।

६४. संहिता ऋग्यजुः साम्नां संपठ्यन्ते महर्षिभिः। ब्रह्माण्ड० १.२.३१.१३।

६५. वही, १.२.३१.१७।

६६. (क) ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या वेदाश्चत्वारः। पद्मपुराण, ५.१८.५६।

(ख) ऋग्यजुः सामाथर्वाख्या विद्या। अग्निपुराण, ३८२.२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण ही यहाँ कहा गया है। किन्हीं सन्दर्भों में स्पष्टतः वेद को आदि, अन्त रहित कहा गया है।[६७] कुछ प्रसङ्गों में निर्ममे (बनाया) आदि क्रियाओं का प्रयोग भी मिलता है।[६८] वहाँ सृष्टि के आदि का उल्लेख है, अतः सर्ग के आदि में वेद को बनाया, यह अर्थ निकलता है। और, अन्य सन्दर्भों के समन्वय से यहाँ निर्ममे का अर्थ पहले के समान बनाया या अविर्भूत किया, यह भी माना जा सकता है। अन्य पुराणों में भी इसी प्रकार वेदों के आविर्भाव के प्रसङ्ग दृष्टि-गोचर होते हैं। किन्हीं प्रसङ्गों में वेदों को ब्रह्मा[६९] का या देवी[७०] का निःश्वसित मात्र कहा गया है।

पुराणों में वेदों के आविर्भाव के प्रसङ्ग में वेद के बहुवचन का प्रयोग है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुराणों की दृष्टि में चार ही वेद थे। फिर भी, किन्हीं प्रसङ्गों में एक वेद का उल्लेख भी किया गया है और यह भी दिखलाया गया है कि एक वेद का व्यास जी ने चतुर्धा विभाग किया। ब्रह्माण्डपुराण में कहा गया है—व्यास द्वापर आदि में वेद को चार प्रकार से विभक्त करते हैं।[७१] इसी प्रकार शिवपुराण में कहा गया है—'संक्षिप्य स पुनर्वेदान् चतुर्धा कृतवान्'—उसने संक्षिप्त करके वेदों को चार प्रकार से कर दिया।[७२] भागवत में बतलाया गया है—यज्ञ-सन्तति के लिये एक वेद को चार भागों में किया।[७३] वेदों के इस चतुर्धा विभाग की अनेक प्रकार से व्याख्याएँ की गई हैं।[७४] किन्तु पुराणों के अनु-शीलन से विशेषकर गरुडपुराण के एक सन्दर्भ से यह ज्ञात होता है—वहाँ (जनों को) अल्प बुद्धिवाला देखकर व्यास का रूप धारण करने वाले विष्णु ने उस एक वेदचतुष्टय को फिर चार भागों में विभक्त किया[७५] और उनको सब शिष्यों को

---

६७. ऋषयस्तपसा वेदान्द्वापरादिष्वधीयते।
अनादिनिधना दिव्या पूर्वं सृष्टाः स्वयंभुवा ॥ ब्रह्माण्ड०, १,२.२९.५३।

६८. ऋचो यजूंषि सामानि निर्ममे यज्ञसिद्धये। वही, १.१.५.८८।

६९. द्र०, भाग०, ८.२४.८।

७०. वेदा निःश्वसितं यस्याः। ब्रह्माण्ड०, ३.४.३९.३२।

७१. वही, १.२.३१.२८।

७२. शिव०, ७.१.३७ (तु०, पुराणगत०, पृ० १२३)।

७३. व्यदधात् यज्ञसन्तत्यै वेदमेकं चतुर्विधम्। भाग०, १०४.१९; (तु० पुराणगत०, पृ० १२३)।

७४. द्र०, पुराणगत०, पृ० ११३ तथा आगे।

७५. तत्र दृष्ट्वाल्पबुद्धींश्च विष्णुर्व्यासस्वरूपधृक्।
तदेकं तु चतुर्वेदं चतुर्द्धाव्यभजत् पुनः ॥ गरुड०, १.२१५.११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पढ़ाया, इसे इस प्रकार जानो—पैल (नामक शिष्य) को ऋग्वेद पढ़ाया, जैमिनि को सामवेद, सुमन्तु को अथर्ववेद और महामुनि को यजुर्वेद पढ़ाया।[७६] गरुडपुराण के इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट विदित होता है—

(१) चारों वेद एक रूप में विद्यमान थे।

(२) पढ़ने वालों को अल्पबुद्धि जानकर व्यासरूप धारी विष्णु ने चार भागों में विभक्त किया।

(३) किन्हीं को ऋग्वेद पढ़ाया, अन्यों को सामवेद, किन्हीं को अथर्ववेद और अन्य को यजुर्वेद।

फलतः यहां केवल एक वेद का व्यास द्वारा चतुर्धा विभाग नहीं कहा गया, अपितु समुदितरूप से एक माने गये वेदचतुष्टय का चतुर्धा विभाग कहा गया है और वह भी शिष्यों की अल्पबुद्धि के कारण अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से वेदों को चार भागों में बांटा गया है। इसी प्रकार शिवपुराण के उपरिलिखित वचन से भी 'संक्षिप्य' (संक्षिप्त करके) 'वेदान्' (वेदों को) इन शब्दों से यही झलकता है कि पहले भी वेद 'अनेक' ही थे। उन्हें किसी कारण से संक्षेप में चार प्रकार से कर दिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले चार वेदों के पढ़ने-पढ़ाने का विधान था। फिर सभी वेदों के अध्ययन में शिष्यों को समर्थ न पाया गया और वेदों को चार भागों में विभक्त कर दिया गया। यही व्यास द्वारा वेदों का चतुर्धा विभाग कहा जाता है। मनुस्मृति में भी ब्रह्मचारी के सामर्थ्य के अनुसार कहा गया है—सब वेदों को पढ़कर अथवा क्रमसे दो या एक को पढ़कर अखण्डित ब्रह्मचर्य को धारण करने वाला गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।[७७] कुछ स्थलों में जो इसका अर्थ यह समझा जाता रहा है कि व्यास ने एक वेद को चार भागों में व्यवस्थित किया। सम्भवतः उन कथनों का यही तात्पर्य है कि व्यास ने अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से शिष्यों की बुद्धि के अनुसार चारों वेदों को चतुर्धा विभक्त कर दिया।

---

७६. शिष्यानध्यापयामास समस्तान् तान् निबोध मे।
ऋग्वेदमथ पैलन्तु सामवेदञ्च जैमिनिम्॥
अथर्वाणं सुमन्तुं तु यजुर्वेदं महामुनिम्॥ वही, १.२१५.१२-१३।

७७. वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वाऽपि यथाक्रमम्।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत्॥ मनु०, ३.२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि पुराणों के अनुसार वेद को विविध नामों से कहा गया है। यह त्रयी विद्या है। किन्हीं प्रसङ्गों में ब्राह्मण वचनों को भी वैदिकी श्रुति कह दिया गया है। वहाँ वेद के नाम से कुछ ऐसे विषयों का भी उल्लेख कर दिया गया है जिनका वेद में सङ्केत उपलब्ध नहीं होता। प्रायेण चारों वेदों का उल्लेख किया गया है, वेदों को नित्य स्वीकारते हुए उनका सर्ग के आदि में ब्रह्मा द्वारा प्रादुर्भाव अथवा प्रणयन बतलाया गया है। वेदों की विविध शाखाओं आदि का भी उल्लेख यहाँ मिलता है।[७८]

५. कौटिल्य का अर्थशास्त्र तथा वेद-नित्यता

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में त्रयी तथा वेद इत्यादि शब्दों का अनेकशः प्रयोग किया गया है।[७९] त्रयी को विद्याओं में गिना गया है और उसमें धर्म और अधर्म का प्रतिपादन माना गया है।[८०] त्रयी का विवरण देते हुए बतलाया गया है कि सामवेद, ऋग्वेद तथा यजुर्वेद ये तीनों त्रयी कहलाते हैं।[८१] इसके साथ ही यह भी कहा गया है—और अथर्ववेद तथा इतिहासवेद ये वेद हैं।[८२] इसके अतिरिक्त अन्य स्थलों पर भी अथर्ववेद का नाम लिया गया है।[८३] इन सन्दर्भों में यह स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद चारों का नामतः उल्लेख किया गया है। किन्तु ये चार ही वेद हैं या वेद चार हैं इस प्रकार का उल्लेख नहीं किया गया। उपर्युक्त सन्दर्भ से तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ इतिहास वेद को भी वेदों में गिना जाता है जिस से वेदों की संख्या पाँच हो जाती है।

---

७८. द्र०, पुराणगत०, पृ० ५५ तथा आगे।

७९. (क) संवरणमात्रं हि त्रयी लोकयात्राविद इति। कौटलीय अर्थशास्त्र (मेहरचन्द लछमनदास, दिल्ली-६, १९७०), १.२.५; १.२.१—३, ११; १.३.१,४,१७; १.५.८ इत्यादि।

(ख) वही, १.३.१,२; १.९.१५ इत्यादि।

८०. द्र०, वही, १.२।

८१. सामर्ग्यजुर्वेदास्त्रयस्त्रयी। वही, १.३.१।

८२. अथर्ववेदेतिहासवेदौ च वेदाः। वही, १.३.२।

८३. द्र०, (क) अथर्वभिरुपायैश्च। वही, १.९.२४।

(ख) अथर्ववेदविदो वाभिचरेयुः। वही, ४.३.४८।

(ग) अथर्वभिश्च जुहुयात्। वही, १०.३.४१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहासवेद शब्द से ग्रन्थकार को क्या अभिप्रेत है ? यह विचार का विषय है। ग्रन्थकार ने आगे चल कर राजा के कर्त्तव्यों में बतलाया है कि दिन के पिछले भाग को इतिहास-श्रवण में व्यतीत करे।[८४] इतिहास क्या है ? इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है—पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका, उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र—यह इतिहास है।[८५] इतिहास की इस परिभाषा में भी यह प्रश्न उठ सकता है कि पुराण आदि शब्दों से ग्रन्थकार का क्या अभिप्राय है ? इन शब्दों को ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रयुक्त इस प्रकार के शब्दों के समान समझा जाये अथवा उत्तरवर्ती या आधुनिक काल में प्रसिद्ध शब्दों का पर्याय माना जाये ? यदि ब्राह्मणग्रन्थों में प्रयुक्त पुराण आदि शब्दों के समानार्थक ही ये शब्द हैं तो इनका क्या अर्थ होगा ? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर यदि परवर्ती या आधुनिक काल में प्रचलित शब्दों के समानार्थक ये माने जायें तो भी न्यायसङ्गत न होगा। इस प्रकार अर्थशास्त्र से वेदों की नियत संख्या या इयत्ता का बोध नहीं होता। अर्थशास्त्र में वेदों के छः अङ्ग बतलाये गये हैं।[८६] और उन अङ्गों का स्पष्टतः उल्लेख किया गया है।[८७]

वेदों की उत्पत्ति या नित्यता आदि के विषय में अर्थशास्त्र से कोई विशेष सूचना नहीं मिलती। वस्तुतः इस विषय का विवेचन प्रस्तुत शास्त्र का विषय ही नहीं है।

६. चरक, सुश्रुत में वेद-नित्यता

चरक, सुश्रुत आयुर्वेद के ग्रन्थ हैं, फिर भी यहां किन्हीं प्रसङ्गों में वेदों की संख्या, नाम तथा उत्पत्ति एवं नित्यता आदि के विषय में चर्चा की गई है। चरक में वेद, वेदवित् आदि शब्दों का अनेकशः आयुर्वेद के लिये प्रयोग किया गया है।[८८] किन्तु किन्हीं सन्दर्भों में यहाँ वेद शब्द से ऋग्वेदादि का ही ग्रहण किया गया है; जैसे आप्तोपदेश से पुनर्जन्म की सत्ता को सिद्ध करते हुए कहा गया है—'तत्राप्तागमस्तावद्वेदः' अर्थात् आप्त शास्त्र वेद है।[८९] वेद चार हैं और

---

८४. पश्चिममितिहासश्रवणे। वही, १.५.१३।

८५. पुराणमितिवृत्तमाख्यायिकोदाहरणं धर्मशास्त्रमर्थशास्त्रं चेतीतिहासः। वही, १.५.१४।

८६. षडङ्गे वेदे। वही, १.६.१५।

८७. शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दोविचितिर्ज्योतिषमिति चाङ्गानि। वही, १.३.३।

८८. चरक संहिता (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७५) सूत्रस्थान १.४२,४६,७५ इत्यादि।

८९. द्र०, वही, ११.२७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे हैं – ऋक्, साम, यजुः और अथर्व ।[९०] इसी क्रम से आगे भी वेदों का उल्लेख किया गया है और यह भी बतलाया गया है कि वैद्य को अथर्ववेद में रुचि लेनी चाहिए; क्योंकि अथर्ववेद चिकित्सा को भी बतलाता है ।[९१] आयुर्वेद का विशेषकर अथर्ववेद से सम्बन्ध है; अतः यहाँ अनेक बार अथर्ववेद शब्द का ग्रहण किया गया है ।[९२]

यहाँ आयुर्वेद को नित्य कहा गया है और उसको नित्य सिद्ध करने के लिये हेतु भी दिये गये हैं ।[९३] किन्तु इस प्रसङ्ग में ऋग्वेदादि का उल्लेख नहीं किया गया ।

सुश्रुत संहिता में भी वेदाः[९४], वेदविदः[९५], वेदवादिनः[९६] इत्यादि शब्दों का प्रयोग मिलता है । यहाँ वेदोत्पत्तिविषयक अध्याय भी है जहाँ बतलाया गया है कि आयुर्वेद अथर्ववेद का उपाङ्ग है ।[९७] साथ ही यहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि इस अध्याय के, वेदोत्पत्ति शब्द से आयुर्वेद की उत्पत्ति बतलाने में तात्पर्य हैं ।[९८] यहाँ स्वयम्भू को आयुर्वेद का कर्त्ता कहा गया है,[९९] जिससे प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार की दृष्टि में वेद भी स्वयम्भूनिर्मित हैं ।

सुश्रुत-संहिता में वेद शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया गया है और वेदों के अङ्ग तथा उपाङ्ग का भी निर्देश किया गया है ।[१००] सम्भवतः यहाँ वे सब गिनाये नहीं गये । यहाँ बतलाया गया है कि ऋग्वेद आदि वेद हैं ।[१०१] अन्य स्थल

---

९०. चतुर्णामृक्सामयजुरथर्ववेदानाम् । वही, ३०.१७ ।

९१. द्र०, वही, ३०.१८ ।

९२. (क) ब्राह्मणाः शंसेयुरथर्ववेदविदः । वही, शारीरस्थान, ८.५८ ।
(ख) ब्राह्मणाश्चाथर्ववेदविदः । वही, ८.५६ ।

९३. सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते । वही, ३०.२५ तथा आगे ।

९४. सुश्रुतसंहिता (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७५), उत्तरतन्त्र, ६५.१०. पृ० ८०७ ।

९५. वेदविदः पुराणाः । वही, २५.१७, पृ० ६५७ ।

९६. वही, शारीरस्थान, ५.१८, पृ० ३१९ ।

९७. वही, सूत्रस्थान, १.१, ६ ।

९८. वही, उत्तरतन्त्र, ६५.१० ।

९९. वही, सूत्रस्थान, १.६ ।

१००. साङ्गोपाङ्गांश्च निखिलान् वेदान् विन्दति तत्त्वतः । वही, चिकित्सास्थान, २९.१९ ।

१०१. ऋग्वेदादयस्तु वेदाः । वही, उत्तरतन्त्र, ६५-१० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर ऋक्, यजुः, साम और अथर्व चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है।[१०२] यद्यपि यहाँ वेदों की संख्या का निर्देश नहीं किया गया तथापि चारों वेदों के ग्रहण से यही प्रतीत होता है कि सुश्रुतकार को वेदों की संख्या चार मानना ही अभिमत है।

यह कहा जा सकता है कि वेदों के विषय में विशद विवेचन करना आयुर्वेद के ग्रन्थों का विषय नहीं है फिर भी इनसे वेदों के नाम तथा संख्या आदि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता ही है।

७. नाट्यशास्त्र तथा वेद-नित्यता

नाट्यशास्त्र को पञ्चम वेद कहा गया है।[१०३] यहाँ ऋग्वेद आदि वेदों की संख्या, नाम तथा उत्पत्ति आदि के विषय में कुछ मन्तव्य उपलब्ध होते हैं जिनका संक्षिप्त विवरण देना ही यहाँ वाञ्छनीय है।

नाट्यशास्त्र में कई स्थलों पर वेद चार हैं यह स्पष्टतः कहा गया है।[१०४] चारों वेदों का कई स्थलों पर नामोल्लेखपूर्वक निर्देश भी किया गया है।[१०५]

वेदों की उत्पत्ति तथा नित्यता आदि के विषय में भी नाट्यशास्त्र से कुछ सूचनाएँ उपलब्ध होती है। नाट्यशास्त्र के आरम्भ में इसकी उत्पत्ति का वर्णन करते हुए बतलाया गया है अनेक मुनि भरत मुनि के पास जाकर पूछने लगे। यह नाट्यवेद कैसे उत्पन्न हुआ है ? भगवन् यह बतलाइये। उनके प्रश्न के उत्तर में भरतमुनि कहते हैं—आप लोग ब्रह्मनिर्मित नाट्यवेद की उत्पत्ति सुनें।

---

१०२. वही, सूत्रस्थान, १९.२७।

१०३. नाट्यशास्त्रं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम्।
नाट्यास्त्र (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७१), १.१५।

१०४. द्र०, (क) संस्मार चतुरो वेदान्। १.१३।
(ख) नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदाङ्गसम्भवम्॥ १.१६।
(ग) चतुर्णामपि वेदानामादावोङ्कार उच्यते। (कलकत्ता संस्करण) ३३.२२४।

१०५. (क) जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि। नाट्यशास्त्र, १.१७।
(ख) ऋग्वेदाद् भारती वृत्तिर्यजुर्वेदात्तु सात्त्वती।
कैशिकी सामवेदाच्च शेषा चाथर्वणात्तथा। वही, २२,२४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेन्द्र इत्यादि देवों ने ब्रह्मा जी से कहा कि आप ऐसे पञ्चम वेद की रचना करें जो सभी वर्णों के उपयोग का हो। ब्रह्मा जी ने उनसे कहा 'एवमस्तु' और देवराज को विदा करके समाधि में स्थित होकर चारों वेदों का स्मरण किया तथा कहा कि इनसे अन्य पञ्चम वेद मैं बनाऊँगा। इस प्रकार संकल्प करके सब वेदों का स्मरण करते हुए चारों वेदों के अङ्गों से ब्रह्मा ने नाट्यवेद बनाया।[१०६]

यद्यपि नाट्यशास्त्र की प्रामाणिकता सिद्ध करने वाला ही यह सन्दर्भ है तथापि इससे यह स्पष्ट विदित होता है कि ब्रह्मा चारों वेदों के निर्माता हैं। यही नहीं, नाट्यशास्त्र के एक स्थल पर ईश्वर की स्तुति करते हुए उसे वेदमय भी कहा गया है।[१०७]

यह कहा जा सकता है कि भरत के नाट्यशास्त्र में वेदों की संख्या, पृथक्-पृथक् नाम, तथा उत्पत्ति के विषय में कतिपय स्पष्ट सूचनाएँ मिलती हैं। वेद की नित्यता के विषय में स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, वेद ब्रह्मा द्वारा प्रणीत हैं, इससे ही कुछ परिणाम अवश्य निकाले जा सकते हैं।

●●●

१०६. द्र०, वही, १.४-१६।

१०७. ईशं त्वां वेदमयम्। वही, (मनमोहनघोष संस्करण, कलकत्ता, १९५६), ३१.२६०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिच्छेद ४

भारतीय दर्शन और वेदनित्यता

१. अवैदिक दर्शनों के वेदोत्पत्तिविषयक मन्तव्य

(क) चार्वाक का वेदोत्पत्तिविषयक मत

अवैदिक दर्शनों में चार्वाक प्रमुख है। चार्वाक दर्शन का कोई ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। जो तत्त्वोपप्लवसिंह[1] नाम से एक ग्रन्थ उपलब्ध है, उसमें भी चार्वाक के मतों का निरूपण नहीं उपलब्ध होता; अपितु अन्य मतों का खण्डन ही उपलब्ध होता है। कुछ अन्य ग्रन्थों में चार्वाक के मन्तव्यों का वर्णन अवश्य प्राप्त होता है।[2] प्रबन्धचन्द्रोदय आदि प्रतीक नाटकों में चार्वाक के कुछ मन्तव्य दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य वाङ्मय में भी चार्वाक के कतिपय विचार मिल सकते हैं।[3] परवर्ती सर्वदर्शनसंग्रह[4] में इसका संक्षेप में व्यवस्थित विवेचन किया गया है। इन सभी के आधार पर यहाँ चार्वाक के वेदोत्पत्तिविषयक विचारों का निरूपण किया जा सकता है।

यह प्रसिद्ध ही है कि चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त किसी अन्य प्रमाण को नहीं मानता, परलोक को नहीं स्वीकार करता। उसके लिये कोई भी आप्तवचन या आगम प्रमाण नहीं है। फिर वेद भी प्रमाण कैसे हो सकता है? वेद की प्रामाणिकता में जो आप्तोक्तता अथवा अपौरुषेयता को वेदानुयायियों ने हेतु रूप में प्रस्तुत किया है उसका खण्डन करने के लिये चार्वाक ने कहा है— वेदों के

---

१. जयराशिभट्ट, तत्त्वोपप्लवसिंह (गायकवाड़, ऑरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, १९८०)।

२. द्र०, महाभारत, शान्तिपर्व, अ० २१८, २२३, २२९; न्यायमञ्जरी-१, पृ० २४७; भाग-२ पृ० ३९।

३. द्र०, पद्मपुराण-सृष्टि खण्ड, १३.३१९—३४, ३३९-३८; विष्णुपुराण; शङ्कराचार्यकृत सर्वसिद्धान्त-संग्रह; षड्दर्शनसमुच्चय; शान्तरक्षितकृत तत्त्वसंग्रह, का० १४५६-६७, १८५७-१८७०।

४. सायण-माधव, सर्वदर्शनसङ्ग्रह, चार्वाकदर्शन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों कर्त्ता भाण्ड, धूर्त्त और निशाचर हैं।[५] कैसे ? इसका उत्तर देते हुए चार्वाक ने तीन हेतु दिये हैं—(१) जर्फरी, तूर्फरी आदि अप्रसिद्ध शब्दों का प्रयोग करके उन्होंने लोक को वञ्चित किया है, (२) यहाँ अश्व के शिश्न को यजमान-पत्नी द्वारा ग्राह्य कहा गया है (३) इसी प्रकार मांस का खाना आदि भी निशाचरों की चेष्टाएँ ही हैं।

चार्वाक ने याज्ञिकी हिंसा की कटु आलोचना की है। श्राद्ध आदि को भी बुद्धिसङ्गत नहीं माना।[६] चार्वाक ने वेद के विषय में अपना निर्णय इस प्रकार दिया है—अग्निहोत्र, तीनों वेद, त्रिदण्ड धारण, भस्मावलेपन आदि बुद्धि और पुरुषार्थ से रहित जनों की जीविका है।[७] इसी भाव का नैषधकार ने कुछ भिन्न शब्दों में निरूपण किया है।[८] प्रबन्धचन्द्रोदय नाटक आदि में भी इसी प्रकार की बातें कही गई हैं।[९]

इस प्रकार चार्वाक के मत में वेद-नित्यता का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यहाँ वेदों की उत्पत्ति धूर्त्त लोगों के द्वारा बतलाई गई है। यह उत्पत्ति कब हुई ? इसका कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। एक बात और, चार्वाक ने यहाँ वेदानुयायियों के सभी आचार-व्यवहार को वेद-प्रतिपादित मानकर उसका खण्डन किया है। भारत के इतिहास में एक ऐसा समय रहा है जब वेद-वादियों तथा

---

५. त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्।
अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम्।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम्॥
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्॥
सर्वदर्शनसङ्ग्रह (आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, १९७७), पृ० ५।

६. पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते॥
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्॥ द्र०, वही, पृ० ५।

७. अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता॥ वही, पृ० ५।

८. अग्निहोत्रं त्रयीतंत्रं त्रिदण्डं भस्मपुण्ड्रकम्॥
प्रज्ञापौरुषनिःस्वानां जीवो जल्पति जीविका॥ नैषधीयचरित, १७.३९।

९. द्र०, प्रबोधचन्द्रोदय, २.४१-५६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद-विरोधियों का संघर्ष जोरों पर था तथा वेद-विरोधियों ने वेद-वादियों की वेदव्याख्या को भी वेद मान लिया था। फिर भी न जाने क्यों वेदवादी अपनी व्याख्या का ही समर्थन करते रहे थे।

(ख) बौद्धदर्शन और वेदोत्पत्ति

बुद्ध के उपदेशों के जो प्राचीनतम ग्रन्थ आज उपलब्ध होते हैं वे सब पालि भाषा में हैं। उनमें वेद, वेदगू, मन्तपारगू इत्यादि शब्दों का अनेक बार प्रयोग हुआ है। वेद के अनुयायियों की बहुशः चर्चा की गई है। किन्तु स्पष्टतः वेद की प्रशंसा या निन्दा के विषय में कुछ नहीं कहा गया है। फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं है कि बौद्ध दर्शन अपने आरम्भिक काल से ही वेदों की प्रामाणिकता का विरोध करता रहा है और पालि भाषा में अङ्कित बुद्ध के उपदेशों में भी वेदपरम्परा को प्रामाणिक मानने वालों के प्रति अच्छी दृष्टि नहीं रक्खी गई। उस परम्परा को अन्ध-परम्परा कहा गया है[10] और याज्ञिकी हिंसा जैसे कर्मकलाप को निन्दनीय ही समझा गया है।[11] परवर्ती बौद्ध दर्शन में ये सभी बातें स्पष्टतः सामने आई हैं।

शब्द की प्रामाणिकता पर विचार करते हुए धर्मकीर्ति ने कहा है— नैयायिक आदि (अपरे) पुरुष की विशेषता के आधार पर शब्द को यथार्थ मानते हैं अर्थात् यदि वक्ता यथाभूतार्थदर्शी है तो उसका वचन सत्य हो सकता है। यह मत बौद्ध को भी अभीष्ट हो सकता है यदि पुरुष की उस विशेषता का हमें ज्ञान हो सके।[12] इस कथन से यह प्रतीत होता है कि वेद को तभी प्रमाण माना जा सकता है जब उसके कर्त्ता को सब दोषों से रहित सर्वज्ञ सिद्ध किया जा सके; किन्तु बौद्ध की दृष्टि में यह कठिन ही है।

यदि वेद को अपौरुषेय माना जाये और मीमांसा के समान यह कहा जाये कि वाणी के मिथ्या होने के निमित्त जो दोष हैं वे पुरुषों में होते हैं अतः

---

१०. मज्झिम निकाय, हिन्दी अनुवाद (महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, १९६४), चंकिसुत्त, २.५.५, पृ० ३९९-४००।

११. खुद्दक निकाय-१ (नालन्दा देवनागरी पालि ग्रंथमाला, १९५९), सुत्तनिपात, २.७,८३-८८, पृ० ३१३-३१४।

१२. पुरुषातिशयापेक्षं यथार्थमपरे विदुः।
इष्टोऽयमर्थः प्रत्येतुं शक्यः सोऽतिशयो यदि॥
प्रमाणवार्तिक (बौद्ध भारती, वाराणसी), १९६८, स्वार्थानुमान, का० २१९ तथा मनोरथनन्दिवृत्ति।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपौरुषेय वाक्य ही सत्य अर्थ का बोधक हो सकता है फलतः वेदों को अपौरुषेय मानना चाहिए।[13] इस मत का भी धर्मकीर्त्ति ने निराकरण किया है। उन्होंने दिखलाया है—वाणी की सत्यता के हेतु गुण हैं और वे पुरुष में आश्रित होते हैं। अतः अपौरुषेय जो वाक्य है, वह मिथ्या अर्थ का बोधक क्यों न होगा? यह बौद्ध कहते हैं।[14]

इस प्रकार अपौरुषेयता में भी अप्रामाणिकता देखते हुए धर्मकीर्त्ति ने स्पष्ट शब्दों में वेद की अपौरुषेयता का निराकरण किया है। साथ ही उन्होंने मीमांसा की अभिमत शब्द और अर्थ के सम्बन्ध की नित्यता का भी खण्डन किया है।[15]

तत्त्वसङ्ग्रह में शान्तरक्षित ने विस्तार से श्रुति की परीक्षा की है।[16] यहाँ उन्होंने त्रयीविदाम् आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है और अनेक प्रसङ्गों में वेद शब्द का भी। त्रयीविदाम् शब्द की व्याख्या करते हुए कमलशील ने कहा है—ऋग्, यजुः, साम नामक तीन वेद 'त्रयी' कहलाते हैं। उनको जानने वाले ब्राह्मण त्रयीविद् हैं।[17] उन्होंने वेद की अपौरुषेयता, शब्द की नित्यता, वाक्य की नित्यता तथा वेद के प्रामाण्य के विषय में वैदिक मतानुयायियों के मन्तव्यों का निराकरण किया है।[18] कमलशील ने तत्त्वसङ्ग्रह पञ्जिका में इसकी स्पष्ट व्याख्या की है। वेद की अपौरुषेयता का निराकरण करते हुए शान्तरक्षित ने कहा है कि वेदों का कोई कर्त्ता न मानने पर भी वे सत्य अर्थ के प्रतिपादक नहीं हो सकते।[19] उन्होंने यह भी कहा है कि यह वेद नित्य नहीं हो सकता।[20] गुरु-शिष्य-परम्परा को अनादि मानना तथा वेद को अनादि मानना भी शान्तरक्षित को युक्तिसङ्गत

---

१३. गिरां मिथ्यात्वहेतूनां दोषाणां पुरुषाश्रयात्।
अपौरुषेयं सत्यार्थमिति केचित् प्रचक्षते॥ वही, का० २२५।

१४. गिरां सत्यत्वहेतूनां गुणानां पुरुषाश्रयात्।
अपौरुषेयं मिथ्यार्थं किं नेत्यन्ये प्रचक्षते॥ वही, का० २२६।

१५. द्र०, वही, का० २३२ तथा आगे।

१६. तत्त्वसङ्ग्रह (द्वितीय भाग, बौद्ध भारती, वाराणसी, १९६८), का० २०८४-२८०९।

१७. वही, का० ३२२७ तथा पञ्जिका।

१८. द्र०, वही, का० २३५१-२८०९।

१९. कर्तयंसत्यपि ह्येषा नैव सत्यार्थतां व्रजेत्। वही, का० २३५२ तथा पञ्जिका।

२० न नित्यः स्यादयं वेदः। वही, का० २३६१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत नहीं होता।[२१] इस गुरु-शिष्य की परम्परा को अन्धपरम्परा कहा गया है यदि वेद के अनादि होने में कोई प्रमाण दिखलाया भी जाये तो अनादि होने की कल्पना अन्धपरम्परा ही होगी।[२२] इन सब दोषों का वर्णन करते हुए ग्रन्थकार ने मीमांसक के प्रति कहा है कि यदि वेद को प्रमाण मानने में आप का निश्चित आग्रह ही है तो निर्दोष कर्त्ता के द्वारा ये रचे गये हैं ऐसा मानने के लिए प्रयत्न कीजिए।[२३] किञ्च, अनुमान से भी वेदों का पौरुषेय होना सिद्ध होता है।[२४] अग्रिम कारिका में शान्तरक्षित ने वेदों के पौरुषेयत्व की सिद्धि के लिये कुछ हेतु भी प्रस्तुत किये हैं।[२५]

इसकी व्याख्या करते हुए कमलशील ने बतलाया है--यदि वेद पौरुषेय न हों और उनकी नित्यता और व्यापकता कही जाये तो वहां वर्णों का क्रम न होगा। यहाँ बीज, अङ्कुर, लता आदि के समान कालकृत क्रम नहीं बन सकेगा; क्योंकि नित्य होने से सब समानकालीन होंगे। वहाँ पिपीलिकाओं की पङ्क्ति के समान देशकृत क्रम भी नहीं हो सकेगा; क्योंकि व्यापक होने से सभी वर्ण एक ही आकाश–देश में स्थित होंगे। (वर्णों की) अभिव्यक्ति के द्वारा भी क्रम न हो सकेगा; क्योंकि नित्य वस्तु में कोई अतिशय उत्पन्न नहीं किया जा सकता अतः उसकी अभिव्यक्ति नहीं बन सकती।[२६] इसी सन्दर्भ में शब्दों की नित्यता का भी निराकरण किया गया है।[२७] यहाँ मीमांसक के साथ-साथ भर्तृहरि आदि वैयाकरणों के शब्दनित्यतावाद (अथवा स्फोटवाद) का निराकरण करते हुए शब्द और वाक्य के अनित्यत्व की भी सिद्धि की गई है।[२८]

शान्तरक्षित तथा कमलशील ने वेदों की अपौरुषेयता के लिये प्रस्तुत किये गये हेतु में दोष दिखलाकर वेद की पौरुषेयता का प्रतिपादन किया है। यहाँ वेद

---

२१. इत्थं माने स्थिते वेदे शिष्याचार्यपरम्परा।
अनादिः कल्प्यमानाऽपि नादोषत्वाय युज्यते। वही, का० २३७७।

२२. माने स्थितेऽपि वेदेऽतः शिष्याचार्यपरम्परा।
अनादिः कल्पिताऽप्येषा सञ्जाताऽन्धपरम्परा॥ वही, का० २३८५।

२३. किञ्च वेदप्रमाणत्वे निर्बन्धो यदि वो ध्रुवम्।
निर्दोषकर्तृकत्वादौ तथा यत्नो विधीयताम्। वही, का० २३९९।

२४. वेदानां पौरुषेयत्वमनुमाऽप्यवगच्छति। वही, का० २४२०।

२५. द्र०, वही, का० २४२१।

२६. द्र०, कमलशील, पञ्जिका, वही, का० २४२१।

२७. द्र०, तत्त्वसङ्ग्रह, का० २२४७ तथा आगे।

२८. द्र०, वही, का० २७३३—८५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में काम, मिथ्याचार, प्राणी-हिंसा और असत्य आदि दोष भी दिखलाये गये हैं।[२९]

वेद की पौरुषेयता सिद्ध करके शान्तरिक्षत कहते हैं— क्योंकि वेद की प्रामाणिकता पुरुष की अपेक्षा से ही सिद्ध होती है; यदि वेद का कर्त्ता (पुरुष) अतीन्द्रिय अर्थ का ज्ञाता है तो वेद प्रमाण माने जा सकते हैं।[३०] इसकी व्याख्या करते हुए कमलशील कहते हैं—यदि आप अवश्य ही वेद की प्रामाणिकता मानते हैं तब इसके कर्त्ता पुरुष की अपेक्षा से ही इसका प्रामाण्य मानना युक्तियुक्त है, स्वतः नहीं, यह पहले प्रतिपादित किया जा चुका है और वह वेद का कर्त्ता यदि अतीन्द्रिय अर्थ का द्रष्टा है तब उसके कर्त्ता को प्रमाण मानना युक्तियुक्त है, अन्यथा नहीं। जिसे ज्ञान नहीं है या सन्देह है या विपरीत ज्ञान है ऐसे कर्त्ता का प्रामाण्य न हो सकेगा।[३१] ईश्वर की परीक्षा के प्रसङ्ग में नैयायिक द्वारा अभिमत ईश्वर की सर्वज्ञता का निराकरण करते हुए कहा गया है—सब का कर्त्ता होने के कारण जो आपने उसे सर्वज्ञ माना है उस सर्वज्ञता का भी निराकरण हो जाता है; क्योंकि वह सब का कर्त्ता है, इसका निषेध किया जा चुका है।[३२] इसी प्रकार उस सर्वज्ञ की एकता का भी यहाँ निराकरण किया गया है।[३३] जिससे यह स्पष्ट विदित होता है कि वेदों का कोई एक सर्वज्ञ कर्त्ता नहीं हो सकता। फलतः बौद्ध के मत में वेद ईश्वर-प्रणीत हैं, यह भी नहीं बन सकता।

इस प्रकार बौद्ध दर्शन में वेद की प्रामाणिकता का निराकरण करते हुए वेद की अपौरुषेयता तथा सर्वज्ञकर्तृकता का निराकरण किया गया है। वेदानुयायियों के समान ही यहाँ त्रयीविद्या या वेद आदि शब्दों का उल्लेख अवश्य किया गया है; किन्तु वेदों की संख्या आदि पर कोई विशेष प्रकाश इन ग्रन्थों से नहीं पड़ता।

---

२९. द्र०, वही, का० २७८६-८७।

३०. वेदस्यापि प्रमाणत्वं यस्मात् पुरुषतः स्थितम्।
तस्य चातीन्द्रियज्ञत्वे ततस्तस्मिन् प्रमाणता। वही०, का० ३१२४।

३१. द्र०, पञ्जिका, वही, का० ३१२५।

३२. द्र०, कर्तृत्वप्रतिषेधाच्च सर्वज्ञत्वं निराकृतम्।
बोद्धव्यं तद्बलेनैव सर्वज्ञत्वोपपादनात्॥ वही, तत्त्वसङ्ग्रह, का० ९१।

३३. द्र०, वही, का० ९२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ग) जैन दर्शन का वेदोत्पत्तिविषयक विचार :

जैन दर्शन में वेदोत्पत्ति के विषय में पर्याप्त विचार किया गया है। अकलङ्क ने न्यायविनिश्चय में स्पष्टतः यह बतलाया है कि कोई भी वाणी अपौरुषेय नहीं हो सकती 'वाचामपोरुषेयीणामाविर्भावो न युज्यते'।[३४] इसको स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि सम्यक् ज्ञान से नियन्त्रित सत्य शब्द ही पुरुषार्थ का बोध कराता है अतः शब्द का अपौरुषेय मानना अनर्थक ही है।[३५] इसी प्रकार उन्होंने वेद की नित्यता और अनादिता का भी निराकरण किया है।[३६] वहाँ यह भी कहा गया है कि सर्वज्ञ के वचनों से ही प्रामाणिक ज्ञान हो सकता है।[३७] उन्होंने प्रमाणसङ्ग्रह में भी किसी शास्त्र के अपौरुषेय तथा नित्य और अनादि होने का खण्डन किया है।[३८]

प्रभाचन्द्र के प्रमेयकमलमार्तण्ड तथा न्यायकुमुदचन्द्र ग्रन्थ विशेष प्रसिद्ध हैं। प्रमेयकमलमार्तण्ड में आगम के प्रामाण्य पर विचार करते हुए यह कहा गया है कि किसी शास्त्र का अपौरुषेय होना असिद्ध है।[३९] फिर वेद के अपौरुषेयत्व पर विचार करते हुए कहा गया है कि प्रमाण न होने से वेद को अपौरुषेय सिद्ध नहीं किया जा सकता।[४०] यहाँ मीमांसा के इस हेतु का भी खण्डन किया गया है कि वेदों के कर्त्ता का स्मरण नहीं किया जाता अतः वेद अपौरुषेय तथा नित्य हैं।[४१] इस प्रसङ्ग में यह भी कहा गया है कि स्वयं वेद में और स्मृति पुराण आदि में भी वेद के कर्त्ता का स्मरण किया गया है अतः वेद की अपौरुषेयता को सिद्ध करने के लिये जो हेतु दिया गया है वह सद्हेतु नहीं है।[४२] श्लोकवार्त्तिक के श्लोकों को उद्धृत करते हुए वेद-नित्यता का निराकरण किया गया है।[४३] यह भी बलपूर्वक

---

३४. न्यायविनिश्चय, कारिका ४३६; अकलङ्कग्रन्थत्रय (सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३९), पृ० ८८।

३५. द्र०, न्यायविनिश्चय, का० ४३६-३७, वही, पृ० ८८।

३६. द्र०, न्यायविनिश्चय, का० ४१७—१८; वही, पृ० ८५—८६।

३७. द्र०, न्यायविनिश्चय, का० ४६३, वही, पृ० ९१-९२।

३८. द्र०, प्रमाणसंग्रहवृत्ति, का० ६४, वही, पृ० ११७।

३९. अपौरुषेयत्वस्यासिद्धेः। प्रमेयकमलमार्तण्ड (निर्णय सागर, १९४१), पृ० १६५

४०. वही, पृ० ३९१।

४१. वही, पृ० ३९२।

४२. वही, पृ० ३९३-९४।

४३. वही, पृ० ३९६-९७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा गया है कि आगम और अर्थापत्ति आदि प्रमाणों के द्वारा भी वेद का अपौरुषेयत्व सिद्ध नहीं होता।[44] साथ ही वेद के पद, वाक्य इत्यादि की नित्यता का निराकरण किया गया है।[45] इस प्रसङ्ग में शब्दार्थ-सम्बन्ध की नित्यता का भी विस्तार से निराकरण करते हुए शब्द की नित्यता का भी खण्डन किया गया है।[46]

वादिराजसूरि ने न्यायविनिश्चयविवरण में वेद की अपौरुषेयता तथा नित्यता का विस्तार से खण्डन किया है।[47] यहाँ सर्वज्ञ के द्वारा रचित शास्त्र को प्रमाण मानते हुए भी, नित्य सर्वज्ञ ईश्वर के द्वारा वेदों की रचना की गई' इस मत का निराकरण किया गया है तथा वेदों की पौरुषेयता दिखलाई गई है और परम्परा से वेद अनादि हैं इस मत का भी खण्डन किया गया है। आगे दिखलाया जायेगा कि नव्य वेदान्त तथा न्याय आदि दार्शनिक सम्प्रदायों का यही मन्तव्य है। इसी प्रकार यहाँ शब्द की नित्यता का भी अत्यन्त विस्तार से खण्डन किया गया है तथा शब्द और अर्थ के नित्य सम्वन्ध का भी।[48] अन्त में इस विषय का उपसंहार करते हुए कहा गया है कि अपौरुषेय वाणी का आविर्भाव ही नहीं हो सकता।[49] वस्तुतः पुरुष-प्रणीत शब्द जो पुरुषार्थ का कथन करता है तथा सम्यक् ज्ञान के द्वारा नियन्त्रित हुआ है वह सत्य होता है (प्रमाण होता है) अतः वेद की प्रामाणिकता के लिये उसे अपौरुषेय मानना आवश्यक नहीं है।[50] एक सर्वज्ञ, नित्य ईश्वर को मानने का जैन दर्शन में बहुशः निराकरण किया गया है।[51] अतः वेद ईश्वर-प्रणीत भी नहीं हो सकते।

मल्लिषेण की स्याद्वादमञ्जरी में जिस प्रकार वैदिक दर्शन के अन्य अनेक मन्तव्यों का स्पष्टतः खण्डन किया गया है उसी प्रकार वेदोत्पत्ति तथा वेद-

---

४४. वही, पृ० ३९९।

४५. तन्न वेदपदवाक्ययोर्नित्यत्वं घटते। वही, पृ० ४०३।

४६. द्र०, वही, पृ० ४०४ तथा आगे।

४७. न्यायविनिश्चयविवरण-२ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४), पृ० २९९—३०१।

४८. वही, पृ० २९५-२९९।

४९. वही, पृ० ३०५ तथा आगे।

५०. वाचामपौरुषेयीणामाविर्भावो न युज्यते। न्यायविनिश्चय, ३.५७ तथा न्यायविनिश्चयविवरण, पृ० ३३३।

५१. वही, पृ० ३३३-३३४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यता-विषयक मतों का भी। वेद ईश्वर-प्रणीत नहीं हो सकते, यह बतलाते हुए कहा गया है—वह ईश्वर शास्त्र का कर्त्ता नहीं हो सकता; क्योंकि शास्त्र वर्णात्मक हैं। वे वर्ण तालु आदि के व्यापार से उत्पन्न होते हैं। यह कार्य शरीर में ही हो सकता है।[५२] इसके अतिरिक्त आपका अभीष्ट आगम उसके प्रणेता की असर्वज्ञता को सिद्ध करता है; क्योंकि यहाँ अनेक स्थलों पर परस्पर विरोध दृष्टिगोचर होता है; जैसे—एक स्थल पर कहा गया है 'न हिंस्यात्सर्वभूतानि' और दूसरे स्थल पर यज्ञों में पशुवलि का विधान किया गया है। इसी प्रकार के अन्य भी अनेक विरोध हैं।[५३]

यहाँ ईश्वर की नित्यता सर्वज्ञता आदि का विस्तार से खण्डन किया गया है और उससे ईश्वरकृत आगम की भी अप्रामाणिकता सिद्ध की गई है। स्याद्वादमञ्जरी में वैदिक कर्म-कलाप के दोष दिखलाते हुए उन सभी कर्मों के दोष दिखलाये गये हैं जिनका उस समय के तथाकथित वेदानुयायी अनुष्ठान करते थे। इस प्रसङ्ग में यज्ञ की हिंसा और श्राद्ध इत्यादि का उल्लेख किया गया है तथा वेद की प्रामाणिकता पर विचार करते हुए वेद की पौरुषेयता अथवा अपौरुषेयता दोनों पक्षों में ही दोष दिखलाया गया है; जैसे कि यदि आगम पौरुषेय है—पुरुषकृत है तो वह सर्वज्ञ-कृत है या नहीं। प्रथम पक्ष में मीमांसक के मत का ही व्याघात होगा; क्योंकि वे मानते हैं कि अतीन्द्रिय पदार्थ का कोई साक्षात् द्रष्टा नहीं है; अतः नित्य वेद वाक्यों से उसका ज्ञान होता है। यदि आगम को असर्वज्ञकर्तृक माना जाये तब तो उसका विश्वास ही नहीं हो सकेगा। किञ्च, वह आगम अपौरुषेय भी नहीं हो सकता क्योंकि अपौरुषेय आगम का कोई स्वरूप नहीं बन सकता, वह तो अश्व के सींग के समान तुच्छ होगा।[५४] वर्णों का समूह ताल्वादि से उत्पन्न होता है और यह स्पष्ट ही है कि वेद वर्णात्मक हैं। तालु, आदि पुरुष के ही होते हैं। अतः वर्णात्मक वेद में 'यह अपौरुषेय है' इस प्रकार की प्रतीति कैसे हो सकती है?[५५]

इस प्रकार जैन दर्शन के ग्रन्थों में वेदों की अपौरुषेयता का निराकरण करके उन्हें आप्त-प्रणीत भी नहीं माना गया। फिर उनके मत में वेदों की नित्यता किसी प्रकार भी सम्भव नहीं है।

---

५२. मल्लिषेण, स्याद्वादमञ्जरी (चौखम्वा संस्कृत बुक डिपो, बनारस, १६००), का० ६, पृ० ३१।
५३. द्र०, वही, पृ० ३१-३४।
५४. द्र०, वही, का० ११, पृ० ८२-८३।
५५. ताल्वादिजन्मा ननु वर्णवर्गो वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च
पुंसश्च ताल्वादि ततः कथं स्यादपौरुषेयोऽयमिति प्रतीतिः ॥ वही, पृ० ८४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. न्याय-वैशेषिक की दृष्टि में वेदोत्पत्ति

यहाँ न्याय-वैशेषिक के प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर ही यह विवेचन करना अभीष्ट है कि वहाँ वेद-संज्ञा, संख्या, वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता आदि के विषय में क्या मन्तव्य निर्धारित किये गये हैं। प्रथमतः प्राचीन मतों का विश्लेषण करके तदनन्तर क्रमशः विकसित होते हुए मन्तव्यों पर विचार किया जा रहा है।

(क) न्यायसूत्र तथा वात्स्यायन भाष्य

न्याय-परम्परा में गौतम (या गोतम) के न्यायसूत्र सबसे प्राचीन माने जाते हैं। इन सूत्रों में वेद शब्द का प्रयोग नहीं मिलता, हाँ 'श्रुति' शब्द का प्रयोग अवश्य उपलब्ध होता है।[५६] वहाँ श्रुति शब्द वेद के लिए प्रयुक्त हुआ है, यह पूर्वापर प्रसङ्ग से तथा व्याख्याओं से प्रतीत होता है। यद्यपि एक स्थल पर मन्त्र शब्द का प्रयोग भी किया गया है[५७], तथापि वहाँ मन्त्र शब्द वेदमन्त्र के अर्थ में नहीं प्रतीत होता, न्यायभाष्य आदि में उसकी ऐसी ही व्याख्या उपलब्ध होती है। वहीं आयुर्वेद शब्द का प्रयोग भी किया गया है। इसके अतिरिक्त विधि, अर्थवाद तथा अनुवाद आदि शब्दों का प्रयोग भी है।[५८] भाष्य से यह भी विदित होता है कि ये ब्राह्मण-वाक्यों के प्रकार हैं; किन्तु सूत्रों में ग्रन्थविशेष के लिए ब्राह्मण शब्द का प्रयोग भी उपलब्ध नहीं होता। वेदों की संख्या के विषय में भी सूत्र मौन ही हैं।

जहाँ तक वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता आदि का सम्बन्ध है, न्यायसूत्र में इसका सङ्केतमात्र ही देखा जा सकता है। वेद-प्रामाण्य के प्रसङ्ग में जो 'तत्प्रामाण्यम् आप्तप्रामाण्यात्' कहा गया है,[५९] उससे इतना ही जाना जा सकता है कि आप्तों का प्रामाण्य होने से उस (शब्दविशेष या वेद) की प्रामाणिकता है। इससे यह भाव लिया जा सकता है कि वेद आप्तोक्त है; किन्तु किस प्रकार? यह सब भी यहाँ स्पष्ट नहीं है। शब्दरूप में या ज्ञानरूप में वेद-नित्यता की धारणा न्याय के क्षेत्र में सङ्गत ही नहीं होती; क्योंकि उपलब्ध

---

५६. श्रुतिप्रामाण्याच्च। न्यायदर्शन (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७०), ३.१.३१।

५७. द्र०, मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्। वही, २.१.६९।

५८. विध्यर्थवादानुवादवचनविनियोगात्। वही, २.१.६३।

५९. द्र०, वही, २.१.६९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याख्याओं से यह प्रतीत होता है कि न्यायसूत्रों में विस्तारपूर्वक शब्द-नित्यता का निराकरण किया गया है।[६०] और, इसी प्रकार ज्ञान (बुद्धि) की नित्यता का भी।[६१]

वात्स्यायन के न्यायभाष्य में इस विषय की कुछ अधिक चर्चा उपलब्ध होती है। यहां अनेक स्थलों पर वेद शब्द का प्रयोग किया गया है, जैसे—वेदभागः, वेदार्थानाम्, वेदवाक्यानाम् इत्यादि।[६२] सूत्रोक्त 'श्रुति' शब्द की व्याख्या में वेद-मन्त्रों को प्रमाण रूप में उद्धृत किया गया है और उनके लिये मन्त्र शब्द का प्रयोग भी किया गया है।[६३] वात्स्यायन ने 'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च' इत्यादि (२.१ ६९) सूत्र के भाष्य में मन्त्र शब्द का अभिप्राय विष, भूत और वज्रपात (अशनि) आदि का निवारण करने वाले मन्त्र दिखलाया है। वात्स्यायन भाष्य के अनुसार तदप्रामाण्यम्[६४] में 'तद्' शब्द का अर्थ शब्दविशेष है। यह शब्दविशेष मन्त्र है या ब्राह्मण यह नहीं बतलाया गया है। पूर्वपक्षी की शङ्का का समाधान करते हुए जो कहा गया है—वाक्यविभागस्य चार्थग्रहणात् (२.१.६२) उस के प्रसङ्ग में यह अवश्य कहा गया है—ब्राह्मणवाक्यों का विभाग तीन प्रकार का है।[६५] इससे यह सम्भावना की जा सकती है कि पूर्वपक्षी ने अदृष्टार्थक ब्राह्मणवाक्यों के प्रामाण्य के विषय में शङ्का की थी, उसी का यहाँ समाधान किया जा रहा है। फिर भी ग्रन्थ के अनुशीलन से यही प्रतीत होता है कि यहाँ शब्दविशेष से अदृष्टार्थक सभी शब्द (आगम) का ग्रहण होता है, आगे भाष्यकार ने यही कहा भी है- दृष्टार्थेनाप्तोपदेशेनायुर्वेदेनादृष्टार्थो वेदभागोऽनुमातव्यः प्रमाणमिति[६६]— अर्थात् दृष्टार्थक आयुर्वेद नामक आप्तोपदेश के द्वारा अदृष्टार्थक वेदभाग भी प्रमाण है, यह अनुमान कर लेना चाहिए।

वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता के विषय में भी न्यायभाष्य से कुछ प्रकाश पड़ता है। यहाँ 'आप्तप्रामाण्य' से वेद की प्रामाणिकता का विवेचन करते हुए कहा गया है—जो आप्त वेदार्थों के द्रष्टा तथा प्रवक्ता हैं वे ही आयुर्वेद आदि

---

६०. द्र०, न्यायदर्शन, २.२.१३-३९।

६१. द्र०, वही, ३.२.१-९।

६२. द्र०, वात्स्यायन भाष्य (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७०), २.१.६९।

६३. सूर्यं ते चक्षुर्गच्छताद् इत्यत्र मन्त्रे पृथिवीं ते शरीरम् इति श्रूयते। वही, ३.१.३१।

६४. तदप्रामाण्यमनृतव्याघातपुनरुक्तदोषेभ्यः। न्यायदर्शन, २.१.५८।

६५. विभागश्च ब्राह्मणवाक्यानां त्रिविधः। द्र०, वात्स्यायनभाष्य, अवतरणिका न्यायसूत्र, २.१.६३।

६६. वात्स्यायन भाष्य, २.१.६९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के भी। इसलिये आयुर्वेद की प्रामाणिकता के समान वेद की प्रामाणिकता का भी अनुमान करना चाहिए।[६७] यहाँ आप्तों को वेदार्थ का द्रष्टा तथा प्रवक्ता कहा गया है। इस वचन से यह तो स्पष्ट नहीं होता कि कौन आप्त वेदार्थ का द्रष्टा और प्रवक्ता है और किस प्रकार; किन्तु इतना स्पष्ट है कि वेदार्थ के द्रष्टा तथा प्रवक्ता आप्त हैं। ये आप्त कौन हैं ? यह परवर्ती व्याख्याकारों ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है, जिसका आगे निरूपण किया जायेगा।

एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है—सूत्रकार ने 'आप्तोपदेशः शब्दः'[६८] यह बतलाकर आगे कहा था वह दो प्रकार का है दृष्टार्थक और अदृष्टार्थक।[६९] इसकी व्याख्या करते हुए वात्स्यायन कहते हैं–जिसका यहाँ(इस लोक में)अर्थ देखा जाता है वह दृष्टार्थक है और जिसका परलोक में (अमुत्र) प्रतीत होता है वह अदृष्टार्थक है। इस प्रकार लौकिक वाक्यों और ऋषिवाक्यों का विभाग है।[७०] यदि इस वचन के अनुसार अदृष्टार्थक वाक्य ऋषि-वाक्य हैं तो यहाँ ऋषि शब्द का क्या अभिप्राय है? इस विषय का भी व्याख्याकारों की दृष्टि से विचार करना उचित होगा। यह तो रही वेदों की आप्तोक्तता की बात।

वेद नित्य हैं, इस विषय में भी वात्स्यायन के वचनों के आधार पर ही उनके मन्तव्य का निश्चय किया जा सकेगा। वे पूर्वपक्ष की ओर से शङ्का करते हैं—नित्य होने से वेदवाक्यों की प्रामाणिकता होती है अतः आप्तोक्त होने से वेद प्रमाण है यह कहना युक्तियुक्त नहीं।[७१] भारतीय दर्शन के वाङ्मय के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि यहाँ पूर्वपक्षी मीमांसक है; किन्तु भाष्य आदि में यह नहीं बतलाया गया। पूर्वपक्षी की शङ्का का समाधान करते हुए वात्स्यायन कहते हैं—शब्द के वाचक होने से उससे अर्थ का बोध होने पर वह प्रमाण होता है, नित्य होने से नहीं। शब्द को नित्य मानने पर तो सब शब्द सभी अर्थों के वाचक हो जायेंगे जिससे (कौन शब्द किस अर्थ का बोधक है इस

---

६७. य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च त एवायुर्वेदप्रभृतीनामित्यायुर्वेदप्रामाण्यवद् वेदप्रामाण्यम् अनुमातव्यमिति। वही, २.१.६९।

६८. न्यायदर्शन, १.१.७।

६९. स द्विविधो दृष्टादृष्टार्थत्वात्। वही, १.१.८।

७०. यस्येह दृश्यतेऽर्थः स दृष्टार्थः। यस्याऽमुत्र प्रतीयते सोऽदृष्टार्थः। एवमृषिलौकिकवाक्यानां विभाग इति। वात्स्यायन भाष्य, १.१.८।

७१. नित्यत्वाद् वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्याद् इत्ययुक्तम्। वही, २.१.६९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार की) अर्थ की व्यवस्था न बन सकेगी। यदि पूर्वपक्षी कहे कि अनित्य होने पर तो शब्द (किसी अर्थ के) वाचक ही न होंगे; यह भी ठीक नहीं, कारण, लौकिक शब्दों में ऐसा नहीं देखा जाता। वे अनित्य हैं फिर भी अर्थ के वाचक हैं। यदि कहो कि लौकिक शब्द भी नित्य हैं तो भी ठीक नहीं; क्योंकि फिर तो अनाप्त के वचन में जो अयथार्थता (अर्थविसंवाद) दिखलाई देती है वह न हुआ करेगी; क्योंकि नित्य होने से शब्द प्रमाण है (और अनाप्तों का शब्द भी नित्य है)।[७२] यदि कहो वह (अनाप्तों का वचन) अनित्य है तो इस भेद (विशेष) का कारण कहना होगा। भाव यह है कि लौकिक अनाप्तवचन नित्य नहीं होता, इसका कारण बतलाना होगा। वस्तुतः सङ्केत के अनुसार (यथानियोगम्) शब्द (नामधेय) अर्थ के बोधक होते हैं और इसी से वे लोक में प्रमाण होते हैं, नित्य होने से उनकी प्रामाणिकता नहीं होती। यह कहा जा सकता है—जिस अर्थ में किसी शब्द का सङ्केत किया जाता है, लोक में सङ्केत के सामर्थ्य से वह उस अर्थ का बोधक होता है, नित्य होने से नहीं।[७३] इस प्रकार वात्स्यायन ने 'नित्य होने से वेद प्रमाण हैं' इस मत का निराकरण किया है। ऊपर बतलाया जा चुका है कि न्याय के मतानुसार शब्द नित्य नहीं है।

अब प्रश्न यह है कि क्या वात्स्यायन के मत में वेद अनित्य हैं। इसका उत्तर स्वीकारात्मक ही है। किन्तु न्यायसम्प्रदाय के मत में वेदों की नित्यता का वही अभिप्राय नहीं है जो मीमांसा सम्प्रदाय की दृष्टि से है। वात्स्यायन कहते हैं अतीत और अनागत के भिन्न-भिन्न मन्वन्तरों तथा युगों में वेदाध्ययन की परम्परा, अभ्यास तथा वैदिक प्रयोगों का विच्छेद नहीं होता, यही वेदों की नित्यता है।[७४] इस कथन का अर्थ विशेष व्याख्या की अपेक्षा रखता है। उद्योतकर आदि द्वारा की गई व्याख्या का आगे निरूपण किया जा रहा है। इतना अवश्य है, वात्स्यायन के इस वचन से यह विदित हो जाता है कि न्याय-सम्प्रदाय में वेदों की नित्यता का क्या अभिप्राय है। संक्षेप में—बीते हुए तथा आगे आने वाले सभी मन्वन्तरों और युगों में गुरु-शिष्य परम्परा से वेदाध्ययन चलता रहता

---

७२. शब्दस्य वाचकत्वादर्थप्रतिपत्तौ प्रमाणत्वं न नित्यत्वात्। नित्यत्वे हि सर्वस्य सर्वेण वचनाच्छब्दार्थव्यवस्थानुपपत्तिः। नानित्यत्वे वाचकत्वमिति चेद् न, लौकिकेष्वदर्शनात्। तेऽपि नित्या इति चेद् न, अनाप्तोपदेशादर्थविसंवादोऽनुपपन्नः। नित्यत्वाद्धि शब्दः प्रमाणमिति। वही, २.१.६६।

७३. द्र०, वही, २.१.६६।

७४. मन्वन्तरयुगान्तरेषु चातीतानागतेषु सम्प्रदायाभ्यासप्रयोगाविच्छेदो वेदानां नित्यत्वम्। वही, २.१.६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, वेद का अभ्यास किया जाता है और न्यूनाधिक रूप में वैदिक कर्म-कलाप का प्रयोग किया जाता रहता है। यह कभी भी समाप्त नहीं होता, यही वेदों की नित्यता है।

(ख) न्यायवार्त्तिक तथा तात्पर्यटीका

उद्योतकर ने भी अनेकशः वेद तथा श्रुति आदि शब्दों का प्रयोग किया है। 'तदप्रामाण्यम्०' में तद् शब्द का अभिप्राय 'शब्दविशेष' ही लिया है।[७५] उनके ग्रन्थ के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि वह शब्दविशेष वेद ही है।[७६] इन वेद-वाक्यों को विशेष वक्ता (वक्तृ-विशेष) द्वारा अभिहित होने के कारण ही प्रमाण बतलाया गया है।[७७] यहाँ यह स्पष्ट नहीं कहा गया कि वह वक्तृविशेष कौन है? इतना अवश्य प्रकट होता है कि वह आप्त है, वेद-वाक्य आप्तोक्त हैं। पूर्वपक्षी की ओर से शङ्का करते हुए आगे बतलाया गया है—वेदों का पौरुषेय (पुरुषकृत) होना असिद्ध है; क्योंकि वेद नित्य हैं। भाव यह है कि वेदवाक्य नित्य हैं नित्य होने से ही ये प्रमाण हैं अतः इनकी पौरुषेयता सिद्ध नहीं होती। इस पर उद्योतकर कहते हैं— यह ठीक नहीं; क्योंकि वेदों की नित्यता ही असिद्ध है। वेदों की नित्यता सिद्ध हो जाने पर ही यह कथन युक्तियुक्त हो सकता है; किन्तु वह (नित्यता) तो सिद्ध नहीं होती अतः पूर्वपक्षी का कथन युक्तियुक्त नहीं। अब प्रश्न हो सकता है— यदि नित्य नहीं तो प्रमाण कैसे हैं? उत्तर है— प्रमेय का बोध कराने के कारण ये प्रमाण हैं नित्य होने से नहीं।[७८]

उद्योतकर ने वेदों को अनित्य सिद्ध करने के लिये यह युक्ति दी है—वेद वाक्य-अनित्य हैं, अर्थ-विभाग वाले होने से, लौकिक वाक्यों के समान।[७९] यदि पूर्वपक्षी कहे कि लौकिक वाक्य भी नित्य हैं तो उद्योतकर कहते हैं— तब तो लौकिक वाक्यों में जो अर्थ-विभाग (विधि, अर्थवाद, अनुवाद का भेद) देखा जाता है, वह न हुआ करेगा। यदि पूर्वपक्षी कहे कि लौकिक वाक्य तो अनित्य

---

७५. उद्योतकर, न्यायवार्त्तिक (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९१६), २.१.५८।

७६. द्र०, अप्रमाणानि वेदवाक्यानि०। वही, २.१.५९ तथा मन्त्रायुर्वद० इत्यादि सूत्र (२.१.६९) का वार्त्तिक।

७७. प्रमाणं वेदवाक्यानि वक्तृविशेषाभिहितत्वात्, मन्त्रायुर्वेदवाक्यवत्। वही, २.१.६९।

७८. द्र०, वही, २.१.६९।

७९. तस्माद्युक्तम् अर्थविभागवत्त्वाद् अनित्यत्वं लौकिकवाक्यवाद् इति। वही, २.१.६९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तब तो उससे कहा जायेगा—जब दोनों प्रकार के वाक्यों में समान रूप से अर्थ-विभाग होता है, दोनों समान रूप से अर्थ के बोधक हैं तो लौकिक वाक्य अनित्य हैं तथा वैदिकवाक्य नित्य हैं, ऐसा क्यों है ? इनके भेद का क्या कारण है ?

उन्होंने वेद वाक्यों की अनित्यता में अन्य हेतु भी प्रस्तुत किये हैं; जैसे—

(१) वेद-वाक्य अनित्य हैं, वर्ण वाले होने से, लौकिक वाक्यों के समान।[८०]

(२) वेद-वाक्य अनित्य हैं; सामान्यविशेष वाले होकर श्रोत्रग्राह्य होने से लौकिक वाक्यों के समान।

(३) वे अनित्य हैं, पद वाले होने से लौकिक वाक्यों के समान।[८१]

शब्द की नित्यता को सिद्ध करने के लिये जैमिनि ने जो युक्ति दी है—दर्शनस्य परार्थत्वात्[८२] उसका भी वार्त्तिककार ने निराकरण किया है। इस युक्ति का अभिप्राय है—दर्शन कहते हैं उच्चारण को। शब्दों का उच्चारण दूसरों को बोध कराने के लिये (परप्रतिपादनार्थ) किया जाता है, यदि शब्द नित्य होंगे तभी वक्ता द्वारा उच्चारित शब्द से श्रोता को बोध हो सकता है; अन्यथा यदि शब्द का उच्चारण करते ही नाश हो जायेगा तो शब्द के द्वारा दूसरे को बोध न हो सकेगा।[८३] इस युक्ति का निराकरण करते हुए वार्त्तिककार कहते हैं—यह हेतु अनैकान्तिक है। दीपक आदि क्षण भर ठहरकर नष्ट हो जाते हैं फिर भी वे पहले न जानी गई वस्तु का बोध कराते हैं, यह प्रत्यक्ष-सिद्ध है।[८४]

न्यायमत को स्पष्ट करते हुए वे बतलाते हैं—यह कहा जा चुका है कि शब्द और अर्थ में प्राप्तिरूप सम्बन्ध नहीं है, वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध है जो

---

८०. द्र०, इतश्च वर्णवत्त्वाद् वर्णवन्ति लौकिकवाक्यानि अनित्यानि तथा च वेदवाक्यानि, तस्मात् तान्यनित्यानि। वही, २.१.६६।

८१. द्र०, वही, २.१.६६।

८२. मीमांसासूत्र, १.१.१८।

८३. द्र०, न्यायवार्त्तिक, २.१.६६।

८४. नानेकान्तात् क्षणविध्वंसिषु प्रदीपादिषु अपूर्वस्य प्रत्यायनं दृष्टम् इति। वही, २.१.६६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पौरुषेय है, पुरुषकृत है। संसार के (प्रवाह से) अनादि होने के कारण वह सम्बन्ध लोक से जान लिया जाता है।[८५]

अब प्रश्न यह है कि यदि शब्द अनित्य हैं तथा वेद-वाक्य अनित्य हैं तो यह क्यों कहा जाता है कि वेद नित्य हैं (नित्याः वेदाः)। इसके उत्तर में वार्त्तिककार कहते हैं—सम्प्रदाय का विच्छेद न होने से। भाव यह है कि गुरु-शिष्य सम्प्रदाय तथा अभ्यास का विच्छेद न होने से लौकिक जन यह कहा करते हैं कि वेद नित्य हैं; जैसे पर्वत नित्य हैं, नदियाँ नित्य हैं, यह कह दिया जाता है। इस प्रकार वेदों को नित्य कहना औपचारिक है और वह मनु आदि के वाक्यों में भी उसी प्रकार होता है।[८६] किन्तु प्रश्न यह है कि वेदों की नित्यता अध्ययन-परम्परा (सम्प्रदाय) के अविच्छेद से कही जाती है वस्तुतः वेदों के नित्य होने से नहीं, यह कैसे माना जा सकता है। इसके उत्तर में वार्त्तिककार कहते हैं—शब्द तथा वेदवाक्यों की अनित्यता सिद्ध करने के लिये जो प्रमाण दिये गये हैं उनका बाधक कोई प्रमाण नहीं है अतः वेदवाक्यों की अनित्यता सिद्ध हो जाती है। फिर तो वेदवाक्यों को जो नित्य कहा जाता है वह अध्ययन-परम्परा का विच्छेद न होने के कारण औपचारिक ही है, यह मानना पड़ता है।[८७]

वार्त्तिककार ने बतलाया था कि वेदों की प्रामाणिकता को सिद्ध करने के लिये पुरुषविशेष द्वारा अभिहित होना हेतु दिया गया है। उस पुरुष-विशेष शब्द की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र कहते हैं—पुरुषस्य भगवतो वेदकारकस्य विशेषः[८८]—पुरुष अर्थात् वेद-प्रणेता भगवान् का वैशिष्ट्य। अनाप्त पुरुषों की अपेक्षा उसमें चार विशेषताएँ हैं—हेयोपादेय अर्थ को प्रत्यक्ष करना, भूतदया, यथार्थ उपदेश की अभिलाषा और वाणी आदि के साधनों की कुशलता।[८९] वाचस्पति मिश्र ने विस्तार से यह सिद्ध किया है कि वेद ईश्वर-प्रणीत हैं। भाव यह है—प्राणियों के धर्म-अधर्म का प्रत्यक्ष करने वाला, जगत् का स्रष्टा भगवान्

---

८५. वाच्यवाचकभावलक्षणस्तु पौरुषेयः सम्बन्धः। स च कृतक इति। स च संसारानादित्वात् लोकतोऽवगम्यते। वही, २.१.६६।

८६. द्र०, वही, २.१.६६।

८७. कुत एवं सम्प्रदायाविच्छेदात् नित्यत्वं न पुनर्नित्यत्वादेव ? अनित्यत्वोक्त-प्रमाणाविघातात्, यानि मयाऽनित्यत्वे प्रमाणान्युपन्यस्तानि तानि न विहन्यन्ते तेषामविघाताद् अनित्यत्वे सति सम्प्रदायाविच्छेदात् नित्यत्वोपचार इति। वही, २.१.६६।

८८. न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका (चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, बनारस, १९२५), पृ० ४३१।

८९. द्र०, वही, पृ० ४३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महेश्वर दुःख-सन्तप्त प्राणियों को देखकर उनके हित-प्राप्ति और अहित-परिहार के उपायों का उपदेश करता है। विना उपदेश किये वह रह ही नहीं सकता। प्रजा के पितृ-तुल्य उसके उपदेश देव, ऋषि, मनुष्य आदि सभी के द्वारा आदरपूर्वक ग्राह्य हैं और हित-प्राप्ति तथा अहित के परिहार के लिये अनुष्ठान के योग्य हैं। अतः वर्णाश्रम के आचार का व्यवस्थापक महाजनों द्वारा परिगृहीत जो शास्त्र उसके द्वारा प्रणीत है वह आप्तोक्त होने से प्रमाण है।[९०]

इस प्रकार वेद आप्तोक्त हैं, ईश्वर-प्रणीत हैं यह सिद्ध करते हुए उन्होंने बतलाया है कि बुद्ध और ऋषभ आदि के शास्त्र ईश्वरप्रणीत नहीं हैं। क्यों? (१) बुद्ध और ऋषभ आदि उनके प्रणेता हैं, यह स्पष्ट ही है, (२) वे जगत् के स्रष्टा नहीं अतः ईश्वर के समान सर्वज्ञ नहीं, इसीलिये बुद्धिमानों का उनके वचन में विश्वास न हो सकेगा। (३) वे लोकयात्रा के निर्वाहक नहीं, (४) अतः वेद के कर्ता का कहीं स्मरण किया गया हो या न किया गया हो, ये ही ईश्वर-प्रणीत हैं; क्योंकि अन्य कोई इनका कर्ता नहीं कहा गया। इस प्रकार वाचस्पति मिश्र ने वार्त्तिककार द्वारा प्रस्तुत अनुमानों का उल्लेख किया है और सिद्ध किया है कि वेद सर्वज्ञकर्तृक हैं।[९१]

वेदों की नित्यता का विवेचन करते हुए उन्होंने पूर्वपक्षी की ओर से शङ्का उठाई है—यदि वेद नित्य नहीं हैं तो प्रमाण कैसे होंगे? पुरुष तो प्रवञ्चना करने वाले हैं उनमें भ्रान्ति की भी आशङ्का है अतः अपौरुषेय मानने पर ही पुरुषकृत दोषों का निराकरण हो सकता है।[९२] इसका समाधान करते हुए उन्होंने कहा हैं—आप्तोप्त होने से अनित्य शब्द भी अर्थ का निश्चय करा देता है।[९३] वेदों की नित्यता का क्या अभिप्राय है? इसे स्पष्ट करते हुए वाचस्पति मिश्र ने भाष्य तथा वार्त्तिक में कही गई उक्ति की ओर ही सङ्केत किया है फिर भी एतद्विषयक न्याय के मन्तव्य पर भी बल दिया है—महाप्रलये तु ईश्वरेण वेदान् प्रणीय सृष्ट्यादौ सम्प्रदायः प्रवर्त्यत एवेति भावः[९४]—महाप्रलय होने पर तो ईश्वर सृष्टि के आदि में वेदों का प्रणयन करके सम्प्रदाय का प्रवर्तन करता ही

---

९०. द्र०, वही, ४३१।

९१. द्र०, वही, पृ० ४३१-४३३।

९२. द्र०, वही, पृ० ४३३।

९३. आप्तोक्तत्वेनानित्यस्यापि निश्चायकत्वादित्यर्थः। वही, पृ० ४३३।

९४. वही, पृ० ४३४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, यह भाव है। यहाँ वाचस्पति मिश्र ने केवल इतना बतलाया है कि सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों का प्रणयन करता है। अब प्रश्न यह है कि क्या प्रत्येक सृष्टि के आदि में पहले सर्ग के समान ही वेद-रचना की जाती है। इस विषय में वाचस्पति मिश्र ने स्पष्टतः कुछ नहीं कहा। हाँ, उन्होंने ईश्वर के ज्ञान और क्रिया शक्ति को नित्य अवश्य माना है।[९५]

यहाँ 'महाप्रलये तु' इत्यादि कथन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वार्त्तिककार ने जो संसार को अनादि कहा है उसका मीमांसक समान स्वरूप से अनादि होने में तात्पर्य नहीं है अपितु सृष्टि-प्रलय हुआ करते हैं संसार अवान्तर प्रलयों में रहता ही है और वेद-सम्प्रदाय भी तब विच्छिन्न नहीं होता, किन्तु महाप्रलय में वेद-सम्प्रदाय का भी विच्छेद हो जाता है और सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों की रचना करके पुनः सम्प्रदाय का प्रवर्तन करता है।

(ग) जयन्त भट्ट की न्यायमञ्जरी

यह तो रहा सूत्रभाष्य, वार्त्तिक तथा तात्पर्यटीका द्वारा वेदनित्यता का विवेचन। अब जयन्तभट्ट की न्यायमञ्जरी के आधार पर इस विषय में विचार करना है। न्यायमञ्जरी में अनेक युक्तियों तथा प्रमाणों के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है कि अथर्ववेद की भी वेदों में गणना है अतः वेद चार हैं—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद।[९६] किसी का कथन यह था—अथर्ववेद तो त्रयी में नहीं आता, त्रयी में विहित धर्म में इसका कोई उपयोग भी नहीं, लोक में चार विद्याओं में त्रयी का ही ग्रहण किया गया है अथर्ववेद का नहीं। श्रुति स्मृति का भी यही मत दिखलाई देता है। शतपथ में आता है—तानि ज्योतींष्यभ्यतपत् तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त अग्नेर्ऋग्वेदो आदित्यात् सामवेद इति।[९७] मनुस्मृति में भी कहा गया है—षट्त्रिंशद्वार्षिकं चर्यं गुरौ त्रैवेदिकं व्रतम्।[९८] इसी प्रकार अन्य स्थलों पर भी वेदत्रयी का उल्लेख ही मिलता है। फिर अथर्व की वेदों में गणना कैसे की जा सकती है?

इस आक्षेप का परिहार करते हुए जयन्तभट्ट कहते हैं—(१) मीमांसक अथवा नैयायिक ने वेद-प्रामाण्य की सिद्धि के लिये जो युक्तियां दी हैं, वे चारों

---

९५. तस्यही ज्ञानक्रियाशक्ती नित्ये। न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका, पृ० ५९७।

९६. द्र०, न्यायमञ्जरी (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, आफिस, वाराणसी, १९७१), पृ० २३२।

९७. वही, पृ० २३१, शतपथ ब्राह्मण, ११.४.११।

९८. वही, पृ० २३२, मनुस्मृति, ३.१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों के लिये समान ही हैं अतः वेद चार हैं।[९९] (२) लोक में यही व्यवहार प्रसिद्ध है कि वेद चार हैं। आर्यावर्तवासियों का व्यवहार श्रुतिस्मृतिमूलक ही होता है। श्रुति-स्मृति चारों वेदों को ही समान स्तर पर रखती है।[१००] (३) ऋग् यजुः, साम वेदों में भी ऐसे वहुत से वचन हैं जिनमें अथर्ववेद का उल्लेख किया गया है, जैसे शतपथ में सुना जाता है—सोऽयमाथर्वणो वेदः।[१०१] इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् में भी 'ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथवर्णः चतुर्थः' यह पाठ है।[१०२] (४) इस अर्थ को प्रकट करने वाले मन्त्र भी हैं जैसे—'त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत'।[१०३] (५) स्मृतियों में जो चतुर्दश विद्या बतलाई गई हैं उनमें वेदों की संख्या चार गिनी गई है।[१०४] इसी प्रकार अन्य स्मृतियों से यही सिद्ध होता है कि अथर्व की भी वेदों में गणना होती है। धर्मशास्त्रकार ही नहीं अन्य शास्त्रकार भी इसी प्रकार कहते हैं, महाभाष्यकार पतञ्जलि ने वैदिक शब्दों का उदाहरण देते हुए अथर्ववेद का 'शन्नो देवीरभिष्टये' मन्त्र सर्वप्रथम रक्खा है[१०५], मीमांसासूत्र के शाबर भाष्य में अन्य वेदों की काठक आदि शाखाओं के साथ अथर्ववेद की पैप्पलादक शाखा का भी नाम लिया गया है।[१०६] इसी प्रकार सभी श्रुतिस्मृति, शिष्टाचार तथा लोकव्यवहार से यह विदित होता है कि अथर्व की वेदों में गणना है, इस विषय में विवाद का अवकाश नहीं।

अथर्ववेद भी त्रय्यात्मक ही है; क्योंकि वहाँ ऋक्, यजुष् और साम तीनों प्रकार के मन्त्र हैं।[१०७] जैमिनि ने ऋक्, यजुष्, साम इन तीनों रूपों में मन्त्रों का

---

९९. द्र०, वही. पृ० २३२।

१००. श्रुतिस्मृतिमूलश्चार्यावर्तनिवासिनां भवति व्यवहारः। ते च श्रुतिस्मृती चतुरोऽपि वेदान् समानकक्षानभिवदतः। वही, पृ० २३२।

१०१. द्र०, वही, पृ० २३२; शतपथ-प्रकरण १३ प्र० ३ कण्डिका ७।

१०२. द्र०, वही, पृ० २३२; छान्दोग्य-प्रपाठक ७ खण्ड ६।

१०३. द्र०, वही, पृ० २३३, तैत्तिरीयसंहिता, ३.५.११।

१०४. द्र०, वही, पृ० २३३।
पुराणतर्कमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशेति॥ याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, ३१
याज्ञ० स्मृति में 'तर्क' के स्थान पर 'न्याय' शब्द है।

१०५. द्र०, वही, पृ० २३४।

१०६. द्र०, वही, पृ० २३४, शाबर भाष्य, १.१.२७।

१०७. अथर्ववेदस्तु त्रयात्मक एव तत्र हि ऋचो यजूंषि सामानि इति त्रीण्यपि सन्ति। वही, पृ० २३५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाग किया है—तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था, गीतिषु सामाख्या, शेषे यजुः शब्दः ।[१०८] वेद शब्द के वाच्य ग्रन्थों का यह विभाग नहीं है । वस्तुतः तीन प्रकार की मन्त्रजाति है वह अथर्ववेद में भी विद्यमान है । त्रयी का व्यवहार भी तीन प्रकार के मन्त्रों के आधार पर ही होता है । इस प्रकार अथर्ववेद भी त्रयी के अन्तर्गत है ही ।[१०९] शिष्टव्यवहार में भी वेद शब्द का प्रयोग अथर्व के लिये होता ही है, वेद शब्द का प्रयोग होते ही चारों वेदों की प्रतीति होती है । जब पूछा जाता है आपने कौन सा वेद पढ़ा है उत्तर मिलता है—अथर्ववेद । इस उत्तर में किसी को वैमत्य ही नहीं होता । अतः ऋग्वेद आदि के समान अथर्व भी वेद है, इसमें सन्देह नहीं ।[११०]

उपर्युक्त विवेचन के प्रसङ्ग में जयन्तभट्ट ने यह भी बतला दिया है कि अथर्ववेद को ब्रह्मवेद भी कहा जाता है, यही वेदों में प्रथम है । साथ ही[१११] उन्होंने वेद शब्द का वाच्यार्थ क्या है ? इस पर भी अपने विचार प्रकट कर दिये हैं । उन्होंने श्रुति का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए शतपथ ब्राह्मण, छान्दोग्योपनिषद् तथा तैत्तिरीयसंहिता के उद्धरण दिये हैं, जिससे विदित होता है कि उनके अनुसार मन्त्र, ब्राह्मण, उपनिषद् सभी वेद कहलाते हैं । संहिताओं में ऋक् संहिता आदि ही नहीं अपितु तैत्तिरीयसंहिता भी तथा वेदों की सभी शाखाएँ भी वेद हैं । उन्होंने वेद का स्वरूप दिखलाते हुए कहा है—मन्त्रब्राह्मणसमुदायस्वभावा हि चत्वार इमे वेदग्रन्थाः[११२]—मन्त्रब्राह्मणसमुदायरूप हैं ये चारों वेदग्रन्थ । इसी प्रकार वेद की सभी शाखाएँ वेद के अन्तर्गत हैं ।[११३] इसके विपरीत एक स्थल पर वृद्धव्यवहार को प्रमाण मानते हुए उन्होंने वेद तथा ब्राह्मण में अन्तर भी दिखला दिया है—जो यह कहा गया है कि वेद शब्द तीनों का ही वाचक है चतुर्थ का नहीं, यह तो उत्कट द्वेष ही है । कारण, वृद्धों का व्यवहार ही इस विषय में प्रमाण है, यह वेद है, यह ब्राह्मण है, इस प्रकार भिन्न-भिन्न स्थलों

---

१०८. द्र०; मीमांसासूत्र, २.१.३५-३७ ।

१०९. द्र०, न्यायमञ्जरी, पृ० २३७ ।

११०. द्र०, वही, पृ० २३७ ।

१११. द्र०, वही, पृ० २३७ ।

११२. द्र०, वही, पृ० २३६ ।

११३. द्र०, वही, पृ० २१९-२२० ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में वेद शब्द का उच्चारण करने पर चारों वेद ही प्रतीत होते हैं।[११४] इसी प्रकार अन्य व्यवहारों में वेद शब्द से अथर्ववेद आदि की प्रतीति भी होती है। यहाँ 'वेदोऽयम्', 'ब्राह्मणोऽयम्'— यह वेद है, यह ब्राह्मण है, इस कथन से व्यवहार के आधार पर वेद और ब्राह्मण का भेद प्रकट होता है। यह अवश्य कहा जा सकता है कि यह लेखक का अभिप्राय नहीं है। अस्तु।

न्यायमञ्जरी के अनुसार वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता पर भी विचार करना है। जयन्तभट्ट ने शब्द की नित्यता का निराकरण करते हुए 'नित्य शब्द की अभिव्यक्ति हुआ करती है' इत्यादि कल्पनाओं का भी खण्डन किया है।[११६] यह भी कह दिया है कि यदि शब्द को नित्य मान लिया जाये तो भी वाक्यात्मक वेद को तो पुरुष की कृति ही मानना होगा।[११७] वेदवाक्यों का कोई कर्ता है, यह सिद्ध करने के लिये अनुमानप्रयोग इस प्रकार है—'वैदिक्यो रचनाः कर्तृपूर्विकाः रचनात्वात्, लौकिकरचनावत् (पृ० २१३)—वेद की रचना का कोई कर्ता है, रचना होने के कारण, लौकिक रचना के समान। मीमांसक ने जो वेद की अपौरुषेयता सिद्ध की है उसका युक्ति और प्रमाणों द्वारा जयन्तभट्ट ने निराकरण किया है; जैसे—(१) वेदाध्ययन गुरु से अध्ययन द्वारा होता है, वेदाध्ययन होने से, आजकल के वेदाध्ययन के समान। मीमांसक के इस अनुमान को अप्रयोजक बतलाया है और कहा है कि यह अनैकान्तिक हेत्वाभास है; क्योंकि महाभारत आदि में भी यह हेतु विद्यमान है। तब तो वे भी अनादि होने लगेंगे।[११८] (२) वेद का कोई कर्ता नहीं, क्योंकि उसका स्मरण नहीं किया जाता, इस अनुमान को भी अप्रयोजक बतलाया है।[११९] उन्होंने वेद पुरुषकृत हैं—पौरुषेय हैं, इस मन्तव्य की सिद्धि के लिये कई युक्तियाँ दी हैं; जैसे—(१) वेद में पद तथा वाक्यों की रचना स्वाभाविक नहीं हो सकती, यदि रचना स्वाभाविक हुआ

---

११४. यत्पुनरभिधीयते वेदशब्दस्त्रयाणामेव वाचको न चतुर्थस्येति सोऽयमत्युत्कटो द्वेषः। वृद्धव्यवहारो ह्यत्र प्रमाणम्, वेदोऽयं ब्राह्मणोऽयमिति तत्र तत्र वेदशब्दे उच्चारिते चत्वारोऽपि प्रतीयन्ते। वही, पृ० २३७।

११५. द्र०, वही, पृ० २३७।

११६. द्र०, वही, पृ० २००-२१३।

११७. पदनित्यत्वपक्षेऽपि वाक्ये तद्रचनात्मके।
कर्तृत्वसंभवात्पुंसो वेदः कथमकृत्रिमः। वही, पृ० २१३।

११८. वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम्।
वेदाध्ययनसामान्यादधुनाऽध्ययनं यथा॥ वही, पृ० २१४ (श्लो० वा०, वाक्याधिकरण, ३६६)।

११९. द्र०, वही, पृ० २१४-२१६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे तो पट में तन्तुओं की रचना भी स्वाभाविक क्यों न हो जाये।[१२०] (२) कोई भी विशेष प्रकार की रचना (संस्थान) कर्ता द्वारा ही की जाती है अतः वैदिक रचना भी किसी कर्ता की कृति है—

यथा घटादिसंस्थानाद् भिन्नमप्यचलादिषु।
संस्थानं कर्तृमत् सिद्धं वेदेऽपि रचना तथा॥[१२१]

(३) वेदस्तु पुरुषप्रणीत एव नात्र भ्रान्तिः (पृ० २१६)–वेद तो पुरुषप्रणीत ही है, इस विषय में कोई भ्रान्ति नहीं। (४) वेद की विलक्षण रचना के अनुसार विलक्षण कर्ता का ही अनुमान किया जाता है। नाम-आख्यात आदि की विचित्रता होने से वेद में कर्ता के अभाव का निश्चय नहीं किया जा सकता। कालिदास और बाण के काव्य में भी व्यक्तिगत वैचित्र्य विद्यमान है ही।[१२२]

इस प्रकार जो पथिवी आदि का कर्ता है वह वेदों का प्रणेता है। वह सर्वज्ञ है, पृथिवी आदि के कर्ता के रूप में उसकी सिद्धि होती है। अतः यहाँ इस प्रकार का अन्योन्याश्रय दोष भी नहीं कि ईश्वर-प्रणीत (आप्तोक्त) होने से वेद प्रमाण हैं और वेदों का कर्त्ता ईश्वर है यह वेद से ही ज्ञात होता है।[१२३] सभी वेदों का वही एक कर्ता है—'एवं जगत्सर्गवत् स एव वेदानामेकः प्रणेता' (पृ० २१९) जो प्रतिसर्ग के आदि में वेदों की रचना करता है—'प्रतिमन्वन्तरं चैषा श्रुतिरन्या विधीयते'।[१२४]

(घ) वैशेषिक सूत्र तथा प्रशस्तपाद भाष्य :

वैशेषिक सूत्रों पर कोई प्राचीन भाष्य उपलब्ध नहीं है। वैशेषिक सूत्रोपस्कार नामक उत्तरकालीन भाष्य के आधार पर ही उन सन्दर्भों पर विचार करना सम्भव है जिनमें वेदोत्पत्ति या वेदनित्यता का सङ्केत दृष्टिगोचर होता है।

---

१२०. यदि स्वाभाविकी वेदे पदानां रचना भवेत्।
पटे हि हन्त तन्तूनां कथं नैसर्गिकी न सा॥ वही, पृ० २१६।

१२१. वही, पृ० २१६।

१२२. द्र०, वही, पृ० २१६-२१७।

१२३. द्र०, वही, पृ० २१८।

१२४. द्र०, वही, पृ० २१७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैशेषिक दर्शन का एक सूत्र है 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'।[१२५] इसका सामान्य अर्थ है—उसके वचन से आम्नाय (=वेद) की प्रामाणिकता होती है। इससे पहले सूत्र में धर्म का उल्लेख किया गया है।[१२६] अतः तद् शब्द से उसी का ग्रहण करना न्याय्य प्रतीत होता है। फिर भी उपस्कार भाष्य में तद् शब्द से ईश्वर का ग्रहण करते हुए प्रस्तुत सूत्र का दूसरा भी अर्थ किया गया है। (उपस्कारभाष्य के लेखक) शङ्कर मिश्र का कथन है– यद्यपि यहाँ ईश्वर का प्रकरण नहीं तथापि प्रसिद्ध होने के कारण 'तद्' शब्द से ईश्वर का ग्रहण होता है जिस प्रकार गौतम के 'तदप्रामाण्यम्' (न्यायसूत्र २.२.५८) में 'तद्' शब्द से वेद का ग्रहण किया गया है। इस प्रकार तद्वचनात् का अर्थ होगा ईश्वर का वचन होने से। अतः वेद ईश्वरप्रणीत है, यह वैशेषिक का अभिप्राय समझा जाता है।[१२७]

दूसरे स्थल पर कहा गया है 'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'[१२८] अर्थात् वेद में वाक्य-रचना बुद्धिपूर्वक है। यहाँ 'बुद्धिपूर्वा' शब्द से केवल इतना प्रतीत होता है कि वेद का प्रणेता आप्त है। वह आप्त कौन है? यह यहाँ स्पष्ट नहीं किया गया। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए शङ्करमिश्र कहते हैं कि वेद हम जैसों की बुद्धि से निर्मित नहीं हो सकते; क्योंकि 'स्वर्गकामो यजेत' आदि में जो यज्ञ को इष्ट का साधन कहा गया है वह हमारी बुद्धि का विषय नहीं हो सकता। इसलिए वेद किसी स्वतन्त्र पुरुष की रचना है, यह सिद्ध होता है।[१२९] इसी प्रसङ्ग में सूत्रकार ने वेद-वाक्य-रचना बुद्धिपूर्वक है, इस विषय में अन्य प्रमाण भी प्रस्तुत किया है। वह है 'बुद्धिपूर्वो ददातिः' (वही, ६.१.३) अर्थात् 'स्वर्गकामो गां दद्यात्' इत्यादि में जो दान देने का विधान किया गया है वह दान इष्ट-साधनता के ज्ञान से ही दिया जा सकता है।[१३०] इस विषय में एक अन्य प्रमाण भी दिया गया है। 'तथा प्रतिग्रहः' (वही, ६.१.४) अर्थात् प्रतिग्रह का प्रतिपादन करने वाली श्रुति भी बुद्धिपूर्वक ही रची गई है।[१३१]

---

१२५. वैशेषिकदर्शन (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८०), १.१.३।

१२६. यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। वही, १.१.२।

१२७. शङ्करमिश्र, वैशेषिकसूत्रोपस्कार (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९६९), १.१.३।

१२८. वैशेषिक सूत्र, ६.१.१।

१२९. द्र०, वैशेषिकसूत्रोपस्कार, ६.१.१।

१३०. द्र०, वही, ६.१.३। सूत्र में 'ददातिः' इस प्रकार धातु का निर्देश किया गया है। यह शब्द दान को उपलक्षित करता है।

१३१. द्र०, वही, ६.१.४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ वैशेषिक दर्शन में एक सूत्र और है वह है—ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिङ्गम् (६.१.२)। उपस्कार भाष्य में बतलाया गया है कि वेदवाक्य बुद्धिपूर्वक हैं उसी विषय में यह भी एक प्रमाण दिया गया है। इस सूत्र का अर्थ है–यहाँ ब्राह्मण का अर्थ है वेदभाग, उसमें जो संज्ञा कर्म अर्थात् नामकरण मिलता है वह उसके प्रतिपादक की बुद्धि को सूचित करता है; जैसे—लोक में लम्बकर्ण (लम्बे कानों वाला)[१३२] आदि नाम होते हैं। इस से यह सूचित होता है कि यहाँ ब्राह्मण को भी वेद के अन्तर्गत माना गया है। किन्तु इस सूत्र को प्रशस्तपादभाष्य में यहाँ नहीं दिखलाया गया। वैशेषिक के एक अन्य सूत्र में संज्ञाकर्म को हम जैसों से विशिष्ट (ईश्वर और महर्षियों) की सत्ता में साधक (लिङ्ग) कहा गया है।[१३३] यद्यपि वहाँ वेद का प्रसङ्ग नहीं है तथापि उससे यह अवश्य प्रकट होता है कि पृथ्वी आदि नामों से जनसाधारण की अपेक्षा किन्हीं विशिष्ट ऋषियों या ईश्वर की सिद्धि होती है। वेद में भी उस प्रकार के नाम हैं। अतः उनसे वेद की रचना बुद्धिपूर्वक हुई है यह सिद्ध होता है।

तीसरे स्थल पर 'तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्' यही सूत्र है।[१३४] यहाँ पहले कहे गये सूत्र की ही पुनरावृत्ति क्यों की गई है? यह चिन्तनीय है। शङ्कर मिश्र ने बतलाया है कि आम्नाय के प्रामाण्य को दृढ़ करने के लिये उक्त अर्थ को ही पुनः कहा गया है।[१३५] किन्तु इससे शङ्का की निवृत्ति नहीं होती। यहाँ भी 'तद्वचनात्' शब्द का अर्थ यदि 'ईश्वर का वचन होने से' यही किया जाता है तो इससे यही विदित होता है कि वेद ईश्वर-प्रणीत हैं। इस प्रकार के अर्थ उत्तरवर्ती भाष्य के आधार पर ही निकाले जा सकते हैं, सूत्र के शब्द से कुछ स्पष्ट प्रतीति नहीं होती।

प्रशस्तपादभाष्य के कतिपय सन्दर्भों से भी वेदोत्पत्ति और वेद-नित्यता के विषय में कुछ प्रकाश पड़ता है। द्रव्य आदि पदार्थों का तत्त्वज्ञान निःश्रेयस का हेतु है, यह बतलाकर आचार्य प्रशस्तपाद कहते हैं—'तच्चेश्वरचोदनाभिव्यक्ताद् धर्मादेव'[१३६] और वह (तत्त्वज्ञान या निःश्रेयस) ईश्वर के उपदेश से अभिव्यक्त धर्म से ही होता है। इस भाष्य के टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्याएँ

१३२. द्र०, वही, ६.१.२।
१३३. द्र०, संज्ञाकर्म्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिङ्गम्। वही, २.१.१८।
१३४. वही, १०.२.९।
१३५. वैशेषिकसूत्रोपस्कार, १०.२.९ (अवतरणिका)।
१३६. प्रशस्तपादभाष्य (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८०), पृ० २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हैं। यहाँ 'तत्' शब्द से तत्त्वज्ञान का ग्रहण करना युक्ति-सङ्गत प्रतीत होता है; क्योंकि पहले वाक्य में तत्त्वज्ञान को ही निःश्रेयस का हेतु कहा गया है, निःश्रेयस शब्द तो समास के अन्तर्गत आया है। अस्तु। 'तत्' शब्द का कुछ भी अर्थ लिया जाये, इतना स्पष्ट है कि वह ईश्वर के उपदेश (चोदना=प्रवर्तक वाक्य) द्वारा ही होता है। ईश्वर का वह उपदेश वेद रूप ही माना जाता है। फलतः वेद ईश्वरकृत है, ईश्वरीय उपदेश है यह ग्रन्थकार का अभिप्राय प्रकट होता है।

अन्य स्थल पर शब्द का अनुमान में अन्तर्भाव करते हुए कहा गया है—श्रुति-स्मृति रूप आम्नाय भी वक्ता के प्रामाण्य की अपेक्षा रखता है, अतः अनुमान ही है।[१३७] यहाँ आम्नाय शब्द का अर्थ श्रुति और स्मृति दोनों किया गया है और उसे वक्ता के प्रामाणिक (आप्त) होने से ही प्रमाण माना गया है, जिससे यह विदित होता है कि श्रुति का भी कोई आप्त वक्ता है। इस कथन के प्रमाण रूप में कहा गया है 'तद्वचनाद् आम्नायस्य प्रामाण्यम्'। जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है यहाँ तद् (वह) शब्द से ईश्वर का भी ग्रहण किया जाता है। प्रशस्तपादभाष्य के अनुशीलन से यह प्रतीत होता है कि यहाँ तद् शब्द से किसी विशिष्ट वक्ता, प्रामाणिक वक्ता, का ग्रहण किया गया है। इस प्रकार आप्त वक्ता का वचन होने से आम्नाय प्रमाण है, यह भाव है। किन्तु यहाँ उस विशिष्ट वक्ता का उल्लेख नहीं किया गया।

इसी स्थल पर प्रशस्तपाद भाष्य में यह भी स्पष्ट कहा गया है कि आम्नाय अनित्य है—'लिङ्गाच्चानित्यः'।[१३८] साधक प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि आम्नाय अनित्य है। वे साधक प्रमाण कौन से हैं ? एक प्रमाण है—बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'[१३९] वेद में वाक्य-रचना बुद्धिपूर्वक है। भाव यह है कि किन्हीं का मत है कि वेद नित्य अपौरुषेय हैं—कभी उत्पन्न नहीं हुए, किसी पुरुष ने इनकी रचना नहीं की।[१४०] दूसरे विद्वान् कहते हैं कि सर्वज्ञ द्वारा सृष्टि के आदि में उनकी रचना की जाती है, किन्तु वेद उसके निःश्वास के समान हैं वह बुद्धिपूर्वक वेद-रचना नहीं करता।[१४१] वैशेषिक के अनुसार वे दोनों ही मत युक्तियुक्त

---

१३७. श्रुतिस्मृतिलक्षणोऽप्याम्नायो वक्तृप्रामाण्यापेक्षः। वही, पृ० १७६।

१३८. वही, पृ० १७६।

१३९. वैशेषिक सूत्र, ६.१.१।

१४०. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ४।

१४१. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं। क्यों? वेद-वाक्यों के अनुशीलन से प्रतीत होता है कि इनकी रचना बुद्धिपूर्वक की गई है अतः किसी विशेष-पुरुष ने इनका बुद्धिपूर्वक प्रणयन किया है, समझ बूझ कर रचना की है, ये पौरुषेय हैं।

इसी प्रकार 'बुद्धिपूर्वो ददातिः'[१४२] यह भी कहा गया है। इन सूत्रों की व्याख्या अभी ऊपर की जा चुकी है। वैशेषिक दर्शन के इस प्रकार के सूत्रों के आधार पर ही प्रशस्तपादाचार्य ने वेद-वाक्यों को आप्त-प्रणीत सिद्ध किया है। प्रशस्तपाद भाष्य के इन सन्दर्भों को टीकाकारों ने स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

(ङ) प्रशस्तपादभाष्य के टीकाकार

प्रशस्तपादभाष्य की चार प्राचीन टीकाएं हैं—व्योमवती, न्यायलीलावती, न्यायकन्दली और किरणावली। इनमें व्योमशिवाचार्य की व्योमवती सबसे प्राचीन मानी जाती है। व्योमशिव ने 'तच्चेश्वरचोदनाभिव्यक्ताद् धर्मादेव' इस प्रशस्तपाद भाष्य की व्याख्या में वेद को ईश्वर–प्रणीत दिखलाया है।[१४३] 'श्रुतिस्मृतिलक्षणोऽप्याम्नायः' इस प्रशस्तपादभाष्य की टीका में उन्होंने वेद की पौरुषेयता का प्रतिपादन किया है।[१४४] उनका कहना है कि अतीन्द्रिय अर्थों का साक्षात्कार करने वाला कोई पुरुष अवश्य है वही वेदों का कर्ता है।[१४५] न्यायलीलावती के कर्ता वत्साचार्य हैं। यह टीका अभी तक उपलब्ध नहीं हो सकी है।

श्रीधर ने न्यायकन्दली में 'तद्वचनाद् आम्नायस्य प्रामाण्यम्' के तद् शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि इससे जनसाधारण की अपेक्षा विशिष्ट वक्ता (अस्मद्विशिष्ट) या पुरुषविशेष का ग्रहण होता है[१४६] अतः वेद पुरुषविशेष की रचना है।[१४७] पूर्वपक्षी मीमांसक ने वेद को नित्य माना है और उसमें हेतु दिया है; क्योंकि इसके कर्ता का स्मरण नहीं किया जाता। उसका निराकरण करते हुए श्रीधर कहते हैं—अनुमान से आम्नाय को अनित्य जाना जाता है। अनुमान है—वेद में वाक्यरचना बुद्धिपूर्वक है, वाक्यरचना होने से, लौकिक-वाक्य रचना के

---

१४२. वैशेषिक सूत्र, ६.१.३।

१४३. द्र०, व्योमवती (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९२४), पृ० ३३।

१४४. द्र०, वही, पृ० ५७९—८४।

१४५. द्र०, वही, पृ० ५८१।

१४६. द्र०, न्यायकन्दली (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७७), पृ० ५१९–२०।

१४७. पुरुषविशेषप्रणीतो वेदः। वही, पृ० ५२०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान। दूसरा अनुमान है—वेद में ददाति शब्द बुद्धिपूर्वक है, क्योंकि ददाति (देता है) यह कहा गया है, लौकिक ददातिशब्द के समान।[१४८*] पूर्वपक्षी के हेतु का निराकरण करते हुए श्रीधर ने कहा है—वेदों की नित्यता को सिद्ध करने के लिये जो हेतु दिया गया है—कर्ता का स्मरण न होने से (अस्मर्यमाणकर्तृकत्वात्) वह हेतु असिद्ध है; क्योंकि वेद ने ही (वेद के कर्ता) का उल्लेख किया है—'प्रजापतिर्वा इदमेक आसीन्नाहरासीन्न रात्रिरासीत्, स तपोऽतप्यत, तस्मात् तपसश्चत्वारो वेदा अजायन्त'। यहाँ श्रीधर ने स्पष्टतः वेदों की संख्या चार बतलाई है—चत्वारो वेदाः।

उदयनाचार्य ने किरणावली में प्रशस्तपाद भाष्य की व्याख्या करते हुए कई प्रसङ्गों में वेद को ईश्वरकृत दिखलाया है। 'तच्चेश्वरचोदनाभिव्यक्ताद् धर्मादेव' की टीका में वे कहते हैं – ईश्वर-चोदना का अर्थ है ईश्वर का उपदेश=वेद।[१४९]

(च) न्याय-वैशेषिक के स्वतन्त्र ग्रन्थ

न्याय-वैशेषिक सम्प्रदायों में एकादश शताब्दी के पश्चात् विशेष रूप से स्वतन्त्र ग्रन्थों की रचना हुई है। उनमें न्यायसार, तत्त्वचिन्तामणि, तर्कभाषा और न्यायमुक्तावली आदि में न्याय-वैशेषिक के सभी मन्तव्यों का विवेचन किया गया है और न्यायकुसुमाञ्जलि जैसे ग्रन्थों में ईश्वर-प्रतिपादन जैसे किसी एक विषय का विशद विवेचन किया गया है। इन ग्रन्थों में वेदोत्पत्ति तथा वेद-नित्यता आदि के विषय में भी कुछ सूचनाएं उपलब्ध होती हैं।

न्यायसार के अनुसार वेद परम आप्त पुरुष की कृति हैं, यह अनुमान द्वारा सिद्ध होता है। 'पुत्रकामो यजेत' इत्यादि वाक्यों में सफल प्रवृत्ति के कारण प्रामाण्य का अनुमान करके उसके प्रणेता को अतीन्द्रियार्थदर्शी मानकर उसे परम आप्त निश्चित कर लिया जाता है।[१५०] इस कथन से केवल इतना

---

१४८. लिङ्गाच्चाम्नायोऽनित्यो गम्यते। वही, पृ० ५२१।

१४८.* द्र०, वही, पृ० ५२२।

१४९. द्र०, किरणावली (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९८०), पृ० ६९।

१५०. पुत्रकामो यजेत इत्यादि वाक्यानां प्रवृत्तिसामर्थ्यात् प्रामाण्यमनुमाय तत्प्रणेतुरतीन्द्रियार्थदर्शित्वेन परमाप्तत्वमवधार्य—। न्यायसार (गवर्नमेण्ट ऑरियन्टल मेनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, १९६१), परि० ३, पृ० ७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध होता है कि वेद आप्तोक्त हैं। साथ ही उन्होंने वेद की नित्यता का भी निराकरण किया है।[१५१]

उदयनाचार्य के कतिपय मन्तव्यों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। उन्होंने न्यायकुसुमाञ्जलि में यह विस्तारपूर्वक सिद्ध किया है कि वेदों का कर्त्ता ईश्वर है।[१५२] यहाँ उन्होंने वेद का लक्षण इस प्रकार किया है 'अनुपलभ्यमानमूलान्तरत्वे सति महाजनपरिगृहीतवाक्यत्वस्य तत्त्वात्'[१५३] अर्थात् जिसका अन्य मूल उपलब्ध नहीं और जिसे अधिकतम जनसमुदाय ने गृहीत किया है वह वाक्य वेद है। उस वेद का हम जैसे, साधारण जनों का प्रत्यक्ष आदि मूल नहीं है, अधिकांश जनों ने उसका ग्रहण किया है; अतः उसमें भ्रान्ति नहीं है और प्रवञ्चना की भी इच्छा नहीं है। मनु आदि का वचन भी अधिकांश जनों द्वारा गृहीत होता है किन्तु उनका मूल वेद ही है अतः उनमें यह लक्षण नहीं जाता। मीमांसक के समान यह भी नहीं कहा जा सकता कि वेद अनादि हैं, परम्परा से इसी प्रकार चले आ रहे हैं; क्योंकि महाप्रलय में परम्परा का नाश हो जाता है।[१५४]

न्यायकुसुमाञ्जलि में अनुमान द्वारा यह सिद्ध किया गया है वेद सर्वज्ञ-प्रणीत हैं (प्रतिज्ञा), वेद होने से (हेतु), जो सर्वज्ञ-प्रणीत नहीं है वह वेद नहीं है, अन्य वाक्यों के समान (व्यतिरेकी उदाहरण)।[१५५] उन्होंने अन्वयी अनुमान से वेदों की पौरुषेयता इस प्रकार सिद्ध की है—वेद वाक्य पौरुषेय हैं, वाक्य होने से, हम जैसों के वाक्यों के समान।[१५६] उदयनाचार्य ने मीमांसकों के वेद की अपौरुषेयता में दिये गये 'अस्मर्यमाणकर्तृकत्वात्' (क्योंकि उनके कर्त्ता का स्मरण नहीं किया जाता) हेतु को भी असिद्ध बताया है और श्रुति स्मृति के आधार पर वेद का कर्त्ता ईश्वर है, यह सिद्ध किया है।[१५७]

---

१५१. द्र०, वही, परि० ३, पृ० १३।

१५२. द्र०, न्यायकुसुमाञ्जलि (चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९५७), द्वितीय स्तवक।

१५३. वही, पृ० ५१०।

१५४. द्र०, वही, पृ० ५१०।

१५५. तथाहि-सर्वज्ञप्रणीता वेदाः, वेदत्वात्, यत् पुनर्न सर्वज्ञप्रणीतः, नाऽसौ वेदो यथेतरवाक्यम्। वही, ५.५, पृ० ५०९।

१५६. वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वात्, अस्मदादिवाक्यवत्। वही, ५.५, पृ० ५११।

१५७. द्र०, वही, ५.५, पृ० ५११।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गङ्गेशोपाध्याय ने तत्त्वचिन्तामणि में युक्तियों तथा तर्कों द्वारा यह सिद्ध किया है कि वेद नित्य नहीं, ईश्वरकृत हैं उस परम आप्त पुरुष की कृति हैं।[१५८] परम्परागत न्याय-मत को दर्शाते हुए वे कहते हैं— प्रमा (यथार्थज्ञान) गुणों से उत्पन्न होती है अतः वेद-प्रतिपादित प्रमा भी वाक्यार्थ के यथार्थज्ञान रूपी गुण से उत्पन्न होगी और उस (गुण) के आश्रय रूप में ईश्वर की सिद्धि होती है।[१५९] यहां वेदनित्यता का भी निराकरण किया गया है।[१६०] तत्त्वचिन्तामणि के एक सन्दर्भ मे यह प्रतीत होता है कि ईश्वर का ज्ञान नित्य है।[१६१] केशवमिश्र ने तर्कभाषा में वेद-प्रामाण्य के प्रसङ्ग में वेदों को परम आप्त महेश्वर की कृति बतलाया है।[१६२]

विश्वनाथ न्यायपञ्चानन ने[१६३] न्यायकारिकावली तथा मुक्तावली टीका में वाक्यार्थज्ञान में आसत्ति, योग्यता तथा तात्पर्य को कारण माना है। वेदार्थ में किसका तात्पर्य ज्ञान कारण होता है? यह बतलाते हुए उन्होंने कहा है कि वेद में भी तात्पर्य ज्ञान के लिये ईश्वर का अनुमान किया जाता है। यह नहीं कहा जा सकता है कि वहाँ अध्यापक का तात्पर्य-ज्ञान कारण होगा; क्योंकि सृष्टि के आदि में अध्यापक नहीं होते। यह ठीक नहीं कि प्रलय ही नहीं होता तो फिर सृष्टि का आदि कहाँ? क्योंकि प्रलय का शास्त्रों में प्रतिपादन किया गया है।[१६४] इससे विदित होता है कि वेद ईश्वर-प्रणीत हैं वेदों के वाक्यार्थ-ज्ञान में ईश्वर का तात्पर्य ज्ञान कारण हुआ करता है। न्यायसिद्धान्तमुक्तावली की 'रामरुद्री' टीका में ईश्वर को नित्य ज्ञान, इच्छा और कृति वाला भी बतलाया गया है।[१६५]

---

१५८. द्र०, तत्त्वचिन्तामणि (मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा, १९५७), पृ० १९२-१९९।

१५९. एवं प्रमायाः गुणजन्यत्वेन वेदेऽपि प्रमा वाक्यार्थयथार्थज्ञानगुणजन्येति तदाश्रयेश्वरसिद्धिः। वही, पृ० १९२।

१६०. द्र०, वही, पृ० १९३।

१६१. द्र०, अनुमानचिन्तामणि (कलकत्ता, १८७५), ईश्वरवाद, पृ० १२।

१६२. द्र०, वेदे तु परमाप्तश्रीमहेश्वरेण कृतं सर्वमेव वाक्यं प्रमाणम्, सर्वस्यैवाप्तवाक्यत्वात्। तर्कभाषा (साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७३), पृ० १३४।

१६३. न्यायकारिकावली तथा मुक्तावली (चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफ़िस, वाराणसी, १९७१)।

१६४. इत्थञ्च वेदस्थलेऽपि तात्पर्यज्ञानार्थमीश्वरः कल्प्यते। न च तत्राऽध्यापकतात्पर्यज्ञानं कारण-मिति वाच्यम्। सर्गादावध्यापकाभावात्। न च प्रलय एव नाऽस्ति, कुत्र सर्गादिरिति वाच्यम्। प्रलयस्याऽऽगमेषु प्रतिपाद्यत्वात्। वही, पृ० ३१६।

१६५. नित्यज्ञानेच्छाकृतिमानेवेश्वरः सकर्तृकत्वानुमानेन साधनीयः। रामरुद्र भट्टाचार्य, रामरुद्री-न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (चौखम्वा-संस्कृत सीरीज आफ़िस, वाराणसी-१, १९७२), पृ० २१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार न्यायवैशेषिक के ग्रन्थों में वेद को नित्य नहीं माना गया। तदनुसार वेद ईश्वर-प्रणीत हैं। प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर के द्वारा उनकी रचना की जाती है। अतः वे पौरुषेय हैं। परम पुरुष परमेश्वर की कृति हैं। फिर भी यहाँ यह स्पष्ट नहीं है कि प्रत्येक सर्ग के आदि में वेद की पूर्व सर्ग के समान ही रचना होती है या भिन्न प्रकार से। यह विषय विचारणीय ही है।

३. सांख्य-योग में वेद-नित्यता

(क) सांख्यसूत्र तथा उसकी व्याख्याएँ

सांख्यसूत्रों में अनेक बार वेद[१६६] तथा श्रुति आदि[१६७] शब्दों का प्रयोग किया गया है। यहाँ श्रुतितः (५.१), श्रुतिविरोधः (१.५४,१५४; ६.५१) इत्यादि शब्दों का भी प्रयोग मिलता है। किन्तु किसी वेद-विशेष का नामोल्लेख यहाँ नहीं किया गया, न ही वेदों की संख्या आदि के विषय में चर्चा की गई है। प्रथमतः सांख्यदर्शन के शब्द-प्रमाण के लक्षण से ही इसके वेदनित्यता-विषयक मत का ज्ञान होता है। यहाँ 'आप्तोपदेशः शब्दः'[१६८] यह शब्द प्रमाण का लक्षण किया गया है। यद्यपि सूत्र को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि यह लक्षण न्यायदर्शन के समान ही है तथापि व्याख्याओं को देखकर यह निश्चित होता है कि सांख्य की दृष्टि से शब्द प्रमाण का स्वरूप भिन्न ही है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए अनिरुद्ध कहते हैं—आप्त का अर्थ है युक्त, यह नहीं कि आप्त के द्वारा किया गया, क्योंकि वेद अपौरुषेय है।[१६९] विज्ञानभिक्षु ने इसका अर्थ किया है—यहाँ आप्ति का अर्थ है योग्यता; क्योंकि वेद अपौरुषेय है, यह पञ्चम अध्याय में कहा जायेगा। योग्य-शब्द, उससे उत्पन्न ज्ञान शब्द नामक प्रमाण है, यह अर्थ है। इसका फल (प्रमा) है, पुरुष को होने वाला बोध।[१७०]

सांख्य के पञ्चम अध्याय में वेदों की अपौरुषेयता और अनित्यता का निरूपण किया गया है। यहाँ दो प्रसङ्गों में अपौरुषेयत्व को सिद्ध के समान

---

१६६. द्र०, सांख्यदर्शन-प्रवचनभाष्य (भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९७७), ५.४०, ४१, ४५ इत्यादि।

१६७. द्र०, वही, १.५,७७,८१; २.२०,२४,३१; ३.१४,१५,८०; ५.१५,४५,७०,८३,८४,८७, ११२,१२४; ६.१०,१७,५८,५९ इत्यादि।

१६८. द्र०, वही, १.१०१।

१६९. आप्तो युक्तः, न त्वाप्तेन कृतः, अपौरुषेयत्वाद् वेदस्य। अनिरुद्धवृत्ति (प्राच्य भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, १९६४), सांख्यसूत्र, १.१०१।

१७०. द्र०, सांख्यदर्शन-प्रवचनभाष्य, १.१०१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानकर हेतु रूप में प्रस्तुत किया गया है। प्रथमतः प्रसङ्ग यह है कि शब्द वाचक है और अर्थ वाच्य है, इस सम्बन्ध की सिद्धि तीन हेतुओं से होती है एक आप्तोपदेश से, दूसरे वृद्धव्यवहार से और तीसरे प्रसिद्ध शब्द के सामानाधिकरण्य से (अथवा सान्निध्य से)। वेद में इन तीनों हेतुओं से वाच्य-वाचक सम्बन्ध का ज्ञान नहीं हो सकता; क्योंकि वेद का प्रतिपाद्य अर्थ अतीन्द्रिय है।[१७१] अतः लोक में शब्दार्थ—सम्बन्ध का ज्ञान हो जाने पर वेद में शब्दों का अर्थ ज्ञात हो जाता है।[१७२]

द्वितीय अवसर पर वेद-नित्यता का निराकरण करते हुए कहा गया है—अपौरुषेय होने से वेद नित्य नहीं हो सकता, अङ्कुर आदि के समान।[१७३] इस सन्दर्भ में शङ्का-समाधान आदि करते हुए पौरुषेयता कि वा अपौरुषेयता का स्वरूप भी स्पष्ट किया गया है। पूर्वपक्षी की शङ्का यह है कि अङ्कुर आदि को भी कार्य होने से पौरुषेय ही मान लिया जायेगा। इसका समाधान करते हुए कहा गया है—यदि अङ्कुर आदि को पौरुषेय माना जायेगा तो दृष्ट का बाध होने लगेगा।[१७४] लोक में यह व्याप्ति देखी जाती है कि जो पौरुषेय वस्तु है वह शरीर से उत्पन्न होती है उसका अङ्कुर आदि में बाध होता है, वे तो किसी शरीरधारी ने नहीं बनाए।[१७५]

इसी प्रसङ्ग में पौरुषेयता का स्वरूप दिखलाते हुए वेदों की अपौरुषेयता का निरूपण किया गया है। भाव यह है—जिस वस्तु की उत्पत्ति न देखने पर भी उसमें दृष्ट वस्तु के समान ही यह बुद्धिपूर्वक बनाई गई है, इस प्रकार की प्रतीति हुआ करती है; वही वस्तु पौरुषेय कहलाती है।[१७६] इसकी विशद व्याख्या करते हुए प्रवचन भाष्य में कहा गया है—अभिप्राय यह है कि पुरुष द्वारा उच्चरित होने मात्र से (कोई वाक्य) पौरुषेय नहीं होता; क्योंकि सुषुप्तिकालीन श्वास और प्रश्वास को पौरुषेय नहीं कहा जाता। पौरुषेय वह कहलाता है, जिसकी पुरुष द्वारा बुद्धिपूर्वक उत्पत्ति की जाती है। वेद तो निःश्वास के समान अदृष्ट

---

१७१. न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद्वेदस्य तदर्थस्यातीन्द्रियत्वात्। वही, ५.४१।

१७२. लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः। वही, ५. ४०।

१७३. नापौरुषेयत्वात् नित्यत्वम् अङ्कुरादिवत्। वही, ५.४८।

१७४. तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः। वही, ५.४९।

१७५. द्र०, प्रवचनभाष्य, वही, ५.४९।

१७६. द्र०, यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम्। वही, ५.५० तथा प्रवचनभाष्य।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के निमित्त से ही स्वयम्भू से स्वयं उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये वे पौरुषेय नहीं है। श्रुति भी है—'तस्यैतस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यद् ऋग्वेदः' (बृहदराण्यक० २.४.१०; ४.५.११)।[१७७]

इस प्रकार वेद की पौरुषेयता का निराकरण करते हुए अनुमान द्वारा वेद की अपौरुषेयता सिद्ध की गई है—वेद पौरुषेय नहीं हैं; क्योंकि उनके कर्ता पुरुष का अभाव है।[१७८] यहाँ प्रवचन भाष्य में केवल इतना कहा गया है—ईश्वर-प्रतिषेधादिति शेषः[१७९] अर्थात् ईश्वर का प्रतिषेध कर दिया गया है, यह वाक्य शेष है। यहाँ शङ्का हो सकती है कि ईश्वर से भिन्न कोई और पुरुष वेद का कर्ता होगा। इसके उत्तर में कहा गया है मुक्त और अमुक्त (दोनों) के योग्य न होने से वेद का कोई कर्ता नहीं है।[१८०] भाव यह है कि मुक्त पुरुष शरीर रहित होने से और अमुक्त पुरुष अल्पज्ञ होने से वेद का कर्ता नहीं हो सकता। इस कथन से यह प्रतीत होता है कि प्रवचन भाष्य के अनुसार न्यायवैशेषिक के समान किसी ने बुद्धिपूर्वक वेदों की रचना नहीं की, सांख्य में सर्वज्ञ ईश्वर और उसके द्वारा वेदों की रचना का प्रतिषेध किया गया है। साथ ही यहाँ मीमांसक के समान वेद को नित्य भी नहीं माना गया। सूत्रकार कहते हैं—वेदों का नित्य होना नहीं बनता; क्योंकि उनका कार्य होना सुना जाता है।[१८१]

उपर्युक्त विवेचन से यह प्रतीत होता है कि वेद अपौरुषेय हैं - किसी के द्वारा बुद्धिपूर्वक इनकी रचना नहीं की गई, अपितु ये स्वयम्भू के निःश्वास के समान हैं। यह अन्वेषणीय है कि स्वयम्भू से विज्ञानभिक्षु का क्या तात्पर्य है। अपौरुषेय होते हुए भी वेद अनित्य हैं। कैसे ? सांख्य में विशेष आनुपूर्वी से युक्त वर्णसमुदाय ही शब्द हैं, यहाँ स्फोटरूप नित्य शब्द को नहीं माना जाता।[१८२] वर्णसमुदायरूप जो शब्द है, वह अनित्य है।[१८३] इस प्रकार वर्णरूप वेदों के शब्द नित्य नहीं हैं और वेद अनित्य हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि फिर वेद को नित्य क्यों कहा जाता है। इसका उत्तर विज्ञानभिक्षु ने इस प्रकार दिया है—वेद-

---

१७७. द्र०, प्रवचनभाष्य, वही, ५.५०।

१७८. न पौरुषेयत्वं, तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात्। वही, ५.४६।

१७९. प्रवचनभाष्य, वही, ५.४६।

१८०. मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात्। वही, ५.४७।

१८१. न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः। वही, ५.४५।

१८२. प्रतीत्यप्रतीतिभ्यां न स्फोटात्मकः शब्दः। वही, ५.५७ तथा प्रवचन भाष्य।

१८३. न शब्दनित्यत्वं कार्यताप्रतीतेः। वही, ५.५८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यता को बतलाने वाले वाक्य तो समान आनुपूर्वी के प्रवाह का उच्छेद नहीं होता, यह दिखलाते हैं।[१८४] भाव यह है कि वर्णों के अनित्य होने पर भी विशेष वर्णानुपूर्वी वाले जो वेदों के शब्द हैं उनका प्रवाह सदा समान रूप से ही चलता रहता है। इसीलिये वेदों को नित्य कहा जाता है। अद्वैतवेदान्त के वेदनित्यताविषयक मन्तव्य का निरूपण करते हुए इसका विशेष विवेचन किया जायेगा।

(ख) सांख्यकारिका तथा उसकी टीकाएं

सांख्यकारिका में एक स्थल पर 'आनुश्रविक' शब्द का प्रयोग मिलता है।[१८५] आनुश्रविक शब्द का अर्थ है—वैदिककर्मकलाप। प्रमाणों का निरूपण करते हुए सांख्यकारिका में जो तीन प्रमाणों का उल्लेख किया गया है उनमें शब्द प्रमाण के लिये 'आप्तवचन' शब्द का प्रयोग किया गया है।[१८६] आप्तवचन का लक्षण करते हुए कहा गया है आप्तश्रुतिराप्तवचनं तु' यहाँ आप्तश्रुति शब्द का क्या तात्पर्य है? यह स्पष्ट नहीं। टीकाकारों के आधार पर इस शब्द का विश्लेषण करने से ही सांख्यकारिका के वेदनित्यता आदि मतों के विषय में निश्चय करना होगा।

आनुश्रविक शब्द की व्याख्या के प्रसङ्ग में भी वेदोत्पत्ति आदि की ओर किन्हीं विद्वानों ने सङ्केत किया है। युक्तिदीपिका नामक सांख्यकारिका की टीका में कहा गया है अनुश्रव में होने वाला आनुश्रविक कहलाता है।[१८७] अनुश्रव किसे कहते हैं? इसके उत्तर में टीकाकार कहते हैं—मन्त्र ब्राह्मण अथवा परम्परा से सुने जाते हुए (अनुश्रूयमाण) जिस प्राचीन वचन को आप प्रमाण मानते हैं।[१८८] आगे टीकाकार ने एक अन्य वचन द्वारा अपने कथन का समर्थन किया है—'वेदवेदाङ्गतर्केषु वेदसंज्ञा निरुच्यते'[१८९] (वेद-वेदाङ्ग तथा

---

१८४. वेदनित्यतावाक्यानि च सजातीयानुपूर्वीप्रवाहानुच्छेदपराणि। प्रवचनभाष्य, ५.४५।

१८५. दृष्टवद् आनुश्रविकः। सांख्यकारिका, का० २।

१८६. दृष्टमनुमानमाप्तवचनञ्च। वही, का० ४।

१८७. अनुश्रवे भव आनुश्रविकः। युक्तिदीपिका (मोतीलाल वनारसीदास, वाराणसी, १९७०), पृ० १७। साख्यकारिका, का० २।

१८८. मन्त्रब्राह्मणं यावद्वा पुरातनमनुश्रूयमाणं प्रामाण्येनाभ्युपगम्यते तत्रभवद्भिः। वही, का० २, पृ० १८।

१८९. वही, का० २, पृ० १८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तर्कों की वेदसंज्ञा कही जाती है)। इस विवेचन से यह विदित होता है कि टीकाकार की दृष्टि में वेद-संज्ञा के विषय में दो मत हैं—एक तो यह कि मन्त्र तथा ब्राह्मण को वेद कहते हैं और दूसरा यह कि वेद, वेदाङ्ग तथा तर्क सभी को वेद कहते हैं। इस प्रकार का मत-भेद मध्यकालीन वाङ्मय में दृष्टिगोचर होता है, यह ऊपर भी दिखलाया जा चुका है। आनुश्रविक शब्द की व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र लिखते हैं—गुरुपाठ से सुना जाता है इसलिये अनुश्रव वेद है। अभिप्राय यह है कि (वेद) गुरुद्वारा सुना ही जाता है किसी के द्वारा रचा नहीं जाता। उसमें होने वाला अर्थात् प्राप्त या ज्ञात होने वाला आनुश्रविक कहलाता है।[१९०] वाचस्पति मिश्र की इस व्याख्या से यह विदित होता है कि वेद की किसी ने (बुद्धिपूर्वक) रचना नहीं की अपितु यह गुरुपरम्परा से इसी प्रकार सुना जाता रहा है।

कारिका में आप्तवचन का जो लक्षण किया गया है—आप्तश्रुति; इसका अभिप्राय सांख्यकारिका के व्याख्याकारों की दृष्टि में न्याय-परम्परा से भिन्न ही है। माठर कहते हैं—रागद्वेष आदि से रहित ब्रह्मा-सनत्कुमार इत्यादि आप्त हैं, श्रुति का अर्थ है वेद। उन दोनों द्वारा उपदिष्ट अर्थात् ऐसा है, इस प्रकार श्रद्धा के योग्य वचन आप्तवचन है।[१९१] यहां दूसरे स्थल पर कहा गया है—आप्त अर्थात् ब्रह्मा आदि आचार्य, श्रुति अर्थात् वेद ये दोनों ही आप्तवचन कहलाते हैं।[१९२] इस कथन से केवल इतना प्रतीत होता है कि श्रुति या वेद आप्तों के वचन से भिन्न हैं। किन्तु यहां यह विदित नहीं होता कि ये किसी की रचना हैं या नित्य हैं।

युक्तिदीपिका में 'आप्तश्रुतिः' का दो प्रकार से विग्रह किया गया है। एक 'आप्तेभ्यः श्रुतिः=आप्तश्रुतिः' और दूसरा 'आप्ता चाऽसौ श्रुतिः=आप्तश्रुतिः'। यहाँ आप्त शब्द श्रुतिः का विशेषण है। आप्ता का अर्थ है—रागादि से रहित

---

१९०. गुरुपाठादनुश्रूयते इत्यनुश्रवो वेदः। एतदुक्तं भवति-श्रूयते एव परं न केनापि क्रियत इति। तत्र भव आनुश्रविकः, तत्र प्राप्तो ज्ञात इति यावत्। सांख्यतत्त्वकौमुदी (साहित्यभण्डार, मेरठ), का० २।

१९१. आप्ता रागद्वेषादिरहिता ब्रह्मसनत्कुमारादयः, श्रुतिर्वेदः, ताभ्याम् उपदिष्टं तथेपि श्रद्धेयम् आप्तवचनम्। माठरवृत्ति (सांख्यकारिका माठरवृत्ति सहिता जयमङ्गलाटीकोपेता, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७०), का० ४, पृ० ८।

१९२. द्र०, वही, का० ५, पृ० १०।

१९३. आप्ता नाम रागादिवियुक्तस्यागृह्यमाणकारणपदार्था व्याहृतिः। युक्तिदीपिका, का० ५, पृ० ४६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की ऐसी उक्ति जिसके कारण का ग्रहण न हो तथा जो दूसरों के हित के लिये हो।[१९३] इस (दूसरे) अर्थ में 'आप्तश्रुतिः' शब्द से अपौरुषेय वेदवाक्य का प्रतिपादन किया गया है जो किसी पुरुष के द्वारा बुद्धिपूर्वक नहीं रचा गया।[१९४] इस कथन से यह प्रतीत होता है कि वेद अपौरुषेय है। किसी पुरुष द्वारा बुद्धिपूर्वक नहीं रचा गया।

गौडपादभाष्य में भी 'आप्तश्रुतिः' शब्द में 'आप्ताश्च श्रुतिश्च=आप्तश्रुतिः' यही विग्रह किया गया है और श्रुति का अर्थ वेद किया गया है।[१९५] जयमङ्गला टीका में 'आप्तश्रुति', शब्द का कुछ भिन्न प्रकार से विग्रह तथा अर्थ किया गया है, वह है—आप्तों द्वारा श्रुति-परम्परा से आई हुई श्रुतिः।[१९६] यहाँ आप्त शब्द का अर्थ दोष रहित (क्षीणदोषाः) किया गया है। इस प्रकार आप्तों द्वारा परम्परा से आई हुई श्रुति ही आप्तश्रुति है।

वाचस्पतिमिश्र ने बतलाया है—आप्त का अर्थ है प्राप्त अर्थात् युक्त। जो आप्त भी है और श्रुति भी वह आप्तश्रुतिः कही गई है। श्रुति का अर्थ है वाक्य से उत्पन्न होने वाला वाक्यार्थ ज्ञान।[१९७] उन्होंने भी कहा है कि अपौरुषेय वेदवाक्यों से उत्पन्न होने के कारण सब दोषों की आशङ्का से मुक्त रहते हुए वह श्रुति युक्त होती है।[१९८] वाचस्पतिमिश्र यह भी बतलाते हैं—आदि विद्वान् कपिल को कल्प के आरम्भ में पहले कल्पों में अधीत श्रुतियों का स्मरण उसी प्रकार सम्भव है जिस प्रकार सोकर उठे हुए व्यक्तियों को पहले दिन जाने गये अर्थों का अगले दिन स्मरण हो जाता है। जैसा कि 'आवट्य-जैगीषव्य-संवाद' में भगवान् जैगीषव्य ने 'दस महा कल्पों में घूमते हुए मैंने इत्यादि' सन्दर्भ के द्वारा अपने दस महाकल्पों में होने वाले जन्म का स्मरण बतलाया है।[१९९] वाचस्पति

---

१९४. आप्तश्रुतिग्रहणेनैव प्रतिपादयति अपुरुषबुद्धिपूर्वक आम्नायः। वही, का० ५, पृ० ४७।

१९५. द्र०. गौडपादभाष्य सहित, सांख्यकारिका (ऑरियन्टल बुक एजेन्सी, पूना, १९३३), का० ५।

१९६. आप्तेभ्यो या श्रुतिपरम्परया श्रुतिरागता तदाप्तवचनम्। जयमङ्गला, का० ५, पृ० ७१।

१९७. आप्ता प्राप्ता युक्तेति यावत्। आप्ता चासौ श्रुतिश्चेति आप्तश्रुतिः। श्रुतिः—वाक्यजनितं वाक्यार्थज्ञानम्। सांख्यतत्त्वकौमुदी, का० ५।

१९८. तत्…अपौरुषेयवेदवाक्यजनितत्वेन सकलदोषाशङ्काविनिर्मुक्तेयुक्ता भवति। वही, का० ५।

१९९. द्र०, वही, का० ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिश्र के इस कथन से यह विदित होता है कि वेद अपौरुषेय है; किन्तु प्रत्येक सर्ग के आदि में उसका पूर्वसर्ग के समान ही स्मरण कर लिया जाता है और फिर वह गुरु-परम्परा से निरन्तर चलता रहता है। फलतः वेद प्रवाह से नित्य है यही सांख्य को अभिमत है।

(ग) पातञ्जल योग-सम्प्रदाय

योगसूत्र में शब्द प्रमाण का आगम शब्द से उल्लेख किया गया है।[२००] योगभाष्य में इसका अर्थ इस प्रकार किया गया है—आप्त के द्वारा साक्षात् देखे गये या अनुमान द्वारा जाने गये पदार्थ का दूसरों को बोध कराने के लिये उपदेश किया जाता है, उस उपदेश से उसके अर्थ के विषय में जो श्रोता को बुद्धिवृत्ति (ज्ञान) होती है वही आगम है।[२०१] आगे योगभाष्य में कहा गया गया है कि जिस अर्थ का वक्ता श्रद्धा के योग्य नहीं होता, विना देखे और अनुमान किये अर्थ का कथन करता है वह आगम प्रमाण नहीं होता। इस पर शङ्का होती है कि मनु आदि का वचन भी प्रमाण न होगा। इसके उत्तर में योगभाष्य में कहा गया है—यदि मूल वक्ता देखे और अनुमान किये अर्थ को कहने वाला है तो वह वचन भ्रान्ति रहित ही होगा।[२०२] इस भाष्य की व्याख्या में वाचस्पतिमिश्र ने कहा है—वहाँ मूल वक्ता ईश्वर है, जो दृष्ट और अनुमित अर्थ का उपदेष्टा है।[२०३] वाचस्पतिमिश्र के कथन से यह स्पष्ट है कि वेद ईश्वरप्रणीत है।

ईश्वरकृत होने से शास्त्र प्रमाण है, इस मन्तव्य की ओर योगभाष्य में भी सङ्केत किया गया है। प्रश्न यह है कि जो प्रकृष्ट सत्त्व के ग्रहण से ईश्वर का शाश्वतिक उत्कर्ष है उसमें कोई प्रमाण है या नहीं, इसके उत्तर में कहा गया है कि इसमें शास्त्र प्रमाण है। फिर प्रश्न होता है कि शास्त्र में क्या प्रमाण है? तो उत्तर दिया गया है कि शास्त्र में प्रकृष्टसत्त्व ही प्रमाण है।[२०४] ईश्वर के

---

२००. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि। योगसूत्र (आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली, ११७५), १.७।

२०१. आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वा अर्थः परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देन उपदिश्यते, शब्दात् तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः। योगभाष्य, वही, १.७।

२०२. मूलवक्तारि तु दृष्टानुमितार्थे निर्विप्लवः स्यात्। वही, १.७।

२०३. मूलवक्ता हि तत्रेश्वरो दृष्टानुमितार्थं इत्यर्थः। तत्त्ववैशारदी, योगसूत्र, १.७।

२०४. द्र०, योगभाष्य, १.२४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्त्व में विद्यमान शास्त्र तथा उत्कर्ष का अनादि सम्बन्ध है।[२०५] योगभाष्य के इस विवेचन से विदित होता है कि ईश्वर के सामर्थ्य से उत्पन्न होने के कारण शास्त्र प्रमाण है।

योगभाष्य में ईश्वर को सर्वज्ञ सिद्ध करते हुए[२०६] यह भी कहा गया है कि वह ईश्वर प्राणियों पर दया करके कल्प, प्रलय और महाप्रलय में संसारी पुरुषों का उद्धार करता है।[२०७] इससे यह सिद्ध होता है कि प्रत्येक सर्ग के आदि में ईश्वर वेद का उपदेश किया करता है। यहां भाष्य में पञ्चशिख का वचन उद्धृत करते हुए कहा गया है कि आदिविद्वान् परमऋषि ने आसुरि के लिए तन्त्र का उपदेश किया। इसकी टीका में वाचस्पतिमिश्र कहते हैं कि कपिल को भी महेश्वर के अनुग्रह से ही ज्ञान की प्राप्ति सुनी जाती है।[२०८] इस प्रकार वाचस्पतिमिश्र के अनुसार यहां ईश्वर को ही वेद का प्रणेता माना गया है।

पञ्चशिख के उपर्युक्त वचन में जो आदि विद्वान् (परमर्षि) शब्द आया है वहां सांख्य की दृष्टि में कपिल मुनि अर्थ है। वाचस्पतिमिश्र कहते हैं कि कपिल विष्णु के अवतार–विशेष के रूप में प्रसिद्ध हैं। स्वयम्भू हिरण्यगर्भ हैं उनको भी सांख्य-योग की प्राप्ति सुनी जाती है वही ईश्वर आदि विद्वान् है, कपिल है, विष्णु है, स्वयम्भू है यह अभिप्राय है। स्वयम्भू के मतानुयायियों अर्थात् योगानुयायियों की दृष्टि से तो यहां ईश्वर का ही उल्लेख किया गया है।[२०९]

विज्ञानभिक्षु ने यहां आदि विद्वान् का अर्थ स्वयम्भू किया है जिसने सृष्टि के आदि में प्रकट होकर या कहिये विष्णु ने कपिल नामक परमर्षि होकर कृपा करके आसुरि के प्रति तत्त्व का प्रवचन किया।[२१०]

इस प्रकार की व्याख्याओं में पुराणों का प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तुतः यहां ईश्वर का ही शास्त्र के उपदेष्टा के रूप में स्मरण किया गया है। यह दिखाना ही व्याख्याकारों का अभिप्राय प्रतीत होता है।

---

२०५. एतयोः शास्त्रोत्कर्षयोरीश्वरसत्त्वे वर्तमानयोरनादिः सम्बन्धः। वही, १.२४।

२०६. द्र०, वही, १.२५।

२०७. द्र०, तस्यात्मानुग्रहाभावेऽपि भूतानुग्रहः प्रयोजनम्। ज्ञानधर्मोपदेशेन कल्पप्रलयमहाप्रलयेषु संसारिणः पुरुषानुद्धरिष्यामीति। वही, १.२५।

२०८. तत्त्ववैशारदी, वही, १.२५।
तत्त्ववैशारदी में यहां और भी विश्लेषण किया गया है।

२०९. द्र०, वही, १.२५।

२१०. विज्ञानभिक्षु, योगवार्त्तिक (भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १९७१), १.२५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. मीमांसा-सम्प्रदाय में वेद-नित्यता

(क) मीमांसा-सूत्र तथा शावर भाष्य :

मीमांसा-सूत्र में वेदसंज्ञा, वेदनित्यता तथा वेदों की अपौरुषेयता आदि पर विस्तार से विचार किया गया है। एक बात अवश्य है कि अत्यन्त सक्षिप्त होने के कारण सूत्रकार का अभिप्राय वहाँ उतना स्पष्ट न हो सका है जितना परवर्ती व्याख्याओं में। यहाँ 'श्रुति' (२.१.२४) 'वेद', 'आम्नाय' (१.२.१) आदि शब्दों से वेद का निर्देश किया गया है।[२११] मन्त्र, ब्राह्मण आदि शब्दों का भी प्रयोग किया किया गया है।[२१२] ऋग्, यजुः, और साम का भी अनेक बार प्रयोग मिलता है।[२१३] मन्त्र, ब्राह्मण तथा ऋक् आदि के लक्षण भी दिये गये हैं।

ऋक् का लक्षण करते हुए यहाँ बतलाया गया है—जहाँ अर्थ के अनुसार पादों की व्यवस्था होती है वह ऋक् (ऋचा) होती है;[२१४] जैसे—'अग्निमीडे' इत्यादि। गेयात्मक मन्त्रवाक्यों की सामसंज्ञा है।[२१५] ऋक् और साम मन्त्रों से बचे हुए मन्त्रों के लिये यजुः शब्द का प्रयोग होता है।[२१६] इस प्रकार ये तीन प्रकार के मन्त्रों के लक्षण यहाँ कहे गये हैं। चारों वेदों में ये तीन प्रकार के मन्त्र विद्यमान हैं। जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है, किसी प्रकार के मन्त्रों के आधिक्य से ही ऋग्वेदादि नाम प्रसिद्ध हैं।

मीमांसासूत्रों में सभी शब्दों की नित्यता सिद्ध की गई है। वहाँ कहा गया है—शब्द नित्य है; (१) क्योंकि उसका उच्चारण दूसरों के लिए किया जाता है।[२१७] (२) गोशब्द का उच्चारण करने पर सब गोओं का एक साथ ज्ञान हुआ करता है।[२१८] (३) व्यवहार में यह कहा जाता है कि आठ बार गोशब्द का उच्चारण

---

२११. मीमांसादर्शन (आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि, पूना, १९७६), २.१.१६।

२१२. (क) तच्चोदकेषु मन्त्राख्या। वही, २.१.३२। इसी प्रकार २.१.३०, ३१ इत्यादि।
(ख) शेषे ब्राह्मणशब्दः। वही, २.१.३३।

२१३. (क) वही, २.१.३५,४५।
(ख) वही, २.१.३७,४०।
(ग) वही, २.१.३६।

२१४. तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था। वही. २.१.३५।

२१५. गीतिषु सामाख्या। वही, २.१.३६।

२१६. शेषे यजुः शब्दः। वही, २.१.३७।

२१७. नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात्। वही, १.१.१८।

२१८. सर्वत्र यौगपद्यात्। वही, १.१.१९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, यह नहीं कि आठ गो शब्दों का उच्चारण किया। अतः शब्दों में संख्या नहीं होती।[२१९] (४) शब्द के उत्पादक कारणों की अपेक्षा नहीं होती, न ही यह अपेक्षा होती है कि इसके नष्ट होने पर ये पदार्थ शेष रहेंगे,[२२०] और (५) वाचा विरूपनित्यया (ऋग्वेद, ८.७५.६) इत्यादि सङ्केतों के उपलब्ध होने से भी शब्द नित्य है।[२२१] इसी प्रकार अन्य अनेक हेतुओं से यहां शब्द की नित्यता सिद्ध की गई है। वेद का स्वतः प्रामाण्य सिद्ध करते हुए यहां कहा गया है— 'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः' (१.१.५) अर्थात् शब्द का अर्थ के साथ नित्य सम्बन्ध है। इससे यह स्पष्ट ही है कि यहां शब्द रूप वेद नित्य ही है।

वेदों की नित्यता और अपौरुषेयता को सिद्ध करने के लिए मीमांसा-सूत्रों में अनेक युक्तियाँ भी दी गई हैं। पूर्वपक्षी की ओर से शङ्का है कि (१) वेद अर्वाचीन हैं[२२२] क्योंकि काठक, कालापक आदि पुरुष-विशेष के नाम से कहे जाते हैं। (२) वेद में अनित्य पुरुषों का दर्शन होता है।[२२३] इन आक्षेपों का उत्तर देते हुए कहा गया है कि (१) काठक आदि नाम प्रवचन के कारण होते हैं।[२२४] (२) जो अनित्य पुरुषों का वेद में दर्शन प्रतीत होता है वह तो शब्द की समानता मात्र है।[२२५] इस प्रकार मीमांसा-सूत्रों में संक्षेप से वेदों की नित्यता और अपौरुषेयता का निरूपण किया गया है। इनका कुछ अधिक स्पष्ट विवेचन शाबर भाष्य में मिलता है।

शाबर भाष्य में उपर्युक्त सूत्रों की व्याख्या करते हुए तथा अन्यत्र भी अनेक बार वेद आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। शबर स्वामी के विचार में वेदाध्ययनपूर्वक ही धर्म-जिज्ञासा की जाती है।[२२६] उन्होंने कई स्थलों पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वेद को अपौरुषेय बतलाया है। 'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'[२२७] के भाष्य में वे कहते हैं – पुरुष के वचन से होने वाला जो ज्ञान है वह

२१९. संख्याभावात्। वही, १.१.२०।

२२०. द्र०, अनपेक्षत्वात्। वही, १.१.२१।

२२१. लिङ्गदर्शनाच्च। वही, १.१.२३।

२२२. वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः। वही, १.१.२७।

२२३. अनित्यदर्शनाच्च। वही, १.१.२८।

२२४. आख्या प्रवचनात्। वही, १,१.३०।

२२५. परं तु श्रुतिसामान्यमात्रम्। वही, १.१.३१।

२२६. द्र०, शाबरभाष्य (आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावलि, पूना, १९७६) १.१.१।

२२७. वही, १.१.२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस वचन के विपरीत भी हो सकता है परन्तु वेदवचन के मिथ्या होने में कोई प्रमाण नहीं है।[२२८] उन्होंने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को भी नित्य तथा अपौरुषेय बतलाया है--'औत्पत्तिक इति नित्यं ब्रूमः' अर्थात् औत्पत्तिक शब्द का अर्थ है—नित्य, ऐसा हम कहते हैं। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध कभी वियुक्त न होने वाला (नित्य) है। उत्पन्न हुए शब्द और अर्थ का बाद में सम्बन्ध नहीं होता।[२२९] मीमांसा के कुछ सूत्रों की वृत्तिकार की दृष्टि से व्याख्या दिखलाते हुए उन्होने यह भी कह दिया है कि शब्द का अर्थ के साथ जो सम्बन्ध है वह अपौरुषेय है।[२३०] शब्द और अर्थ के सम्बन्ध की अपौरुषेयता सिद्ध करने के लिये उन्होंने अनेक युक्तियाँ दी हैं।[२३१] साथ ही उन्होंने शब्द की नित्यता भी सिद्ध की है।[२३२] इस प्रसङ्ग में उन्होंने कई बार 'नित्यः शब्दः' (१.१.१८, पृ० १०२), 'अतो नित्यः' (१.१.२२, पृ० १०६), 'तस्मादपि नित्यः' (१.१.१९, पृ० १०५), 'तस्मान्नित्यः शब्दः' (१.१.२३, पृ० ११०) इत्यादि कहा है।

मीमांसासूत्र में जो 'वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः' (१.१.२७) इत्यादि अधिकरण में वेदों की नित्यता और अपौरुषेयता सिद्ध की गई है वहाँ शाबर-भाष्य में भी उसका समर्थन किया गया है।

(ख) कुमारिल भट्ट

शाबर भाष्य के व्याख्याकारों में कुमारिल भट्ट का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मीमांसासूत्र के तर्कपाद (१.१) के भाष्य पर उनकी विस्तृत व्याख्या (श्लोक-वार्त्तिक) में वेद सम्बन्धी विविध विषयों का विशद विवेचन उपलब्ध होता है। वहाँ विरोधियों की युक्तियों का निराकरण करते हुए वेदों की नित्यता तथा अपौरुषेयता आदि का निरूपण किया गया है।

मीमांसक ने नित्य तथा अपौरुषेय होने से वेद की प्रामाणिकता सिद्ध की है अतः वेद नित्य हैं, वेद अपौरुषेय हैं यह सिद्ध करने का सतत प्रयास किया है।

---

२२८. विप्लवते हि खल्वपि कश्चित् पुरुषकृताद् वचनात् प्रत्ययः। न तु वेदवचनस्य मिथ्यात्वे किञ्चन प्रमाणमस्ति। वही, १.१.२।

२२९. अवियुक्तः शब्दार्थयोर्भावः सम्बन्धः नोत्पन्नयोः पश्चात् सम्बन्धः। वही, १.१.५।

२३०. अपौरुषेयः शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः। वही, १.१.५, पृ० ५०।

२३१. द्र०, वही, १.१.५, पृ० ६३-६६।

२३२. द्र०, वही, १.१.६-२३, पृ० ८७-११०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मीमांसासूत्र तथा शाबर भाष्य में जो शब्द-नित्यता की सिद्धि के लिये अधिकरण प्रस्तुत किया गया है उसके वार्तिक में कुमारिल कहते हैं—'तस्माद् वेदप्रामाण्यार्थं नित्यत्वमिह साध्यते'—इसलिये वेद की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये यहाँ नित्यता सिद्ध की जाती है।[233]

केवल शब्द ही नित्य नहीं, शब्द, अर्थ एवं शब्दार्थ-सम्बन्ध सभी नित्य हैं, यह 'औत्पत्तिकस्तु' (१.१.५) सूत्र में बतलाया गया है।[234] इस पर पूर्वपक्षी ने आक्षेप किये हैं जिनका श्लोकवार्त्तिक में विस्तार से परिहार किया गया है। किन्तु शब्द, अर्थ तथा शब्दार्थ-सम्बन्ध की नित्यता सिद्ध करने पर भी वेद की नित्यता तथा प्रामाणिकता सिद्ध नहीं हो सकती[235] अतः वाक्याधिकरण में वेद-वाक्यों की नित्यता सिद्ध की गई है।[236] इस अधिकरण, के अन्त में वेदों की नित्यता दिखलाई गई है। श्लोकवार्त्तिक में कहा गया है—पदों का सम्बन्ध किया नहीं जाता, इस आधार पर वाक्य नित्यता कही जा सकती है और इसी-न्याय से वेदों की कृतकता का भी परिहार हो जाता है।[237]

इस प्रकार पूर्वपक्ष के आक्षेपों का परिहार करके श्लोकवार्त्तिक में वेदों की नित्यता तथा अपौरुषेयता को सिद्ध करने के लिये प्रतिहेतु भी प्रस्तुत किया गया है—

वेदों का सभी अध्ययन गुरु से अध्ययन करके ही होता है (प्रतिज्ञा)
क्योंकि वह वेदाध्ययन कहलाता है (हेतु)।
आजकल के वेदाध्ययन के समान (उदाहरण)।[238]

यद्यपि इस हेतु से तो महाभारत आदि की भी नित्यता सिद्ध की जा सकती है तथापि वहाँ 'व्यास ने महाभारत की रचना की' इस प्रकार कर्ता के स्मरण से उस

---

२३३. श्लोकवार्त्तिक (तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १९७८), शब्दनित्यताधिकरण, श्लो० ७, पृ० ५१६।

२३४. (क) नित्यान् शब्दार्थसम्बन्धानाश्रित्योक्तेन हेतुना। वही, सम्बन्धाक्षेपवाद, श्लो० १, पृ० ३५३।
(ख) सम्बन्धोऽस्ति च नित्यश्चेत्युक्तमौत्पत्तिकादिना। वही, श्लो० ४, पृ० ३५३।

२३५. पदार्थपदसम्बन्धनित्यत्वे साधितेऽपि वः।
नैव वेदप्रमाणत्वं वाक्यार्थं प्रति सिध्यति॥ वही, वाक्याधिकरण, श्लो० १, पृ० ५९८।

२३६. वही, वाक्याधिकरण, पृ० ५९८-६६८।

२३७. सम्बन्धाकरणन्यायाद् वक्तव्या वाक्यनित्यता। वही, वाक्याधिकरण, श्लो० ३६५, पृ० ६६८।

२३८. वेदस्याध्ययनं सर्वं गुर्वध्ययनपूर्वकम्।
वेदाध्ययनवाच्यत्वाद् अधुनाध्ययनं यथा॥ वही, श्लो० ३६७, पृ० ६६८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यता का बाध हो जाता है।[२३९] किन्तु प्रश्न यह है कि वेद के भी तो कर्ता का स्मरण किया ही जाता है 'प्रजापतिः वेदानसृजत' यह सुना जाता है। इसके उत्तर में कहा गया है कि वह तो अर्थवादमात्र है; क्योंकि वेद के अध्येता परम्परा से कर्ता का स्मरण नहीं करते आये।[२४०] भाव यह है—यदि वेदों का कोई कर्ता होता तो उसके समकालीन पुरुषों द्वारा उसको प्रत्यक्षतः जाना जाता और उनके द्वारा दूसरों से कहा जाता फिर दूसरों के द्वारा अन्यों से इस प्रकार परम्परा से अध्येता-जन कर्ता का स्मरण किया करते, जैसे मनु आदि का स्मरण करते हैं; किन्तु स्मरण किया नहीं जाता। इसलिये यदि कहीं इस प्रकार का कोई वचन है तो वह अर्थवाद मात्र ही है।[२४१]

इस कथन से स्पष्ट होता है कि कर्ता का स्मरण न किया जाना (अस्मर्यमाणकर्तृकत्व) वेदों की नित्यता और अपौरुषेयता को सिद्ध करने के लिये प्रमुख हेतु दिया गया है। एक अन्य स्थल पर इस हेतु की साधकता इस प्रकार दिखलाई गई है—'गामानय' (गाय को लाओ) इत्यादि में सङ्केत करने वाले या व्यवहार करने वाले की प्रतीति चाहे न होती हो और वेद में चाहे कर्ता के स्मरण के विना ज्ञान मात्र हो भी जाये किन्तु अग्निहोत्र आदि का अनुष्ठान आदि जो व्यवहार है जो अदृष्ट अर्थ की सिद्धि के लिये किया जाता है अतः जिसमें एकमात्र वाक्य ही प्रमाण है वह तो 'किसी आप्त का यह वाक्य है' इस प्रकार के स्मरण के विना सम्भव नहीं है। अतः यहां वेदों के तथा पदों के सम्बन्ध के कर्ता का अवश्य ही स्मरण होना चाहिए; किन्तु उसका स्मरण नहीं किया जाता इसलिये अनुपलब्धि से उसका अभाव सिद्ध होता है। इस प्रकार वेदों की तथा पद-पदार्थ के सम्बन्ध की नित्यता सिद्ध होती है।[२४२]

अनेक प्रसङ्गों में वेदों की नित्यता तथा अपौरुषेयता की सिद्धि करते हुए भी मीमांसा में वेदनित्यता की सिद्धि के लिये एक अधिकरण है[२४३], जहाँ श्लोक-

---

२३९. भारतेऽपि भवेदेवं कर्तृस्मृत्या तु बाध्यते। वही, श्लो० ३६७, पृ० ६६८।

२४०. वेदेऽपि तत्स्मृतिर्या तु सार्थवादनिबन्धना।
पारम्पर्येण कर्तारं नाध्येतारः स्मरन्ति हि॥ वही, श्लो० ३६७-३६८, पृ० ६६८।

२४१. द्र०, वही, श्लो० ३६८, तथा न्यायरत्नाकर टीका।

२४२. दृष्टे भवतु मा वा भूत् कर्तृसम्प्रतिपन्नता।
वैदिको व्यवहारस्तु न कर्तृस्मरणादृते॥ वही, सम्बन्धाक्षेपपरिहार, श्लो० १३०-१३१ तथा न्यायरत्नाकर टीका, पृ० ४८०।

२४३. वेदनित्यताधिकरण, श्लोकवार्तिक, पृ० ६६९-६७२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वार्त्तिक में कुछ आक्षेपों का परिहार करते हुए वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता दिखलाई गई है। पूर्वपक्षी की शङ्का है वेद की शाखाओं की काठक आदि संज्ञा है, इससे प्रतीत होता है वेद पौरुषेय हैं। किञ्च, पदों से वाक्य-रचना किसी रचयिता के अभाव में नहीं हो सकती अतः वेदों का कोई कर्ता अवश्य मानना होगा। इसके अतिरिक्त, 'बबरः प्रावाहणिरकामयत' इत्यादि अनित्य के बोधक वेद-वाक्य देखे जाते हैं। अतः वेद की अनित्यता और पौरुषेयता सिद्ध होती है।[२४४]

इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि काठक आदि संज्ञा से वेद के कर्ता की सिद्धि नहीं होती, केवल 'कृते ग्रन्थे' ४.३.११६ (रचे गये ग्रन्थ में) के अर्थ में ही व्याकरण से काठक आदि नामों की व्याख्या नहीं की गई, अपितु 'तेन प्रोक्तम्' ४.३.१०१ (उसके द्वारा प्रवचन किया गया) इस अर्थ में भी काठक आदि नाम निष्पन्न होते हैं।[२४५] रचना और प्रवचन में अन्तर है। किसी वाक्य की रचना करने वाला स्वतन्त्र होता है; किन्तु प्रवचन करने वाला विद्यमान ग्रन्थ का ही प्रवचन करता है। अब शङ्का यह होती है कि प्रवचन तो साधारण कार्य है किसी भी शाखा का प्रवचन अनेक जन करते रहे हैं फिर किसी शाखा का काठक शाखा आदि नाम ही क्यों रख दिया गया। इसका समाधान करते हुए शाबर भाष्य में कहा गया था जिस शाखा का कठ ने ही विशेष प्रवचन किया वह काठक कहलाई। श्लोकवार्त्तिककार इसका अन्य भी समाधान करते हुए कहते हैं—अथवा विना किसी निमित्त के रूढि से ही ये किन्हीं शाखाओं के नाम हो गये।[२४६] और, साधारण वस्तुओं में भी किसी एक के नाम से व्यवहार देखा जाता है; जैसे किसी साधारण तीर्थ को ही 'अगस्त्यतीर्थ' या 'कुमारिलतीर्थ' कह दिया जाता है।[२४७] अथवा जैसे अनेक पुत्रों की माता किसी एक पुत्र के नाम से डित्य की माता कह दी जाती है उसी प्रकार यद्यपि किसी शाखा के अनेक प्रवचन–कर्त्ता हैं फिर भी उसे कठ आदि के नाम से कह दिया जाता है।[२४८]

---

२४४. द्र०, वही, वेदनित्यताधिकरण, श्लो० १-२, तथा टीका, पृ० ६६९-६७०।

२४५. द्र०, अन्यथाप्युपपन्नत्वादियं प्रवचनादिना।
न शक्ता कर्तृमूलाय, प्रोक्ते च स्मरणं स्मृतम्॥ वही, श्लो० ४ तथा टीका, पृ० ६७०।

२४६. कामं वा निर्निमित्तेयं शाखामेकां वदिष्यति। वही, श्लो० ६ तथा टीका, पृ० ६७०।

२४७. साधारणं च तीर्थादि केनचिद् व्यपदिश्यते। वही, श्लो० १० तथा टीका, पृ० ६७१।

२४८, द्र०, वही, श्लो० ८, ९ तथा टीका, पृ० ६७१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'जो बर्बरः प्रावाहणिः' इत्यादि कहकर वेद में अनित्य मनुष्यों के नाम दिखलाये गये हैं, उनका उत्तर सूत्र (परं तु श्रुतिसामान्यम्, १.१.३१) तथा शाबर भाष्य में दिया जा चुका है। वस्तुतः वहाँ किसी अनित्य मनुष्य का उल्लेख नहीं है। अपितु शब्दमात्र की समानता है। इस प्रकार कुमारिल भट्ट ने वेदों की नित्यता तथा अपौरुषेयता सिद्ध की है। फलतः वेद अनादि नित्य हैं इसलिये इस प्रकार का प्रश्न भी यहाँ नहीं किया जा सकता कि वेद की रचना किस प्रकार हुई।

(ग) पार्थसारथि मिश्र

पार्थसारथिमिश्र के वेद-नित्यता तथा वेदों की अपौरुषेयता सम्बन्धी मन्तव्यों का यथावसर श्लोकवार्त्तिक के प्रसङ्ग में निरूपण किया जा चुका है। फिर भी वे एक स्वतन्त्र लेखक हैं। उन्होंने शास्त्र-दीपिका[२४९] जैसे ग्रन्थ में संक्षेप में, किन्तु विशद रूप में वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता का विवेचन किया है। यहाँ प्रथम पाद के समस्त अर्थ का सङ्ग्रह करते हुए[२५०] औत्पत्तिकस्तु०[२५१] सूत्र की व्याख्या में वेद के आप्तोक्त होने का निषेध करके उसकी अपौरुषेयता सिद्ध की गई है। तदनुसार वेद मे तीन प्रकार से पुरुष के सम्बन्ध की शङ्का हो सकती हैं (१) पद और पदार्थ का सम्बन्ध करने के लिये, (२) वाक्य और वाक्यार्थ का सम्बन्ध करनेके लिये अथवा (३) महाभारत आदि के समान ग्रन्थ की रचना के लिये। किन्तु इन तीनों प्रकार से वेद में पुरुष का सम्बन्ध नहीं बनता; क्योंकि (१) यहाँ औत्पत्तिकस्तु० सूत्र से बतलाया गया है कि पद और पदार्थ का सम्बन्ध नित्य है, (२) वाक्यार्थ भी पदार्थ के आधार पर होता है, (३) वेद का कर्त्ता कोई पुरुष नहीं, वह अपौरुषेय, है यह भी सिद्ध किया जा रहा है।[२५२]

---

२४९. शास्त्रदीपिका (साधुवेला संस्कृत महाविद्यालय; सकरकन्द गली, वाराणसी, १९७७)।

२५०. द्र०, वही, पृ० २७ तथा आगे।

२५१; मीमांसासूत्र, १.१.५

२५२. त्रेधा ह्यत्र पुरुषानुप्रवेशः—पदपदार्थसम्बन्धद्वारेण, वाक्यवाक्यार्थसम्बन्धद्वारेण ग्रन्थस्यैव वा भारतादिवत् पौरुषेयत्वात्। न त्वेतत् त्रयमप्यस्ति—पदपदार्थ-सवन्धस्य नित्यत्वमनौत्पत्तिकशब्देनोक्तम्। वाक्यार्थस्य च पदार्थमूलत्वम्, वेदस्य चापौरुषेयत्वमुपरिष्टाद्वक्ष्यते। शास्त्रदीपिका, १.१.५, पृ० ७१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने कई स्थलों पर वेद-वाक्य को अपौरुषेय कहा है।[२५३] शब्द की नित्यता सिद्ध करके शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को नित्य सिद्ध किया है। यह भी बतलाया है कि जो पूर्वपक्षी कहते हैं, सर्ग के आदि में प्रजापति के द्वारा शब्द और अर्थ का सम्बन्ध बतलाया जाता है तथा वेदों की रचना की जाती है, यह भी युक्तियुक्त नहीं। कारण, इसमें कोई प्रमाण नहीं है।[२५४] इसी प्रकार जो यह स्वीकार करते हैं कि जगत् की सृष्टि, प्रलय होती है सर्ग के आदि में वेद के शब्दों से ही सब नाम और कर्म निश्चित कर दिये जाते हैं, अतः वेद के शब्द और अर्थ के सम्बन्ध भी नित्य हैं तथा प्रामाणिक हैं, उनके मत में भी वेद के अनित्य होने की आशङ्का हो सकती है।[२५५] कैसे? एक प्रजापति जो सम्प्रदाय का प्रवर्तक है वह वेद का कर्त्ता है या केवल सम्प्रदाय प्रवर्तक है यह शङ्का हो ही सकती है।

शब्द की नित्यता, सामान्य रूप अर्थ की नित्यता तथा शब्द-शब्दार्थ-सम्बन्ध की नित्यता सिद्ध करके पार्थसारथिमिश्र ने यह निर्धारित किया है कि पदार्थ ही वाक्यार्थ के बोधक होते हैं। अन्त में उन्होंने वेद-वाक्यों की अनित्यता और पौरुषेयता का निराकरण करके वेद की अपौरुषेयता सिद्ध की है।[२५६]

वे कहते हैं—सभी पुरुषों का अध्ययन दूसरों से अध्ययन करके ही होता है; क्योंकि सब जैसा गुरु से अध्ययन किया है वैसा ही अध्ययन करना चाहते हैं। स्वतन्त्र रूप से कोई भी वेदों का पहला अध्येता नहीं है जिसे कर्त्ता कहा जाये; इसलिये वेद अपौरुषेय हैं।[२५७] इस प्रकार पार्थसारथिमिश्र की प्रतिपादन शैली में अधिक स्पष्टता है जिसके कारण मीमांसा सम्प्रदाय में इनका विशेष महत्त्व है।

---

२५३. (क) अपौरुषेयं च वेदवाक्यम्। वही, पृ० १३४।
(ख) अपौरुषेयस्यापि वेदस्य सिद्धं प्रामाण्यम्। वही, पृ० १३६।

२५४. द्र०, वही, पृ० २१९।

२५५. द्र०, वही, पृ० २३७।

२५६. तस्मादपौरुषेयत्वाच्चोदनानां प्रमाणता। वही, १.१.२७-३२, पृ० ३३४।

२५७. सर्वपुंसामध्ययनान्तरपूर्वकम्, सर्वे हि यथैव गुरुणाधीतम्, तथैवाधिजिगांसन्ते न पुनः स्वातन्त्र्येण कश्चिदपि प्रथमोऽध्येता वेदानामस्ति, यः कर्ता स्याद्। तस्मादपौरुषेया वेदाः। वही, १.१,२७-३२, पृ० ३३३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(घ) प्रभाकर-सम्प्रदाय

शालिकनाथ को प्रभाकर का शिष्य माना जाता है। उन्होंने प्रभाकर के मन्तव्यों का प्रकरणपञ्चिका[२५८] में विशद विवेचन किया है। यहाँ भी अपौरुषेय होने से वेदवाक्यों की प्रामाणिकता सिद्ध की गई है।[२५९] यहाँ अपौरुषेयता को सिद्ध करने के लिये अनेक युक्तियाँ भी दी गई हैं।

एक प्रमुख युक्ति है— वृद्ध-व्यवहार की परम्परा के अनादि सिद्ध होने पर शब्द और अर्थ का वाच्य-वाचक-भाव सम्बन्ध अपौरुषेय सिद्ध होता है।[२६०] इस व्यवहार-परम्परा को अनादि सिद्ध करते हुए बतलाया गया है कि वृद्ध जन जो अपने काम से व्यवहार करते हैं उनके वाक्य को सुनकर बालक शब्द सुनने के पश्चात् होने वाली विशेष चेष्टा से यह अनुमान करता है कि इन्हीं शब्दों का यह विशिष्ट अर्थ है और उन शब्दों को वाचक तथा अर्थों को वाच्य समझ लेता है। वे वृद्ध भी जब बालक थे तो इसी प्रकार शब्दों का बोध उन्हें हुआ था और जिन वृद्धों से उन्हें शब्दों का बोध हुआ था उन्हें भी इसी प्रकार अन्यों से हुआ होगा। इस प्रकार सङ्केत करने वाले पुरुष के बिना ही शब्द और अर्थ का अनादि वृद्ध-व्यवहार से सम्बन्ध चला आ रहा है। इससे वृद्धव्यवहार-परम्परा की अनादिता सिद्ध होती है। इसीलिए सूत्रकार ने शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को औत्पत्तिक अर्थात् नित्य कहा है।[२६१]

वेदार्थविदों में अग्रगण्य भगवान् जैमिनि ने शब्द और अर्थ का सम्बन्ध अनादि ही माना है। उनका कथन है यद्यपि देवदत्त आदि शब्दों में पुरुष के सङ्केत के निमित्त से ही वाचकता सिद्ध होती है तथापि गो आदि शब्दों की सास्नादिमान् अर्थ में अनादि व्यवहार से ही शक्ति सिद्ध है। अतः शब्दार्थ-सम्बन्ध अपौरुषेय ही है।[२६२]

---

२५८. प्रकरणपञ्चिका (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६१)।

२५९. अपौरुषेये सम्बन्धे सिद्धे शब्दार्थयोर्द्वयोः।
प्रामाण्यं वेदवाक्यानामिति स प्रतिपाद्यते। वही, पृ० ३०१।

२६०. अनादौ हि वृद्धव्यवहारपरम्परायां सत्यां वृद्धव्यवहारसिद्धो वाच्यवाचकभावः शब्दार्थयोरपौरुषेयः प्रसिध्येत्। वही, पृ० ३०२।

२६१. औत्पत्तिकस्तु सम्बन्धश्शब्दस्यार्थेन सम्मतः।
वृद्धसंव्यवहारस्य प्रवाहानादिता यतः॥ वही, पृ० ३०४।

२६२, द्र०, वही, पृ० ३०५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदों की अपौरुषेयता को सिद्ध करने के लिये उन्होंने अन्य भी युक्तियाँ प्रस्तुत की हैं; जैसे—(१) वेदों की अपौरुषेयता कैसे सिद्ध होती है? कर्त्ता का स्मरण न होने से और कर्त्ता का अनुमान भी नहीं बन सकता; क्योंकि अन्य प्रमाण से न जाने गये विषय में पुरुष वाक्य-रचना नहीं कर सकते। (२) काठक आदि संज्ञाएँ भी वेदों के कर्त्ता की सिद्धि नहीं कर सकतीं; क्योंकि प्रवचन से भी वे संज्ञाएँ सिद्ध हो जाती हैं।

इस प्रकार शालिकनाथ ने शब्द, अर्थ और शब्दार्थसम्बन्ध की नित्यता सिद्ध करते हुए वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध की है।

(ङ) मानमेयोदय :

मानमेयोदय भाट्ट मीमांसा सम्प्रदाय का परवर्ती ग्रन्थ है। यहाँ कई प्रसङ्गों में वेद की अपौरुषेयता का उल्लेख किया गया है। वेद की प्रामाणिकता दिखलाते हुए कहा गया है—अपौरुषेय वेद में तो पुरुष के स्पर्श से होने वाले दोष की शङ्का भी नहीं की जा सकती; अतः वहाँ व्यभिचार दोष कैसे होगा?[२६३] नैयायिक के अभिमत ईश्वर का निराकरण करते हुए कहा गया है कि जगत् का अत्यन्त नाश मीमांसक नहीं मानते, क्योंकि अत्यन्त नाश होने पर तो वेद-मार्गों का प्रवाह ही भङ्ग होने लगेगा।[२६४] इस कथन से प्रकट होता है कि मीमांसा के मत में वेद अनादि तथा नित्य हैं।

इस पर नैयायिक का कथन है कि सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों का भी निर्माण कर देता है अतः वेद-सम्प्रदाय का नाश नहीं होता।[२६५] नैयायिक वेद को पौरुषेय सिद्ध करने के लिये यह भी कहता है—वेद-वाक्य पौरुषेय हैं, वाक्य होने से, महाभारत आदि के समान।[२६६]

इस पर मानमेयोदय में कहा गया है कि नैयायिक का यह हेतु अनेक दोषों से युक्त है; अतः इससे वेदों की पौरुषेयता सिद्ध नहीं की जा सकती।[२६७] यहाँ

---

२६३. नारायण, मानमेयोदय (अड्यार लाइब्रेरी, अड्यार, मद्रास, १९७५), पृ० १०९।

२६४. लोकस्यात्यन्तिको नाशो वैदिकानां न संमतः।
महतां वेदमार्गाणां स्रोतोभङ्गप्रसङ्गतः। वही, पृ० १७४।

२६५. ईश्वरो ननु लोकादौ वेदानपि विधास्यति।
ततो न वेदमार्गाणां विच्छेदो दोषमावहेत्। वही, पृ० १७४।

२६३. वेदवाक्यानि पौरुषेयाणि वाक्यत्वाद् भारतादिवाक्यवत्। वही, पृ० १७५।

२६७. द्र०, वही, पृ० १७५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद को नित्य सिद्ध करने के लिये कई हेतु भी प्रस्तुत किये गये हैं। संक्षेप में अभिप्राय यह है कि कोई काल ऐसा नहीं था जब वेद न हों। जो भी वेदाध्ययन होता रहा है वह अध्यापक के द्वारा ही हुआ है, यह गुरु-शिष्य-सम्प्रदाय सदा से चला आ रहा है। अतः वेद नित्य हैं।[२६८]

नैयायिक के मत का खण्डन करने के लिये यह भी दिखलाया गया है कि वेदों के कर्त्ता का स्मरण नहीं किया जाता अतः इनका कोई कर्त्ता नहीं है, ये अपौरुषेय हैं। वेद-वाक्यों में जो 'वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य निःसृताः' (उसके मुखों से वेद प्रकट हुए) इत्यादि कहते हुए वेदों की पौरुषेयता दिखाई गई है उन वाक्यों का अर्थवादपरक अर्थ करना होगा; जो काठक आदि संज्ञाएं वेद की शाखाओं की हैं वे भी प्रवचन के कारण हो गई हैं। इस प्रकार वेद अपौरुषेय हैं तथा नित्य हैं।

५. वेदान्त के विविध सम्प्रदायों में वेद-नित्यता

(क) ब्रह्मसूत्र :

ब्रह्मसूत्र बादरायण के नाम से प्रसिद्ध हैं। बादरायण को व्यास या बादरायण व्यास भी कहा जाता है। ब्रह्मसूत्र का विषय है ब्रह्म के विषय में विचार करना। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' से इस ग्रन्थ का आरम्भ किया गया है।[२६९] यहाँ ब्रह्म के निरूपण में ही प्रसङ्गतः वेदोत्पत्ति आदि का विवरण दिया गया है और, श्रुति आदि शब्दों द्वारा वेद का निर्देश किया गया है।[२७०] 'आम्नान' 'आमननात्' इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी श्रुति के लिये हुआ है।[२७१] इसी प्रकार शास्त्र शब्द का प्रयोग भी वेद तथा अन्य शास्त्रों के लिये भी किया गया है।[२७२] यहाँ वेदों की संख्या या नामों का उल्लेख नहीं किया गया।

ब्रह्मसूत्र में वेदोत्पत्ति का निरूपण करते हुए कहा गया है—शास्त्रयोनित्वात्[२७३] ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करते हुए सूत्रकार ने पहले कहा है—

---

२६८. द्र०, वही, पृ० १७६।

२६९. ब्रह्मसूत्र (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३८), १.१.१।

२७०. श्रुतत्वाच्च (१.१.११; ३.२.३९), श्रुतेश्च (३.४.४६), श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् (२.१.२७), नात्माऽश्रुतेः (२.३.२७), न वियदश्रुतेः (२.३.१) इत्यादि।

२७१. द्र०, वही, ३.३.२४,३४।

२७२. द्र०, वही, १.१.३।

२७३. द्र०, वही, १.१.३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्माद्यस्य यतः— जिससे इस जगत् की उत्पत्ति आदि होती है वह ब्रह्म है। जगत् का कारण जो ब्रह्म है वह सर्वज्ञ होना चाहिए, इस मन्तव्य का समर्थन करते हुए कहा है कि शास्त्र का कारण (योनि) होने से वह ब्रह्म सर्वज्ञ है। इस वचन से यह प्रतीत होता है कि सर्वज्ञ ब्रह्म ही शास्त्र का कारण है; किन्तु किस शास्त्र का? कैसे? यह सब यहाँ स्पष्ट नहीं होता। इसका स्पष्टीकरण करने के लिये ब्रह्मसूत्रों की विविध व्याख्याओं का आश्रय लेना पड़ता है।

ब्रह्मसूत्रों पर कोई प्राचीन भाष्य उपलब्ध नहीं है। उपलब्ध भाष्यों से यह अवश्य प्रतीत होता है कि इन पर कई प्राचीन व्याख्याएँ थीं। उनमें उपवर्ष और बोधायन की व्याख्याएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। रामानुज ने अपने भाष्य के आरम्भ में लिखा है कि उनका भाष्य बोधायन की वृत्ति पर आधारित है।[२७४] उपलब्ध भाष्यों में शङ्कराचार्यकृत भाष्य सबसे प्राचीन है। यह शारीरक भाष्य के नाम से प्रसिद्ध है। शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्रों की अद्वैतवादी दृष्टि से व्याख्या की है। अन्य भाष्यकारों में भास्कराचार्य, रामानुज, निम्बार्क, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य तथा विज्ञानभिक्षु विशेष प्रसिद्ध हैं। इनमें रामानुज, निम्बार्क, मध्व तथा वल्लभाचार्य के भाष्य वैष्णव वेदान्त के अन्तर्गत आते हैं। ये सभी वेदानुयायी हैं, इसमें सन्देह नहीं। यहां यही विचार करना है कि वेद-संज्ञा, संख्या, वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता के विषय में इनके मन्तव्य किस प्रकार के हैं।

(ख) शारीरक भाष्य तथा उसकी टीकाएँ

शङ्कराचार्य ने शारीरक भाष्य में श्रुति शब्द से अनेकशः उपनिषदों के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं; जैसे - तत्केन कं पश्येत् (बृहदारण्यक० २.४.१३) इत्यादिक्रियाकारकफलनिराकरणश्रुतेः[२७५], महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति (काठक० १.२.२१), अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रः (मुण्डक० २.१.२), असङ्गो ह्ययं पुरुषः (बृहदारण्यक० ४.३.१५) इत्यादिश्रुतिभ्यः[२७६] इत्यादि। यद्यपि उन्होंने उपनिषदों को ब्राह्मण के अन्तर्गत ही दिखलाया है तथा यह भी स्वीकार किया है कि ब्राह्मण ग्रन्थ (उपनिषद् भी) मन्त्रोक्त अर्थ का विस्तृत अनुवाद करने वाले हैं, जैसा कि प्रश्नोपनिषद्-भाष्य के आरम्भिक वाक्य से विदित होता है।[२७७] फिर

---

२७४. श्रीभाष्य, भाग-१. पृ० ९।

२७५. ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य (निर्णयसागर, बम्बई, १९३८), १,१.४, पृ० १०५।

२७६, वही, १.१.४, पृ० ११६।

२७७. मन्त्रोक्तार्थस्य विस्तरानुवादीदं ब्राह्मणमारभ्यते। श्रीशंकराचार्यग्रन्थावली, (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६४), प्रथम भाग, पृ० ३९९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी 'श्रुतेश्च शब्दमूलत्वात्' (ब्रह्मसूत्र २.१.२७) के भाष्य में छान्दोग्योपनिषद् के वचनों को श्रुति रूप में उद्धृत करने से यही मानना युक्तिसंगत है कि शङ्कराचार्य की दृष्टि में मन्त्रब्राह्मण-उपनिषद् सब श्रुति कहलाते हैं।

शङ्कराचार्य ने कई बार ऋग्वेद का नामोल्लेख किया है[२७८] तथा यह भी कहा है कि यह वेद अनेक शाखाओं वाला है।[२७९] शारीरक भाष्य में ब्रह्म को शास्त्र (वेद) का कारण दिखलाते हुए वेद की सर्वज्ञता का भी समर्थन किया है—अनेकविद्याओं से उपबृंहित प्रदीप के समान समस्त अर्थों के प्रकाशक, सर्वज्ञ तुल्य महान् ऋग्वेदादि शास्त्र का कारण ब्रह्म है। वस्तुतः सर्वज्ञ के गुणों से युक्त इस ऋग्वेदादि शास्त्र का सर्वज्ञ के अतिरिक्त और किसी से प्रादुर्भाव नहीं हो सकता।[२८०] अद्वैतवेदान्त के अनुसार सर्वज्ञ द्वारा जो वेद की रचना की जाती है वह न्याय-वैशेषिक के समान बुद्धिपूर्वक रचना नहीं है; अपितु जिस प्रकार वह सर्वज्ञ लीलामात्र से जगत् की रचना करता है उसी प्रकार लीला मात्र से पुरुष-निश्वास के समान समस्तज्ञान के भण्डार-रूप ऋग्वेद आदि की भी रचना कर देता है, जैसा कि 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः' यह बृहदारण्यक में कहा गया है।[२८१]

शङ्कराचार्य ने अद्वैतवेदान्त की दृष्टि से वेदनित्यता का भी स्पष्टीकरण किया है। पूर्वमीमांसा में शब्द-नित्यता तथा शब्दार्थसम्बन्धनित्यता सिद्ध करते हुए वेदों की नित्यता सिद्ध की गई है। किन्तु प्रश्न यह है, जब श्रुति स्मृति कहती है कि समस्त जगत् निर्लेप ब्रह्म में लीन हो जाता है और फिर नवीन ही उत्पन्न होता है तब शब्दनित्यता या शब्दार्थ-सम्बन्ध की नित्यता कैसे रह सकती है और वेदनित्यता कैसे मानी जा सकती है। इसके उत्तर में ब्रह्मसूत्र[२८२] की

---

२७८. ब्रह्मसूत्र-शाङ्करभाष्य, १.१.४, पृ० ९६-९९।

२७९. अनेकशाखाभेदभिन्नस्य। वही, १.१.३, पृ० ८७-९८।

२८०. महत ऋग्वेदादेः शास्त्रस्यानेकविद्यास्थानोपबृंहितस्य प्रदीपवत् सर्वार्थावद्योतिनः सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म। न हीदृशस्य शास्त्रस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति। वही, १.१.३, पृ० ९६।

२८१. द्र०, ऋग्वेदाद्याख्यस्य सर्वज्ञानाकरस्य अप्रयत्नेनैव लीलान्यायेन पुरुषनिः श्वासवद् यस्मान्महतो भूताद्योनेः संभवः। वही, १,१ ३, पृ० ९८।

२८२. समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च। ब्रह्मसूत्र, १.३.३०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगति लगाते हुए शङ्कर कहते हैं -- जगत् की सृष्टि-प्रलय मानने पर भी संसार की अनादिता तो माननी ही होगी। ब्रह्मसूत्र के कर्ता (आचार्य) इसका प्रतिपादन भी करते हैं।[२८३] जब संसार अनादि है तो जिस प्रकार सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्था के प्रलय और प्रभव में पहली जाग्रत् अवस्था के समान अग्रिम जाग्रत् अवस्था में भी व्यवहार होता है उसमें कोई विरोध नहीं होता, इसी प्रकार अन्य कल्प की सृष्टि और प्रलय में भी हो जायेगा, इसमें कोई विरोध नहीं होगा।[२८४] शङ्कराचार्य ने यहाँ श्रुति का प्रमाण देकर यह भी दिखलाया है कि सुषुप्ति और जाग्रत् अवस्था में भी प्रलय तथा प्रभव माने जाते हैं। फलतः सुषुप्ति अवस्था में जो जीव का ब्रह्म में प्रलय होता है वह दैनन्दिन प्रलय है उससे प्रबोध होने पर दैनन्दिन प्रभव होता है। इसी प्रकार कल्प के अन्त में जो प्रलय होता है वह महाप्रलय कहलाता है उसके पश्चात् पुनः सृष्टि (सर्ग) हुआ करती है। यह प्रलय और सृष्टि का क्रम अनादि काल से चल रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा। यही संसार की प्रवाह से अनादिता है।

अब प्रश्न यह है कि जब सुषुप्ति के पश्चात् व्यक्ति उठता है तो अन्य जनों का सतत व्यवहार देखता है और अपने पहली जाग्रत् अवस्था के व्यवहारों का भी स्मरण कर लेता है अतः कोई विरोध नहीं होता; किन्तु महाप्रलय हो जाने पर तो सभी जनों के व्यवहार समाप्त हो जाते हैं और कोई व्यवित अन्य कल्प के व्यवहारों का स्मरण नहीं कर सकता; क्योंकि जब पूर्वजन्म की बात का ही स्मरण नहीं होता तो महाप्रलय से पूर्व के व्यवहारों का स्मरण कैसे हो सकता है।[२८५] इसके उत्तर में शङ्कर कहते हैं -- यह दोष नहीं; क्योंकि समस्त व्यवहारों का लोप करने वाले महाप्रलय के होने पर भी परमेश्वर के अनुग्रह से हिरण्यगर्भ आदि ईश्वरों (ऐश्वर्यशालियों) को पूर्व कल्प के व्यवहारों का अनुस्मरण हो ही सकता है।[२८६] भाव यह है—यद्यपि देखा जाता है कि साधारण जन अन्य जन्म के व्यवहारों का स्मरण नहीं करते तथापि ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले तो उनके

---

२८३. उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च। वही, २.१.३६।

२८४. अनादौ च संसारे यथा स्वापप्रबोधयोः प्रलयप्रभवश्रवणेऽपि पूर्वप्रबोधवद् उत्तरप्रबोधेऽपि व्यवहारान्न कश्चिद् विरोधः, एवं कल्पान्तरप्रभवप्रलययोरपीति द्रष्टव्यम्। शारीरकभाष्य, १.३.३०, पृ० ३३५।

२८५. द्र०, वही, १.३.३०, पृ० ३३५।

२८६. नैष दोषः, सत्यपि सर्वव्यवहारोच्छेदिनि महाप्रलये परमेश्वरानुग्रहाद् ईश्वराणां हिरण्यगर्भादीनां कल्पान्तरव्यवहारानुसंधानोपपत्तेः। वही, १.३.३०, पृ० ३३५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान ही नहीं होंगे। और, जिस प्रकार सभी प्राणी समान हैं; किन्तु तुच्छ जीव की अपेक्षा मनुष्य आदि में ज्ञान और ऐश्वर्य आदि का तारतम्य देखा जाता है, उसी प्रकार हिरण्यगर्भ आदि में भी ज्ञान तथा ऐश्वर्य की अधिकाधिक अभिव्यक्ति हो सकती है। यह बात श्रुति-स्मृति में बार-बार कही गई है अतः इसे नकारा नहीं जा सकता।[२८७] इसलिये जिनके पूर्व कल्प में उत्कृष्ट ज्ञान और कर्म रहे हैं ऐसे ऐश्वर्य प्राप्त हिरण्यगर्भ आदि को वर्तमान कल्प में आविर्भूत होने पर परमेश्वर के अनुग्रह से पूर्व कल्प के व्यवहारों का इसी प्रकार अनुस्मरण हो सकता है जिस प्रकार सोकर उठे व्यक्ति को हो जाता है।[२८८] इस विषय में श्रुति और स्मृति को भी प्रमाण रूप में उद्धृत किया गया है।[२८९]

यहाँ यह भी बतलाया गया है, यद्यपि जगत् का प्रलय हो जाता है तथापि जगद्-रचना की शक्ति तो शेष रहती ही है और उस शक्ति के आधार पर ही फिर जगत् की पहले सर्गों के समान ही सृष्टि हुआ करती है। इस प्रकार सभी कल्पों में समान व्यवहार होने से और ऐश्वर्य-युक्त हिरण्यगर्भ आदि में अन्य कल्प के व्यवहारों के स्मरण का सामर्थ्य होने से समान नाम रूप वाले भेद ही प्रत्येक सृष्टि में हुआ करते हैं। अतः सृष्टि और प्रलय के होने पर नाम-रूप की समानता में कोई विरोध नहीं आता।[२९०] पहले कल्पों के समान ही अन्य कल्पों में भी सृष्टि होती है और उसी प्रकार की वेद-रचना की जाती है। इस विषय में श्रुति, स्मृति का प्रमाण भी दिया गया है, 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्' यह ऋग्वेद (१०.१९०.३) का वचन इसमें मुख्य प्रमाण है।[२९१]

इस प्रकार शङ्कराचार्य के मत में वेद स्वरूपतः अनादि नित्य नहीं, वे प्रवाह से अनादिनित्य हैं। प्रत्येक सर्ग के आदि में ऐश्वर्य-युक्त हिरण्यगर्भ आदि के द्वारा पूर्व कल्प के समान ही इनकी रचना की जाती है।

---

२८७. द्र०, वही, १.३.३०, पृ० ३३५।

२८८. ततश्चातीतकल्पानुष्ठितप्रकृष्टज्ञानकर्मणामीश्वराणां हिरण्यगर्भादीनां वर्तमानकल्पादौ प्रादुर्भवतां परमेश्वरानुगृहीतानां सुप्तप्रतिबुद्धवत् कल्पान्तरव्यवहारानुसन्धानोपपत्तिः। वही, १.३.३०, पृ० ३३५।

२८९. द्र०, वही, १.३.३०, पृ० ३३६।

२९०. द्र०, वही, १.३.३०, पृ० ३३६।

२९१. द्र०, वही, १.३.३०, पृ० ३३६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शारीरक भाष्य की सबसे प्राचीन टीका पञ्चपादाचार्यकृत पञ्चपादिका समझी जाती है। यहाँ वेदप्रामाण्य के प्रसङ्ग में अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता का निरूपण किया गया है।[२९२] इसके अतिरिक्त शारीरक भाष्य पर कई प्रसिद्ध टीकाएँ हैं; जैसे श्रीगोविन्दानन्द-प्रणीत रत्नप्रभा, आनन्दगिरि की न्यायनिर्णय तथा वाचस्पति मिश्र की भामती आदि। वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता का भामती में संक्षिप्त एवं स्पष्ट विवेचन उपलब्ध होता है। शङ्कराचार्य ने जो सर्वज्ञ द्वारा विना यत्न के ही (अयत्नेनैव) वेदों की उत्पत्ति बतलाई थी, उस पर वाचस्पति मिश्र कहते हैं—देवता एवं ऋषि महान् परिश्रम से भी जिस कार्य में समर्थ नहीं हैं उसको स्वल्प प्रयत्न से लीलामात्र से ही वह कर देता है। इस कथन से उसकी निरतिशय सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता प्रकट होती है।

वेद अनित्य है; किन्तु अपौरुषेय है। यहाँ अनित्यता और अपौरुषेयता का क्या अभिप्राय है? इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—जो वर्णों को नित्य मानते हैं उन्हें भी पदों और वाक्यों की अनित्यता स्वीकारनी होगी। वर्ण भिन्न-भिन्न आनुपूर्वी से युक्त होकर ही पद बनते हैं और आनुपूर्वी के भेद से ही पदों से वाक्य बनते हैं। आनुपूर्वी तो व्यक्ति (अभिव्यक्ति) का धर्म है, वर्णों का नहीं। नित्य और विभु जो वर्ण हैं उनका तो देश तथा काल के भेद से पौर्वापर्य नहीं हो सकता। व्यक्ति तो अनित्य है। फिर उसके द्वारा नित्य वर्णों में होने वाली भी पदरूपता अनित्य ही होगी और पदों की अनित्यता से वाक्यों की भी अनित्यता होगी।[२९३] इसलिये वर्णों को नित्य मानने वाले अथवा अनित्य मानने वाले दोनों के मत में ही लौकिक और वैदिक पद, वाक्य आदि पौरुषेय हैं, इस विषय में कोई विवाद नहीं। केवल वेदवाक्य की रचना में पुरुष की स्वतन्त्रता अथवा अस्वतन्त्रता में ही मत-भेद है। जैसा कि (कुमारिल ने) कहा है—'यत्नतः प्रतिषेध्या नः पुरुषाणां स्वतन्त्रता' (हमें तो यत्नपूर्वक पुरुषों की स्वतन्त्रता का प्रतिषेध करना है)।

इस प्रकार वेदों की अपौरुषेयता का अभिप्राय है वेद-रचना में पुरुष की स्वतन्त्रता न होना। मीमांसकों के मत से अद्वैत-वादियों के मत का भेद दिखलाते हुए उस अपौरुषेयता का स्वरूप इस प्रकार दिखलाया गया है—सृष्टि और प्रलय

---

२९२. द्र०, पञ्चपादिका (मद्रास गवर्नमेंट ऑरियन्टल सीरीज, १९५८), षष्ठ वर्णक, पृ० ३१५।

२९३. भामती, ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य (निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, १९३८), १.१.३, पृ० ९८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को न मानने वाले जैमिनि के अनुयायी (मीमांसक) वेद के अध्ययन में साधारण जनों (अस्मादृश) की गुरुशिष्यपरम्परा को अनादि और अविच्छिन्न कहते हैं। व्यास के मत का अनुसरण करने वाले तो यह कहते हैं कि श्रुति स्मृति इतिहास आदि से सृष्टि और प्रलय का होना तो निश्चित है अतः सृष्टि के आदि में वेद का आविर्भाव मानना होता है; किन्तु अनादि अविद्या की उपाधि से सब शक्ति एवं ज्ञान को प्राप्त करने वाले भी नित्य परमात्मा की वेदों की योनि होते हुए भी उन (वेदों की रचना) में स्वतन्त्रता नहीं है; क्योंकि पहली-पहली सृष्टि के समान वैसी ही रचना वह किया करता है।[२९४] इस प्रकार जैमिनि के अनुयायी भी अपौरुषेयता का अभिप्राय यह मानते हैं—(वेद-रचना में) पुरुष की स्वतन्त्रता न होना, वह हमारे मत में भी समान ही है।[२९५]

अब शङ्का यह है कि यदि सृष्टि के आदि में एक को ही (पूर्वसर्ग के समान) वेद का प्रतिभान होगा तो सभी का उस पर विश्वास न हो सकेगा। इसके समाधान के लिये कहा गया है—यदि बहुत से अज्ञानियों को अथवा हृदय में दोषयुक्त ज्ञानियों को भी वेदों का भान मान लिया जाये तो भी सभी को विश्वास नहीं हो सकेगा और तत्त्वज्ञानी तथा समस्त दोषों से रहित किसी एक के प्रतिभान में भी विश्वास हो सकता है। वस्तुतः सृष्टि के आदि में होने वाले प्रजापति और देवर्षिगण धर्म ज्ञान वैराग्य और ऐश्वर्य से युक्त होते हैं अतः उन्हें वेदों के स्वरूप का निश्चय हो ही सकता है और उनके विश्वास से अर्वाचीन जनों को भी विश्वास हो जाता है। इसलिये ब्रह्म को ही शास्त्र (वेद) का कारण मानना युक्तियुक्त है।[२९६]

वाचस्पति मिश्र यह भी बतलाते हैं—सर्ग-प्रलय मानने पर भी संसार की अनादिता में कोई विरोध नहीं। और, संसार के अनादि होने पर प्रत्येक सर्ग के आदि में परमेश्वर के अनुग्रह से हिरण्यगर्भ आदि को पूर्वसर्ग के समान वेदों

---

२९४. तत्र सृष्टिप्रलयमनिच्छन्तो जैमिनीया वेदाध्ययनं प्रत्यस्मादृशगुरुशिष्यपरम्परामविच्छिन्नामनादिमाचक्षते। वैयासिकं तु मनमनुवर्तमानाः श्रुतिस्मृतीतिहासादिसिद्धसृष्टिप्रलयानुसारेणानाद्यविद्योपधानलब्धसर्वशक्तिज्ञानस्यापि परमात्मनो नित्यस्य वेदानां योनेरपि न तेषु स्वातन्त्र्यम्, पूर्वपूर्वसर्गानुसारेण तादृश-तादृशानुपूर्वीविरचनात्। वही, १.१ ३, पृ० ९९।

२९५. पुरुषास्वातन्त्र्यमात्रं चापौरुषेयत्वं रोचयन्ते जैमिनीया अपि। तच्चास्माकमपि समानम्। वही, १.१.३, पृ० ९९।

२९६. द्र०, वही, १.१.३, पृ० ९९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अनुस्मरण होना सम्भव ही है। वेद तथा स्मृति भी इसी अर्थ को कहते हैं।[२९७] फलत: जो वेद इस कल्प में हैं वे ही अन्य कल्प में होते हैं और उनके अर्थ भी वे ही होते हैं।[२९८] वाचस्पति मिश्र ने इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। उनके विवेचन से स्पष्ट होता है कि वेद प्रवाह से अनादि नित्य हैं स्वरूपत: अनित्य हैं तथा अपौरुषेय हैं।

(ग) अद्वैत वेदान्त के स्वतन्त्र ग्रन्थ

अद्वैत वेदान्त के मन्तव्यों की विशद व्याख्या करने वाले अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं; जहाँ सूत्रक्रम का अनुसरण नहीं किया गया; किन्तु किन्हीं मन्तव्यों का संक्षिप्त या विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ उनमें से कतिपय ग्रन्थों के आधार पर वेदनित्यता आदि के विषय में विचार करना उपयुक्त प्रतीत होता है।

विवरणप्रमेयसंग्रह में विद्यारण्य (भारतीतीर्थ) ने ब्रह्म ही शास्त्र का कारण है (शास्त्रयोनित्वात्) इस विषय पर विचार करते हुए बतलाया है—(१) वेद की सर्वज्ञता यही है कि वह व्यवहारयोग्य सभी वस्तुओं का प्रकाशक है, ब्रह्म तो सभी वस्तुओं का सर्वथा प्रकाश करता है अतः वह वेद से भी अधिक ज्ञान वाला है।[२९९] (२) वेद को पौरुषेय नहीं माना जा सकता; क्योंकि तब उसकी प्रामाणिकता सिद्ध करना कठिन है।[३००] पौरुषेय होने में जो 'इदं सर्वमसृजत ऋचो यजूंषि' आदि श्रुति प्रमाणरूप में प्रस्तुत की गई है उसके विषय में विचारणीय यह है—हिरण्यगर्भ की उत्पत्ति से पूर्व ही वेदों की विद्यमानता श्रुति से जानी जाती है अतः इस श्रुति में 'असृजत' शब्द द्वारा यह बतलाया गया है कि पहले से विद्यमान वेदों का ही हिरण्यगर्भ की बुद्धि में (सृष्टि के आदि में) प्रथमतः आविर्भाव हुआ।[३०१] किञ्च, वह श्रुति उपादान के प्रकरण में है अतः वह ईश्वर

---

२९७. द्र०, वही, १.३.३०, पृ० ३३४-३३५।

२९८. एवं य एव वेदा अस्मिन् कल्पे त एव कल्पान्तरे, त एव तेषामर्थाः। वही, १.३.३०, पृ० ३३६।

२९९. तथा च वेदस्य व्यवहार्यसर्ववस्तुप्रकाशकत्वात् सर्वज्ञत्वम्। विवरणप्रमेयसंग्रह (आन्ध्रविश्वकलापरिषद्, वाल्टेर, १९४१), षष्ठ वर्णक, पृ० २७७।

३००. तस्मात् पौरुषेयत्वे वेदस्य प्रामाण्यं दुःसंपादम्। वही, पृ० २७८।

३०१. द्र०, वही, पृ० २७९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को वेदों का उपादान कारण बतलाती है, वेदों का कर्ता नहीं।[१०२] इस प्रकार यहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि ब्रह्म जगत् के समान वेदों का भी अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है।

यहाँ यह भी स्पष्टतः कहा गया है कि ब्रह्म के समान वेद भी अनादि हैं।[१०३] नियत क्रम से विशिष्ट वर्ण पद वाक्य प्रकरण तथा काण्ड आदि ही वेद कहलाते हैं जिनका प्रत्येक कल्प के आदि में आविर्भाव हो जाता है और प्रलय में तिरोभाव हो जाता है अतः वे कूटस्थ नित्य माने जाते हैं।[१०४] विवरण का यह मत विचारणीय ही है, वस्तुतः जिस वस्तु का आविर्भाव-तिरोभाव होता है वह कूटस्थ नित्य नहीं कही जा सकती उसे तो केवल प्रवाह से नित्य ही कहा जा सकता है। इसी हेतु वेदान्त के किन्हीं ग्रन्थों में वेद को 'अनित्य' कहा गया है।

अब प्रश्न यह होता है फिर तो वेद का उपादान कारण ब्रह्म न हो सकेगा; क्योंकि वह अनादि है, कूटस्थनित्य है, ब्रह्म के समान। इसके उत्तर में कहा गया है कि यह हेतु सोपाधिक है। ब्रह्म तो स्वतन्त्र होकर अनादि तथा कूटस्थनित्य है; किन्तु वेद परतन्त्र है, उसका तो ब्रह्म में आरोप किया जाता है जिस प्रकार रज्जु में आरोपित सर्प उस रज्जु के अधीन (परतन्त्र) होता है।[१०५] और, जिस प्रकार रज्जु में भासित सर्प का 'यह ऐसा है, या ऐसा नहीं है' इस रूप में निर्वचन नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार वेद का भी। अतः वेद अनिर्वचनीय है।[१०६] अनिर्वचनीय होते हुए भी वह तुच्छ (अभावरूप) नहीं है अतः अर्थक्रिया में समर्थ है। इस प्रकार ब्रह्म का विवर्त होने से वेद कार्य (अनित्य) है। किन्तु अनादि नित्य होने से उसकी उत्पत्ति पुरुष की इच्छा के अधीन नहीं—उसकी रचना में पुरुष स्वतन्त्र नहीं। अतः वह पौरुषेय भी नहीं।

धर्मराज अध्वरीन्द्र की वेदान्तपरिभाषा में प्रमाण-निरूपण के साथ-साथ वेदान्त के किन्हीं मन्तव्यों का निरूपण भी किया गया है। यहाँ वेदप्रामाण्य के विषय में नैयायिक और मीमांसक के मत का उल्लेख करते हुए कहा गया है—

---

१०२. उपादानप्रकरणपठिता सा श्रुतिः ईश्वरस्योपादानत्वमेव ब्रूते, न तु वेदकर्तृत्वमपि। वही, पृ० २७६।

१०३. अतो ब्रह्मवद्वेदस्यापि पर्यालोचनायाम् अनादित्वं सिध्यति। वही, पृ० २८१।

१०४. नियतक्रमविशिष्टानामेव वर्णपदवाक्यप्रकरणकाण्डादीनां वेदशब्दवाच्यानां कल्पादिप्रलययोरपि आविर्भावतिरोभावमात्रभाजां कूटस्थनित्यत्वाङ्गीकारात्। वही, पृ० २८१।

१०५. द्र०, वही, पृ० २८१।

१०६. अतोऽनिर्वचनीयो वेदः। वही, पृ० २८२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारे मत में वेद नित्य नहीं हैं; क्योंकि उनकी उत्पत्ति होती है।[307] 'अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्यदृग्वेदः' (बृहदारण्यक० २.४.१०) इत्यादि श्रुति में वेद की उत्पत्ति कही गई है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है, यदि वेद अनित्य हैं तो क्या वे त्रिक्षण-स्थायी हैं? भाव यह है कि अनित्य वस्तुएँ दो प्रकार की देखी जाती हैं एक तो वे जो दिनों, महीनों तथा वर्षों तक विद्यमान रहती हैं, जैसे घट, मेज, पुस्तक आदि हैं। दूसरी वे हैं जो प्रथम क्षण उत्पन्न होकर दूसरे क्षण रहती हैं और तीसरे क्षण नष्ट हो जाती हैं, जैसे शब्द आदि हैं। वेद भी शब्द-रूप है तो क्या आप इसे त्रिक्षणावस्थायी मानते हैं। इस पर वेदान्ती का कथन है कि जो वेद देवदत्त ने पढ़ा वही मैंने भी, इस प्रकार की प्रत्यभिज्ञा त्रिक्षणावस्थायी वस्तु में नहीं हो सकती। अतः वेद त्रिक्षण-स्थायी नहीं हैं। गकार आदि वर्णों में भी इसी प्रकार प्रत्यभिज्ञा हुआ करती है अतः वे भी त्रिक्षण-स्थायी (क्षणिक) नहीं हैं।[308] फलतः वर्णों, पदों तथा वाक्यों का समुदाय जो वेद है उसकी आकाश आदि के समान सृष्टि के समय उत्पत्ति होती है और प्रलय के समय विनाश हो जाता है, मध्य में वर्णों की उत्पत्ति और विनाश नहीं होते। इस प्रकार वेद क्षणिक नहीं हैं।[309]

फिर प्रश्न यह है, वेद क्षणिक नहीं; किन्तु वेदान्त मत में आकाश आदि के समान इनकी उत्पत्ति होती है, यदि ऐसा माना जाये तो परमेश्वर की कृति होने से वेद पौरुषेय हो जायेंगे, वेदान्ती तो इन्हें अपौरुषेय मानता है। इसका उत्तर देते हुए धर्मराज ने अद्वैत वेदान्त की अभिमत अपौरुषेयता का स्वरूप भी स्पष्ट कर दिया है। वे कहते हैं—पुरुष के द्वारा उच्चारण किया जाना ही पौरुषेयत्व नहीं है। यदि ऐसा माना जाये तो प्रभाकर के मत में वेद पौरुषेय हो जायेंगे; क्योंकि अध्यापक-परम्परा से इनका उच्चारण किया ही जाता है। किञ्च, जिसकी उत्पत्ति पुरुष के अधीन है वह पौरुषेय है ऐसा भी नहीं है; क्योंकि फिर तो नैयायिक हमारे द्वारा स्वीकृत पौरुषेयता की ही सिद्धि करेंगे (कोई नई बात न कहेंगे) अतः सिद्धसाधन दोष होगा।[310] वस्तुतः वेदान्त के

---

३०७. अस्माकं तु मते वेदो न नित्यः, उत्पत्तिमत्त्वात्। वेदान्तपरिभाषा, आगम परिच्छेद।

३०८. द्र०, वही, आगमपरिच्छेद।

३०९. द्र०, वही, आगमपरिच्छेद।

३१०. द्र०, वही, आगमपरिच्छेद।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत में सजातीय उच्चारण की अपेक्षा किये विना ही जिसका उच्चारण किया जाता है वह पौरुषेय कहा जाता है।[३११]

वेद में इस प्रकार की पौरुषेयता नहीं हैं अतः वह पौरुषेय नहीं अपौरुषेय है। कैसे? सृष्टि के आदि में परमेश्वर पूर्व सर्ग में स्थित वेद की आनुपूर्वी के समान आनुपूर्वी वाले वेद की रचना करता है, उससे भिन्न आनुपूर्वी वाले की नहीं। अतः सजातीय उच्चारण की अपेक्षा किये विना जिसका उच्चारण किया जाता है वह पौरुषेय होता है, यह लक्षण वेद में घटित नहीं होता।[३१२]

इस प्रकार वेदान्तपरिभाषा में अद्वैत वेदान्त की दृष्टि से वेदों की अनित्यता तथा अपौरुषेयता की व्याख्या की गई है। यहाँ वाचस्पति मिश्र द्वारा उक्त पुरुष की अस्वतन्त्रता रूप अपौरुषेयता की कुछ अधिक स्पष्ट व्याख्या हो गई है।

(घ) वेदान्त के अन्य सम्प्रदाय

भास्कर आचार्य ने ब्रह्मसूत्र की विस्तृत व्याख्या की है। वेद की नित्यता का निरूपण करते हुए उन्होंने कहा है—शब्द से ही जगत् की उत्पत्ति होती है और प्रलय काल में भी ब्रह्म में सूक्ष्म रूप से वेदराशि स्थित रहती है।[३१३] वेद की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—सृष्टि के समय परमेश्वर के अनुग्रह से हिरण्यगर्भ के मन में जो वेद सो कर जागे हुए के समान प्रादुर्भूत होता है उसी के द्वारा वह जगत् का निर्माण करता है।[३१४] यहाँ वेदों को अनादि और नित्य सिद्ध करने वाली श्रुति और स्मृतियाँ भी भास्कराचार्य ने प्रस्तुत की हैं और यह भी वतलाया है कि हमारे मत में वर्ण ही शब्द है।[३१५] अन्त में वे कहते हैं—अतः नित्य शब्द का नित्य अर्थ के साथ नित्य सम्बन्ध वन सकता है।[३१६]

---

३११. किन्तु सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वम्। वही, आगमपरिच्छेद।

३१२. तथा च सर्गाद्यकाले परमेश्वरः पूर्वसर्गसिद्धवेदानुपूर्वीसमानानुपूर्वीकं वेदं विरचितवान् न तु तद्विजातीयं वेदमिति न सजातीयोच्चारणानपेक्षोच्चारणविषयत्वं पौरुषेयत्वं वेदानाम्। वही, आगमपरिच्छेद।

३१३. शब्दादेव जगतः प्रभवादुत्पत्तेः प्रलयकालेऽपि हि ब्रह्मणि सूक्ष्मरूपेण वेदराशिरवस्थितः। भास्कर आचार्य, ब्रह्मसूत्रभाष्य (विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९०३), १.३.२८।

३१४. द्र०, वही, १.३.२८।

३१५. तस्माद्वर्णा एव शब्दा इति स्थितम्। वही, १.३.२८।

३१६. तस्मान्नित्येनार्थेन नित्यस्य शब्दस्य नित्यः सम्बन्ध उपपद्यते। वही, १.३.२९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न यह है कि यदि प्रलय में जगत् विलीन हो जाता है और फिर नवीन उत्पन्न होता है तो सब कुछ नष्ट हो जाने से वेद नित्य कैसे होगा और फिर संसार उससे कैसे उत्पन्न हो सकेगा ? इसका उत्तर 'समाननामरूपत्वात्' इत्यादि ब्रह्मसूत्र में दिया गया है।[३१७] इसके भाष्य में भास्कर ने बतलाया है— सृष्टि और प्रलय होने पर भी कोई विरोध नहीं है, जिस प्रकार सो कर उठे हुए व्यक्ति को पहली बात का स्मरण हो जाता है उसी प्रकार ईश्वर के अनुग्रह से प्रजापति को पूर्व कल्प के पदार्थों का स्मरण हो जाता है। हमारे मत में प्रलय का अर्थ अत्यन्त विनाश नहीं है; अपितु सुषुप्ति अवस्था के समान सूक्ष्मरूप में हो जाना ही प्रलय है। इसी प्रकार सूक्ष्मरूप में विद्यमान की अभिव्यक्ति होना ही सृष्टि है; क्योंकि अन्य कल्पों में भी समान नाम रूप हुआ करते हैं श्रुति और स्मृतियों से यही प्रतीत होता है।[३१८]

इस प्रसङ्ग में भास्कराचार्य ने अन्य वेदान्तियों के समान ही श्रुति और स्मृतियाँ प्रमाण रूप में उद्धृत की हैं। तदनन्तर मीमांसक की ओर से यह शङ्का होती है कि यदि किसी एक को वेद का प्रतिभान होता है तो वेद अनित्य हो जायेंगे। इसका समाधान करते हुए कहा गया है कि श्रुति स्मृतियों के प्रमाण से जगत् की सृष्टि और प्रलय माननी ही होती है। फिर जिस प्रकार ब्रह्म से जगत् का आविर्भाव होता है और उसी में प्रलय हो जाता है, इसी प्रकार वेद का ब्रह्म में प्रलय होता है और उससे ही प्रादुर्भाव। वह परब्रह्म नित्य है, अनादि है; अतः वेद भी नित्य और अनादि हैं। केवल सुप्तावस्था के समान प्रलय और सृष्टि में वेदों का तिरोभाव और आविर्भाव हुआ करता है।

आचार्य रामानुज ने पूर्वपक्ष प्रस्तुत करते हुए बतलाया है—श्रुति तथा स्मृतियों से विदित होता है, प्रजापति ने वेदों के शब्दों से ही आदि में जगत् के विविध पदार्थों की सृष्टि की।[३१९] इस प्रकार के कथनों से वेदों का अनादि, नित्य होना सिद्ध होता है।[३२०] इस पर रामानुज कहते हैं —पहले सर्गों के समान नाम और रूप होने से हमारे मत में कोई विरोध नहीं होता। वह भगवान् पुरुषोत्तम प्रलय के समाप्त हो जाने पर जगत् की पूर्वरचना का स्मरण करते हुए

---

३१७. समाननामरूपत्वात् चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च। वही, १.३.३०।

३१८. द्र०, वही, १.३.३०।

३१९. द्र०, श्रीभाष्य (श्रुतप्रकाशिका सहित, २५, नायमुनिवीथी, मद्रास, १७, १९६७), भाग-२, १.३.२७, पृ० ६२-६४।

३२०. द्र०, अत एव च नित्यत्वम्। वही, १.३.२८, पृ० ६५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत हो जाऊं ऐसा संकल्प करके अपने आप में शक्तिमात्र से लीन हुए भोग्य और भोक्ताओं का विभाग करके महत् से लेकर हिरण्यगर्भ पर्यन्त की पहले के समान सृष्टि करता है और पहली आनुपूर्वी-विशेष से युक्त वेदों को प्रकट करके हिरण्यगर्भ को उनका उपदेश करता है। इस प्रकार सभी कुछ ठीक बन जाता है।[३२१]

रामानुज के अनुसार वेद की नित्यता का क्या अभिप्राय है? इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—जहाँ उच्चारण का क्रम पुरुष-बुद्धिपूर्वक होता है वे शब्द पौरुषेय कहे जाते हैं; जहाँ उच्चारण का क्रम पूर्वपूर्व उच्चारण के क्रम से उत्पन्न संस्कारपूर्वक होता है वहाँ शब्द अपौरुषेय होते हैं और वे वेद ही हैं।[३२२] रामानुज ने यहाँ बतलाया है कि विशेष आनुपूर्वी में स्थित अक्षरों की राशि वेद हैं। वे ऋग्, यजुः, साम और अथर्व के भेद से भिन्न भिन्न हैं और इनकी अनन्त शाखाएँ हैं। ये वेद विधि, अर्थवाद और मन्त्र रूप में हैं। और, परब्रह्म नारायण के स्वरूप का, उसकी आराधना के प्रकार का तथा आराधना किये गये उससे फल-विशेष की प्राप्ति का बोध कराते हैं।[३२३]

वेद के स्वरूप और प्रतिपाद्य विषय का वर्णन करके उन्होंने इनकी नित्यता और अपौरुषेयता का निरूपण किया है। वेदों की नित्यता दिखलाते हुए कहा है—परमपुरुष के स्वरूप, उसकी आराधना और उसके फल का बोधक जो वेद नामक शब्द-समुदाय है वह परमपुरुष के समान नित्य ही है।[३२४]

उन्होंने यह भी कहा है कि वेदों के अनन्त तथा दुर्बोध होने से परमर्षिगण प्रत्येक कल्प में वेद के अर्थ का स्मरण करके धर्मशास्त्र और इतिहास, पुराण की कल्पना करते हैं।[३२५] वे अन्य स्थल पर कहते हैं—जो यह कहा गया है कि पहले-पहले उच्चारण के क्रम से उत्पन्न संस्कार के द्वारा उस क्रम से स्मरण करके उसी क्रम से उच्चारण किया जाना ही अपौरुषेयता है; यह हमारे सर्वेश्वर में भी

---

३२१. द्र०, श्रीभाष्य, १.३.२९, पृ० ६६-६७।

३२२. उच्चारणक्रमो यत्र पुरुषबुद्धिपूर्वकः, ते पौरुषेयाः शब्दा इत्युच्यन्ते, यत्र तु उच्चारणक्रमः पूर्वपूर्वोच्चारणक्रमजनितसंस्कारपूर्वकः, सर्वदा अपौरुषेयाः, ते च वेदा इत्युच्यन्ते। वेदार्थसङ्ग्रह (तिरुमल, तिरुपति, १९५३), पृ० ३३७।

३२३. वही, पृ० ३३८।

३२४. परमपुरुषवत्-तत्स्वरूप-तदाराधन-तत्फलज्ञापकवेदाख्यं शब्दजातं नित्यमेव। वही, पृ० ३३९।

३२५. द्र०, वही, पृ० ३३९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान ही है। केवल भेद यह है कि पुरुषोत्तम किसी संस्कार की अपेक्षा किये विना ही स्वयं ही वेद नामक शब्दराशि को जानता है और उच्चारण करता है।[३२६] इस प्रकार की अपौरुषेयता तथा नित्यता का कैसे निश्चय होता है? इसके उत्तर में कहा गया है—श्रुति और स्मृति से। श्रुति में कहा गया है—'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै', अर्थात् जो पहले ब्रह्मा की रचना करता है और उसे वेद अर्पित करता है। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी कहा गया है तथा पुराणों में भी।[३२७]

इस प्रकार रामानुज की दृष्टि में वेद की अपौरुषेयता का अर्थ है सृष्टि के आदि में पहले उच्चारण के समान उच्चारण किया जाना। इस कथन से यह प्रकट होता है कि पुरुषोत्तम स्वतन्त्रता से सर्ग के आदि में वेद-रचना नहीं करता। अतः वह वेद-रचना में कालिदास आदि कवि के समान स्वतन्त्र नहीं है। जहां तक नित्यता की बात है, प्रत्येक सर्ग के आदि में एक ही रूप से वेदों की रचना होती है, इस कथन में वेदों की प्रवाह से नित्यता ही मानी जा सकती है। यहाँ शाङ्कर मत से यही अन्तर है कि यहाँ वेदों का प्रणेता पुरुषोत्तम है वहाँ हिरण्यगर्भ आदि ऐश्वर्य प्राप्त पुरुष। किञ्च, यहाँ विना संस्कार के ही पुरुषोत्तम अपने ज्ञान के अनुसार वेदों की पूर्व सर्ग के समान रचना करता है; किन्तु अद्वैत वेदान्त की दृष्टि में हिरण्यगर्भ आदि पूर्व पठित के अनुसार संस्कार के आधार पर स्मरण करके वेदों को प्रकट करते हैं।

निम्बार्काचार्य[३२८] के वेदान्त-पारिजात-सौरभ भाष्य में वेदोत्पत्ति तथा वेद-नित्यता आदि के विषय में बहुत कम उल्लेख किया गया है। 'शास्त्रयोनित्वात्' सूत्र के भाष्य में भी केवल इतना कहा गया है—'शास्त्रमेव योनिः—तद्ज्ञप्ति-कारणं यस्मिन्, तदेवोक्तलक्षणलक्षितं वस्तु ब्रह्मशब्दाभिधेयम्'[३२९]—शास्त्र ही जिसके बोध का कारण है, वही उपर्युक्त लक्षण से लक्षित वस्तु ब्रह्म कहलाती है। 'तत्तु समन्वयात्' (१.१.४.) सूत्र के भाष्य में यह बतलाया गया है कि वेदों में

---

३२६. एतदेव च वेदस्यापौरुषेयत्वं च, यत् पूर्वपूर्वोच्चारणक्रमजनितसंस्कारेण तमेव क्रमविशेषं स्मृत्वा तेनैव क्रमेणोच्चार्य (माण) त्वम्, तदस्मासु सर्वेश्वरेऽपि समानम्। इयांस्तु विशेषः संस्कारानपेक्षमेव स्वयमेवानुसंधत्ते पुरुषोत्तमः। वही, १.३.२६; पृ० ६७-६८।

३२७. द्र०, वही, १.३.२९, पृ० ६८-७०।

३२८. श्रीनिम्बार्कवेदान्त (श्रीनिम्बार्क पीठ, १२ महाजनी टोला, इलाहाबाद-३, वि० २०२०)।

३२९. श्रीवेदान्त-पारिजात-सौरभ, १.१.३, पृ० ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस (ब्रह्म) का ही प्रतिपादन किया गया है।[११०] इसी प्रसङ्ग में वेद तथा श्रुति नाम का प्रयोग किया गया है। यहाँ श्रुति नाम से प्रायः उपनिषदों को ही प्रमाण रूप से प्रस्तुत किया गया है। इससे यह स्पष्ट ही है कि यहाँ भी शङ्कराचार्य के समान मन्त्र-ब्राह्मण तथा उपनिषद् सभी को श्रुति माना गया है।

यहाँ भी 'अत एव नित्यत्वम्' (१.३.२९) सूत्र के भाष्य में पूर्वपक्षी की ओर से कहा गया है—प्रजापति की सृष्टि शब्दपूर्वक है इसलिये वेद की नित्यता सिद्ध होती है।[१११] इस पर सिद्धान्त रूप में बतलाया गया है—प्रकृति में सृष्टि तथा संहार-रूप आवृत्ति मानने पर भी कोई विरोध नहीं है। क्यों? कल्प के आदि में जिन पदार्थों की सृष्टि की जाती है उनके नाम तथा रूप अतीत कल्पों के पदार्थों के समान ही रक्खे जाते हैं; जैसा कि श्रुति है—'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्'। इसी प्रकार स्मृति भी है। यद्यपि यहाँ वेद-रचना के विषय में स्पष्ट नहीं कहा गया तथापि समान न्याय से वेद-रचना पर यह लागू होता है। और, यह प्रतीत होता है कि प्रजापति द्वारा प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में पूर्व सर्ग के समान ही वेद-रचना की जाती है अतः वेद अपौरुषेय हैं तथा प्रवाह से नित्य। कहना न होगा कि निम्बार्क ने वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता आदि के विषय में अल्प मात्रा में ही कहा है।

मध्वाचार्य ने स्कन्द पुराण का उल्लेख करते हुए यह दिखलाया है कि ऋग्, यजुः, साम, अथर्व भारत ग्रन्थ, पञ्चरात्र तथा मूलरामायण ये शास्त्र कहे जाते हैं और जो इनके अनुकूल है वह भी शास्त्र कहा जाता है। इनसे भिन्न जो ग्रन्थ-विस्तार है वह शास्त्र नहीं।[११२] इस कथन से निम्न बातें प्रकट होती हैं—

१. ऋग्, यजुः, साम, अथर्व ये चार वेद हैं।

२. उपर्युक्त ग्रन्थ ही शास्त्र कहलाते हैं। अन्य ग्रन्थ शास्त्र नहीं कहलाते।

यहाँ यह शङ्का की गई है कि 'वाचा विरूपनित्यया' इत्यादि श्रुति से वेद नित्य हैं यह सिद्ध होता है। फिर यदि वेद द्वारा उक्त देवों को अनित्य माना जायेगा तो शब्द का विरोध होगा। इसका समाधान करते हुए मध्वाचार्य कहते

---

३३०. यद्वा वेदेषु तस्यैव प्रतिपादकतया समन्वयादिति संक्षेपः।······
समस्तश्रुतीनां साक्षात् परम्परया वा तत्रैव समन्वयात्। वही, १.१.४, पृ० ४।

३३१. प्रजापतेः सृष्टिः शब्दपूर्विकाऽतो हेतोर्वेदस्य नित्यत्वम्। वही, १.३.२९, पृ० ३७।

३३२. द्र०, आनन्द तीर्थ, ब्रह्मसूत्रभाष्य (मैजिस्टिक प्रेस, उडुपी, शक सं० १८७९), १.१.३।
मध्वाचार्य, पूर्णप्रज्ञ तथा आनन्दतीर्थ नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं—यह शङ्का ठीक नहीं। कारण, 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयद्' इत्यादि श्रुति द्वारा जैसे काल का नियम दिखलाया गया है उसी प्रकार देव आदि की उत्पत्ति का भी नियम है। इसलिये शब्द से देवों का उत्पन्न होना बन सकता है। प्रत्येक सृष्टि में वे उसी प्रकार होते हैं।[333] 'समाननामरूपत्वात्' इत्यादि के भाष्य में उन्होंने बतलाया है—अतीत और भविष्यत् के देव समान नाम रूप वाले होते हैं। अतः यदि ये अपने पदों को प्राप्त करके उसके पश्चात् फिर इस लोक में आवृत्त होते हैं तब इसमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि 'यथापूर्वम्' इस प्रकार का दर्शन अर्थात् श्रुति है[334] और स्मृति भी इसी प्रकार की है।[335]

इस प्रकार मध्वाचार्य (आनन्द तीर्थ) ने अपनी शैली के अनुसार अत्यन्त संक्षेप में वेद-नित्यता का प्रतिपादन किया है। तत्त्वदीपिका नामक टीका में भी इसकी विस्तृत व्याख्या नहीं की गई।

वल्लभाचार्य ने ब्रह्मसूत्र के अणुभाष्य[336] में वेद के स्वरूप, उत्पत्ति तथा नित्यता आदि के विषय में कुछ मन्तव्य प्रकट किये हैं। क्या वेदान्त भी वेद है? इसके उत्तर में वे कहते हैं—वेदान्त भी वेद है। ब्रह्म का प्रतिपादन करते हुए भी वेदान्त वेद से पृथक् नहीं। वेद का लक्षण करते हुए उन्होंने मन्त्र तथा ब्राह्मण को वेद कहा है और बतलाया है कि ऋक् ही मन्त्र है, ब्रह्म के प्रतिपादक वचन ब्राह्मण हैं और सृष्टि आदि के प्रतिपादक वचन उन्हीं के शेष भाग (अंग) हैं।[337] जैसा कि टीकाकार ने दिखलाया है, यहाँ ऋक् शब्द उपलक्षण है। इससे यजुः तथा साम के मन्त्रों का भी ग्रहण होता है (भाष्यप्रकाश १.१.२, पृ० ६६)। इस प्रकार यह स्पष्ट ही है कि यहाँ मन्त्र, ब्राह्मण तथा उपनिषद् सभी को वेद शब्द

---

३३३. द्र०, वही, १.३.२८।

३३४. द्र०, वही, १.३.३०।

३३५. अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः।
वेदशब्देभ्य एवाऽऽदौ निर्ममे स महेश्वरः॥
वही, १.३.३०।

३३६. अणुभाष्य (चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९०५)।

३३७. वही, जन्माद्यस्य यतः, शास्त्रयोनित्वात्। ब्रह्मसूत्र, १.१.२, पृ० ६८।
वल्लभाचार्य के अणुभाष्य में ब्रह्मसूत्र के १.१.२ तथा १.१.३ दो सूत्रों को एक ह माना गया है।

३३८. वही, १.१.२, पृ० ६२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वाच्य माना गया है। 'शास्त्रयोनित्वात्' में शास्त्र शब्द का अर्थ वेद करते हुए [३३८] उन्होंने यह भी बतलाया है कि यहाँ सामान्य रूप से शास्त्र शब्द का ग्रहण इसलिये किया गया है कि जिससे पूर्वकाण्ड में स्थित पूर्व सृष्टि-प्रतिपादक वाक्यों का भी सङ्ग्रह हो जाये।[३३९]

'अतएव च नित्यत्वम्' (ब्रह्मसूत्र १.३.२९) सूत्र का भाष्य करते हुए वे कहते हैं—इसी हेतु से वेद की नित्यता सिद्ध होती है। यहां स्पष्टतः वेद की नित्यता में कई हेतु दृष्टिगोचर होते हैं; जैसे—(१) समस्त प्रपञ्च से विलक्षण होने के कारण [३४०] वेद अन्य जगत् प्रपञ्च से विलक्षण हैं; अतः नित्य हैं। (२) वेदों को ब्रह्म के निःश्वास के समान कहा गया है; अतः ब्रह्म का भी प्राण होने वाला यह वेद नित्य है।[३४१] किन्तु प्रश्न यह है यदि जगत् प्रपञ्च को वेद के शब्दों की अनुकृति अथवा वाच्य समझा जायेगा तब तो वेद में अनित्यता का सम्बन्ध होने लगेगा; क्योंकि इस प्रपञ्च के सृष्टि और प्रलय हुआ करते हैं। इस प्रश्न का उत्तर अग्रिम[३४२] सूत्र में दिया गया है। भाव यह है कि प्रपञ्च की सृष्टि और प्रलय होने पर भी पूर्व के समान ही रूप और नाम होते रहते हैं, ऐसा श्रुति तथा स्मृतियों से विदित होता है। अतः प्रवाह से नित्य होने के कारण पदार्थ भी नित्य ही हैं और वेद में अनित्यता का सम्बन्ध नहीं होता।

इस प्रकार वल्लभाचार्य ने वेद के स्वरूप और नित्यता आदि पर विचार प्रस्तुत किये हैं; किन्तु ये विचार अधिक स्पष्ट नहीं कहे जा सकते।

●●●●

---

३३९. सामान्यग्रहणं पूर्वकाण्डे पूर्वसृष्टिवाक्यानां सङ्ग्रहार्थम्। वही, १.१.२, पृ० ६२।

३४०. सर्वप्रपञ्चवैलक्षण्येन। वही, १.३.२९, पृ० ४२८।

३४१. निःश्वसितवचनाच्च। तस्याप्ययं प्राणभूतो नित्य इति। वही, १.३.२९, पृ० ४२८।

३४२. समाननामरूपत्वादावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात् स्मृतेश्च। ब्रह्मसूत्र, १.३.३०।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिच्छेद ५

ऋषि दयानन्द की दृष्टि में वेद–नित्यता

१. दयानन्द की जीवनी में वेदोत्पत्ति एवं वेद–नित्यता के सन्दर्भ

स्वामी दयानन्द की कृतियों में वेद संज्ञा, संख्या तथा वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता के विषय में अनेक स्थलों पर विचार किया गया है। इन सब का विषय के अनुसार आगे निरूपण किया जायेगा। प्रथमतः उनके जीवन-चरित में आये हुए वेदनित्यता सम्बन्धी प्रसङ्गों पर विचार करना है।

वेद और वेदोक्त धर्म पर २५ अप्रैल, १९७७ को लाहौर में जो स्वामी जी का व्याख्यान हुआ उसमें उन्होंने बतलाया—"चारों वेद अनादि हैं। जब-जब सृष्टि होती है तब-तब प्रकट होते हैं और प्रलय होने पर अन्तर्हित हो जाते हैं। वर्तमान सृष्टि के आदि में परमेश्वर ने वेदों को अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा चार ऋषियों के हृदय में प्रकट किया"।[1] अक्टूबर १८७९ में फर्रुखाबाद में स्वामी दयानन्द के पास कुछ प्रश्न भेजे गये थे जिनमें एक प्रश्न यह भी था—"परमेश्वर ने कुछ मनुष्यों ही को वेदोपदेश क्यों किया? ऐसा करने से परमेश्वर पर पक्षपात का दोष आता है।" इसके उत्तर में स्वामी दयानन्द ने बतलाया था—"चार मनुष्यों के आत्मा में वेदोपदेश करने में यह हेतु है कि उनके सदृश वा अधिक पुण्यात्मा जीव कोई भी नहीं थे। इसलिये परमेश्वर में पक्षपात कुछ भी नहीं आ सकता"।[2] उदयपुर (सितम्बर, १८८२) में मौलवी साहब के सात प्रश्नों के उत्तर देते हुए स्वामी जी ने बतलाया था—"इन्हीं ऋषियों ने परमेश्वर से वेद को सुनकर दूसरों को सुनाया...परमेश्वर ने उन्हें वेद की भाषा का भी ज्ञान दे दिया था"।[3]

---

१. द्र०, महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन-चरित, भाग-२ (आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, वि० २०१५), पृ० ३९, १२३।

२. वही, भाग-२, पृ० २०३-२०४।

३. वही, भाग-२, पृ० ३०८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानन्द ने यहाँ यह भी बताया था—वेदों को देखने और आप्त पुरुषों की साक्षी से यह माना जाता है कि ईश्वर ने चारों ऋषियों को वेद पढ़ाया।[४]

इस पर मौलवी साहब का प्रश्न था कि परमेश्वर का चार ऋषियों को वेदों की शिक्षा देना युक्ति या बुद्धि से कैसे सिद्ध होता है।[५] इसके उत्तर में स्वामी दयानन्द ने ईश्वरीय ज्ञान की सत्ता में युक्ति देते हुए यह भी दिखलाया है कि चारों ऋषियों को वेद कैसे पढ़ाये गये—१. परमेश्वर ने एक-एक ऋषि को एक-एक वेद अलग-अलग और क्रमशः पढ़ाया, २. एक ही समय में वे सारे वेद नहीं पढ़ सकते थे। उनकी बुद्धि परिमित शक्ति वाली थी, जितना समय उनकी बुद्धि के अनुसार अपेक्षित था उतने समय में ही पढ़ाया, ३. वेद का प्रकाश शब्दार्थ-सम्बन्ध-पूर्वक ऋषियों के हृदय में परमेश्वर ने किया। उसके लिये सर्व-व्यापक होने से जिह्वा आदि उपकरणों की आवश्यकता न थी। परमेश्वर ऋषियों के आत्मा में भी था। अतः उसने उनके आत्मा में शब्द और उनके अर्थों का ज्ञान दिया। यदि परमेश्वर उनके आत्मा से पृथक् होता तो शब्दों के बोलने और सुनाने की आवश्यकता होती।[६]

ऊपर एक प्रश्न के उत्तर में जो ऋषियों ने परमेश्वर से वेद को सुनकर ऐसा कहा गया था उसका अर्थ यहाँ स्पष्ट कर दिया गया है। वस्तुतः ऋषियों ने वेद के शब्दों को परमेश्वर से सुना नहीं अपितु उनके हृदय में शब्दार्थ-सम्बन्ध-पूर्वक वेद प्रकट हुए, यही स्वामी जी का अभिप्राय है।

इस प्रकार स्वामी जी ने वेदों को प्रवाह से अनादि और नित्य बतलाया है। साथ ही यह भी दिखला दिया है कि वर्तमान सृष्टि में किस प्रकार वेदों का आविर्भाव हुआ। काशीशास्त्रार्थ (१८६९ ई०) में विशुद्धानन्द स्वामी ने प्रश्न किया था कि वेद किस से उत्पन्न हुए हैं। उसके उत्तर में स्वामी दयानन्द ने कहा—वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। फिर विशुद्धानन्द स्वामी ने प्रश्न किया कि किस लक्षण वाले ईश्वर से उत्पन्न हुए हैं। इसके उत्तर में स्वामी दयानन्द ने बतलाया—सच्चिदानन्द लक्षण वाले ईश्वर से वेद प्रकाशित हुए हैं।[७]

---

४. वही, पृ० ३०९।
५. द्र०, वही, पृ० ३०९।
६. द्र०, वही, पृ० ३०९-१०।
७. काशी शास्त्रार्थ, दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह (रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, वि० २०२७), पृ० ३४-३५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदयपुर (१८८२-१८८३) में मौलवी साहब के प्रश्नों का उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द ने अनेक युक्तियों द्वारा वेदों की ईश्वरोक्तता सिद्ध की है; जैसे—(१) बिना कारण के कार्य नहीं हो सकता। अतः ज्ञान का भी कोई कारण होना चाहिए। और, यह अनादि और अनन्त होना चाहिए। ऐसा कारण परमेश्वर ही हो सकता है। जैसे परमेश्वर जगत् का निमित्त कारण है उस प्रकार वह ज्ञान का भी कारण है। यदि ऋषियों को वेद का ज्ञान, जो सृष्टि क्रम के अनुकूल है, न देता तो वह आगे को न चलता[८] (२) वेद की भाषा किसी देश व जाति विशेष की भाषा नहीं। ऐसी ही भाषा व्यापक हो सकती है न कि किसी एक देश की भाषा; जैसे आकाश किसी देश-विशेष का नहीं है इसी से सब देशों में व्यापक है। वेद की भाषा विद्या की भाषा है।[९] (३) उन्होंने इस प्रसङ्ग में यह भी बतला दिया था कि वेद संसार में सबसे प्राचीन पुस्तक है।[१०] इस विचार को उन्होंने बरेली (सितम्बर, १८७९) में पादरी स्काट से शास्त्रार्थ करते हुए वेद को ईश्वरोक्त सिद्ध करने के लिये भी प्रकट किया था—"इन्जील में बहुत भ्रममूलक बातें हैं। वेद में कोई भी ऐसी बात नहीं है, वही ईश्वरोक्त है···संसार में वेद ही सबसे प्राचीन पुस्तक है। इसे युरुप के भी सब विद्वान् मानते हैं।[११] (४) "वही पुस्तक सर्वज्ञ ईश्वरोक्त हो सकती है जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध और सृष्टि क्रम के अनुकूल हो। ऐसी पुस्तक केवल वेद ही है"।[१२]

लाहौर (१८७७) के प्रवचन में स्वामी जी ने यह बतलाया कि वेद की ११२७ शाखाएँ हैं।[१३] यहाँ उन्होंने यह भी कहा—वेदों के पढ़ने का मनुष्य मात्र का अधिकार है।[१४] इस मत का उन्होंने यजुर्वेद के मन्त्र से समर्थन भी किया है जिसका अन्यत्र उल्लेख किया जा चुका है।[१५] इसी प्रकार बदायूं (अगस्त, १८७९)

८. जी०च०, भाग २, पृ० ३०६।

९. वही, पृ० ३०८।

१०. वही, पृ० ३११।

११. वही, पृ० १८५।

१२. वही, पृ० ३१०।

१३. वही, पृ० ३९।

१४. वही, पृ० ३९-४०।

१५. द्र०, वेद तथा ऋषि दयानन्द (कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९७९), वेदाध्ययन का अधिकार, पृ० १२१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जब पं० रामप्रसाद ने यह कहा कि वेद पढ़ने का अधिकार केवल द्विजों को है और उनमें भी मुख्यतः ब्राह्मणों को। इसके प्रत्युत्तर में स्वामी जी ने कहा—"यथेमां वाचं कल्याणीम्, इत्यादि इस मन्त्र से स्पष्टरूप से सिद्ध है कि वेद पढ़ने का सबको अधिकार है"।[१६]

वेद के स्वरूप आदि का भी उन्होंने अपने जीवन में कई स्थलों पर निरूपण किया है। आर्यसमाज लाहौर की स्थापना के समय (जून, १८७७) जो आर्य-समाज के नियम निर्धारित किये गये थे उनमें तीसरा नियम था वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है।[१७] उदयपुर में (सितम्बर, १८८२) उन्होंने यह भी बतलाया था कि वेद किसी सम्प्रदाय का ग्रन्थ नहीं। साम्प्रदायिक ग्रन्थ पक्षपात से भरे होते हैं और जिसमें पक्षपात हो वही सम्प्रदाय है।[१८] इसी समय उन्होंने प्रकट कर दिया था कि वेद और ब्राह्मण भिन्न हैं। वेद के चारों ब्राह्मण ही पुराण हैं।[१९]

१८७७ ई० में जालन्धर[२०] में मौलवी अहमद हुसेन के साथ हुए शास्त्रार्थ के अवसर पर भी स्वामी जी ने यह बतलाया था—"मेरा अभिप्राय इस विषय के बारे में कि यह पुस्तक ईश्वरकृत है, यह है कि जैसा ईश्वर का स्वभाव, जैसा सृष्टि का क्रम प्रत्यक्षादि प्रमाणों से सिद्ध है और अनन्त विद्या का प्रकाश निर्दोषता आदि है···ईश्वर की रचना सिद्ध करने में सब मुहरे हैं"।[२१] इसी प्रकार उदयपुर के शास्त्रार्थ (१८८२) में उन्होंने वेद-सम्बन्धी अनेक मन्तव्यों को प्रकट किया था जिनमें से कुछ का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। यहाँ उन्होंने यह भी कहा था—(१) 'वेद की साक्षी स्वयं वेद से प्रकट है"।[२२] (२) "पुराण जो पुरानी पुस्तकें हैं, अर्थात् वेद के चार ब्राह्मण हैं—वह वहीं तक सत्य हैं जहाँ तक वेद के विरुद्ध न हों।"[२३] (३) "सूर्यादि सृष्टि के समान ही वेदों से सबको लाभ

---

१६. जीवनचरित-२, पृ० १८१।

१७. वही, पृ० ५२।

१८. वही, पृ० ३०८।

१९. वही, पृ० ३१०।

२०. द्र०, दयानन्द-शास्त्रार्थ-संग्रह (रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत, वि० २०२७), सम्पादकीय, पृ० १०५।

२१. वही, पृ० १११।

२२. वही, पृ० १६५।

२३. वही, पृ० २०१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचता है, क्योंकि सब मतों और विद्या की पुस्तकों का आदि कारण वेद ही है।[२४] (४) मनुष्य की उत्पत्ति का आदिकाल ही ऋषियों की वेद-प्राप्ति का समय है।[२५]

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने अपने व्याख्यानों तथा शास्त्रार्थों में वेद-सम्बन्धी विविध मन्तव्यों का निरूपण किया था। उनके वे मन्तव्य उनकी कृतियों में व्यवस्थित रूप से दृष्टिगोचर होते हैं जिनका आगे विवेचन किया जा रहा है।

२. वेद में इतिहास और वेदनित्यता

ऋषि दयानन्द की दृष्टि से वेद की नित्यता पर विचार करने से पूर्व यह निरूपण करना अनिवार्य है कि स्वामी जी की दृष्टि में वेद में इतिहास किंवा अनित्य इतिहास नहीं है।

वेद में अनित्य इतिहास मानने वालों की ओर से निम्न प्रकार की युक्तियाँ प्रस्तुत की जाती हैं[२६]—(१) वेद के सूक्तों के साथ अनेक ऋषियों के नाम जुड़े हुए हैं जिन्हें उनका कर्त्ता कहा जा सकता है। साथ ही उन ऋषियों के वर्णन भी वेदों में उपलब्ध होते हैं, (२) वेद में लौकिक इतिहास के अनेक व्यक्तियों के नाम मिलते हैं, (३) वेद में गङ्गा जैसी नदियों, पर्वतों तथा नगरों के नाम पाये जाते हैं, (४) यहाँ कुछ विशेष व्यक्तियों के परस्पर संवादों का उल्लेख है, (५) क्रिया पदों के ऐसे रूपों का प्रयोग किया गया है जो भूतकाल में प्रचलित हैं, इत्यादि। इन युक्तियों पर संक्षेप में विचार करते हुए स्वामी दयानन्द की दृष्टि से यह विवेचन करना उचित होगा कि क्या इनसे वेद में अनित्य इतिहास सिद्ध किया जा सकता है।

पहली युक्ति है कि मन्त्र और सूक्तों के साथ अनेक ऋषियों के नाम जुड़े हैं साथ ही मन्त्रों पर जो ऋषि लिखे गये हैं उनके नामों का उल्लेख उन्हीं मन्त्रों या अन्य मन्त्रों में उपलब्ध होता है। अतः ये ऋषि उन मन्त्रों तथा सूक्तों के

---

२४. वही, पृ० २०४।

२५. वही, पृ० २०५।

२६. द्र०, (१) जयदेव शर्मा विद्यालंकार, क्या वेद में इतिहास है (आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, १९५४), पृ० १०।
(२) आचार्य वैद्यनाथ, वैदिक इतिहासविमर्श (आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, १९६१), पृ० ७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्ता कहे जा सकते हैं। स्वामी दयानन्द के सामने जो इस प्रकार के प्रश्न आये उनका उत्तर उनके ग्रन्थों में मिल जाता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इस प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामी जी कहते हैं कि जब मन्त्रों पर लिखे ऋषियों की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी तब ब्रह्मा आदि के समय वेद वर्तमान थे और ब्रह्मा ने भी अग्नि, वायु, रवि और अङ्गिरा से वेदों को पढ़ा था तो व्यासादि की कथा ही क्या है।[२७] निरुक्त से प्रतीत होता है कि दर्शन करने वाले को ऋषि कहते हैं—ऋषिर्दर्शनात्।[२८] इसी के समानार्थक उक्ति भी प्रसिद्ध है—'ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः'। इस उक्ति का स्वामी दयानन्द ने भी सृष्टि-विद्या के प्रकरण में मन्त्र की व्याख्या करते हुए प्रयोग किया है।[२९] उन्होंने वहाँ आर्य भाषा में इसका अर्थ किया है—ऋषि लोग जो मन्त्रों के अर्थ जानने वाले।[३०] स्वामी दयानन्द ने अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि ऋषि अर्थ-द्रष्टा थे। वे कहते हैं—"ईश्वर जिस समय आदि सृष्टि में वेदों का प्रकाश कर चुका तभी से प्राचीन ऋषि लोग वेद मन्त्रों के अर्थों का विचार करने लगे, फिर उनमें से जिस-जिस मन्त्र का अर्थ जिस-जिस ऋषि ने प्रकाशित किया उस उसका नाम उसी मन्त्र के साथ स्मरण के लिये लिखा गया है।"[३१] अतः मन्त्रों या सूक्तों पर जो ऋषि लिखे हैं वे उनके कर्त्ता नहीं हैं।

मन्त्रों में जो ऋषि के नाम जैसे पद दिखलाई देते हैं वे भी यौगिक शब्द हैं; जैसे 'त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्' (यजुर्वेद, ३.६२)। यहाँ चक्षुः को जमदग्नि कहा गया है और प्राण को कश्यप। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण से विदित होता है—चक्षुर्वै जमदग्निर्ऋषिः (शत० ८.१ २.३). कश्यपो वै कूर्मः प्राणो वै कूर्मः (शत० ७.५.१.५,७)। इसी प्रकार स्वामी जी ने ऋषि शब्द के अन्य अनेक यौगिक अर्थ दिखलाये हैं और व्यक्तिवाचके से प्रतीत होने वाले ऋषि नामों को भी यौगिक माना है। इसका विशद विवेचन अन्यत्र किया जा चुका है।[३२]

---

२७. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, १९६७), वेदोत्पत्ति, पृ० २१।

२८. निरुक्त, २.११।

२९. द्र०, ऋग्वेदादि०, सृष्टिविद्या, पृ० १३९।

३०. वही, पृ० १३९।

३१. वही, प्रश्नोत्तरविषय, पृ० ३८९-९०।

३२. द्र०, वेद तथा ऋषि दयानन्द, सूक्तों तथा मन्त्रों के ऋषि, ऋषि शब्द के अन्यान्य अर्थ, पृ० ६९-७३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो वेद में इतिहास सिद्ध करने के लिये पूर्वपक्षी ने कहा है कि यहाँ लौकिक इतिहास के अनेक नाम मिलते हैं उसके निराकरण में स्वामी जी का उपर्युक्त उत्तर ही पर्याप्त है। उनके अनुसार वे नाम यौगिक ही मानने होंगे।

जो यह कहा गया है कि वेद में गङ्गा आदि के नाम पाये जाते हैं[33] इससे वेद में इतिहास सिद्ध होता है यह भी युक्तियुक्त नहीं; क्योंकि ये गङ्गा, यमुना आदि यहाँ किसी नदी-विशेष के नाम नहीं हैं, अपितु इडा, पिङ्गला आदि नाड़ियों के नाम हैं।[34] ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में ब्रह्मा-सरस्वती, इन्द्र-अहल्या, इन्द्र-वृत्रासुर आदि की अनेक कथाओं का यौगिक अर्थ में सामञ्जस्य दिखलाते हुए इनमें आये नामों का यौगिक अर्थ बतलाया है।[35]

कुछ संवादों और आख्यानों को देखकर भी यह नहीं कहा जा सकता है कि वेद में इतिहास है; क्योंकि संवादों में आये हुए नाम यौगिक हैं और उनसे प्रकट होने वाला आख्यान भी यौगिक अर्थ को सूचित करता है। जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है इन संवादों में भी स्वामी जी की दृष्टि से यौगिक अर्थ ही होगा। इन संवादों में से कई संवादों का सन्दर्भ निरुक्त में भी आया है। उदाहरणार्थ एक स्थल पर उर्वशी का उल्लेख हुआ है। वहाँ निरुक्तकार ने कहा है—उर्वश्यप्सरा। उर्वभ्यश्नुते। ऊरुभ्यामश्नुते। उरुर्वा वशोऽस्याः।[36] अर्थात् उर्वशी अप्सरा है जो उरु अर्थात् बहुतों को व्याप्त करती है अथवा ऊरुओं से व्याप्त होती है अथवा महती कामनावाली है। यहाँ अप्सरा शब्द का भी यौगिक अर्थ माना गया है। इसी प्रकार विश्वामित्र आदि शब्द जो वेद में आये हैं उन सब का भी यौगिक अर्थ दिखलाया गया है।[37] एक प्रसिद्ध संवाद यम-यमी सूक्त का है जिसके विषय में कुछ आधुनिक विद्वानों का विचार है कि इस संवाद से प्राचीन आर्यों के किन्हीं रीति-रिवाजों का परिचय मिलता है। इस प्रकार के सूक्तों की भी यौगिक व्याख्याओं से सगति लगती है और उनमें किसी इतिहास की गन्ध नहीं मिलती।

जो वेद में भाषा के भूतकाल के प्रयोग को देख कर यह अनुमान किया जाता है कि वेद में किन्हीं का इतिहास है। इस विषय में स्वामी दयानन्द ने

---

३३. इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति। ऋग्वेद, १०.७५.५।

३४. द्र०, ऋग्वेदादि०, ग्रन्थप्रामाण्याप्रामाण्य, पृ० ३३८।

३५. द्र०, वही, पृ० ३१९ तथा आगे।

३६. निरुक्त, ५.१३।

३७. द्र०, वही, २.२४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कितने ही आख्यानों की यौगिक अर्थ में संगति लगाकर यह स्पष्ट कर दिया है कि वहाँ किसी व्यक्ति-विशेष का उल्लेख नहीं है, जैसे 'इन्द्रस्य नु वीर्याणि'[३८] इत्यादि मन्त्र में चकार, अहन्, ततर्द, अभिनत् चार क्रियापद ऐसे हैं कि जहाँ भूतकाल की क्रियाओं का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। वहाँ वर्षा का वर्णन है जिसकी भूतकाल तथा वर्तमानकाल दोनों में संगति लगाई जा सकती है। इसीलिये ऋषि दयानन्द ने प्रस्तुत मन्त्र तथा अग्रिम मन्त्र में भूतकाल तथा वर्तमानकाल दोनों का अर्थ कर दिया है। किन्तु कुछ स्थल ऐसे भी हैं जहाँ वे क्रियाएँ जो वस्तुतः वर्तमान काल के अर्थ में प्रयुक्त हुई हैं आकृति से भूतकाल की प्रतीत होती है। जैसे 'पिता दुहितुर्गर्भमाधात्' यहाँ आधात् का अर्थ स्वामी जी ने 'आ समन्ताद् धारयति' किया है।[४०]

इस प्रकार ऋषि दयानन्द की दृष्टि से वेद में ऐसे कोई सङ्केत नहीं मिलते जिनसे यह सिद्ध किया जा सके कि वेद में इतिहास—अनित्य इतिहास है। यहाँ जो इतिहास सा भासित होता है उसके विषय में दो बातें हैं—(१) जो शब्द व्यक्तिवाचक से प्रतीत होते हैं वे शब्द यौगिक है, विश्वामित्र, जमदग्नि आदि नाम ऊपर दिखाये गये हैं। इसी प्रकार, वसिष्ठ, अयोध्या, इत्यादि शब्दों के बारे में भी कहा जा सकता है। अथवा (२) जो किन्हीं व्यक्तियों के आचरण-सा प्रतीत होता है; वस्तुतः वह प्रकृति के सतत होने वाले कार्यों का वर्णन है; जैसे अभी ऊपर दिखलाया गया है कि इन्द्रवृत्र की कथा में वर्षा की प्राकृतिक घटना का वर्णन है।

३. वेद और वेदनित्यता का अभिप्राय

दयानन्द बतलाते हैं—ऋग्वेद आदि के लिये वेद नाम के समान ही श्रुति छन्द, निगम आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। उन्होंने इन शब्दों की व्युत्पत्ति दिखलाते हुए इनके प्रयोग के स्थलों पर विस्तृत रूप से विचार किया है जिसका निरूपण किया जा चुका है।[४१] वेद के स्वरूप, वेद की इयत्ता तथा संख्या आदि पर भी उन्होंने विचार किया है; जैसे "वेद किन ग्रन्थों का नाम है ?

---

३८. इन्द्रस्य नु वीर्य्याणि प्रवोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्। ऋग्वेद, १.३२.१।

३९. वही, १.१६४,३३।

४०. ऋग्वेदादि०, पृ० ३२०।

४१. द्र०, वेद तथा ऋषि दयानन्द, वेद और उसके विविध नाम; पृ० १-५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋक्, यजु, साम और अथर्व मन्त्रसंहिताओं का अन्य का नहीं"।[४२] उन्होंने स्थान-स्थान पर चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया है।[४३] चारों वेदों के विभाग, स्थान तथा विषय आदि पर विचार करते हुए चारों वेदों के नामों को प्रतिपाद्य विषय के अनुसार अन्वर्थक माना है।[४४]

वेदों की इयत्ता क्या है? दयानन्द की दृष्टि में मन्त्र-संहिताएँ ही वेद हैं। शाखाएँ वेद-व्याख्यान है।[४५] उन्होंने शाकल संहिता को ऋग्वेद माना है, माध्यन्दिन सहिता को यजुर्वेद, कौथुमसंहिता को सामवेद और शौनकसहिता को अथर्ववेद; इनसे भिन्न सभी वेदों की कुल ११२७ शाखाएँ स्वीकार की हैं। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने जो ११३१ शाखाओं का उल्लेख किया है उनमें से उपर्युक्त चारों संहिताओं को पृथक् कर देने पर ११२७ शाखाएं शेष रहती हैं। स्वामी जी की दृष्टि में शाखाएं ईश्वरकृत नहीं, ऋषि-प्रोक्त हैं।[४६] इस विषय में अग्रिम अनुसन्धान अपेक्षित है।

दयानन्द के अनुसार ब्राह्मण वेद नहीं। इसके लिये इस प्रकार के हेतु दिये गये हैं—वे पुराणेतिहास-संज्ञक हैं। वेद के व्याख्यान हैं, ऋषियों द्वारा रचित हैं, ईश्वरोक्त नहीं हैं, सभी ऋषियों ने उनका वेद नाम नहीं माना, वे मनुष्य-बुद्धि द्वारा रचे गये हैं।[४७] स्वामी जी के ग्रन्थों में विशेषतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में इसका विस्तार से निरूपण किया गया है[४८] यह अन्यत्र दिखलाया जा चुका है।[४९] इसी प्रकार उनके मत में उपनिषद् भी वेद नहीं हैं। केवल यजुर्वेद का ४०वां अध्याय ईशावास्य उपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है वही वेद है।[५०] इस प्रकार स्वामी दयानन्द के मत में केवल मन्त्र-संहिता ही वेद हैं। शाखाएँ, ब्राह्मण तथा उपनिषद् वेद नहीं।

---

४२. सत्यार्थप्रकाश (रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, सोनीपत, १९७२), समु० ७, पृ० ३००।

४३. द्र०, वेद तथा ऋषि दयानन्द, पृ० १०।

४४. द्र०, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका प्रश्नोत्तरविषय, पृ० ३८५-३९३; वेद तथा ऋषि दयानन्द, पृ० ५-८।

४५. ऋग्वेदादि०, ग्रन्थप्रामाण्य०, पृ० ३११।

४६. वेद तथा ऋषि दयानन्द, वेदों की शाखाएँ, पृ० १२-१४।

४७. ऋग्वेदादि०, वेदसंज्ञाविचार, पृ० ९१ सं०।

४८. द्र०, वही, पृ० ९१-१०१।

४९. द्र०, वेद तथा ऋषि दयानन्द, ब्राह्मणग्रन्थ वेद नहीं, पृ० १५-३१।

५०. द्र०, (क) भ्रमोच्छेदन, दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह, पृ० २६१।
(ख) वेद तथा ऋषि दयानन्द, क्या उपनिषद् श्रुति हैं? पृ० ३१-३३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद की नित्यता के विषय में स्वामी दयानन्द ने विस्तार से विचार किया है, उसमें अनेक युक्तियां तथा प्रमाण प्रस्तुत किये हैं जिनका आगे विवेचन किया जा रहा है। प्रथम तो स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद-नित्यता क्या है ? इसी पर विचार करना उचित प्रतीत होता है। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि वेद क दो रूप हैं—एक ज्ञान रूप और दूसरा शब्द रूप। स्वामी दयानन्द ने दोनों ही रूपों में वेदों को नित्य माना है। नित्य का लक्षण दिखलाते हुए स्वामी जी ने 'सदकारणवन्नित्यम्' (वै०सू० ४.१.१) यह सूत्र उद्धृत किया है तथा बतलाया हैं कि जो कार्य कारण से उत्पन्न हो कर विद्यमान होता है वह अनित्य होता है; क्योंकि वह उत्पत्ति से पहले नहीं होता। जो किसी का भी कार्य नहीं होता, किन्तु सदा ही कारण रूप में रहता है वह नित्य कहा जाता है।[५१]

वेद ज्ञानरूप में नित्य हैं—यह इस कथन से विदित होता है—"इस कारण से ईश्वर के ज्ञानरूप होने से हम वेदों को नित्य मानते हैं।"[५२] शब्द रूप में भी वेद नित्य हैं। स्वामी दयानन्द के मत में वेदों के शब्द, छन्द, स्वर इत्यादि सभी नित्य हैं—"ऋग्वेद से ले के चारों वेदों की संहिता अब जिस प्रकार की हैं इनमें शब्द, अर्थ, सम्बन्ध, पद और अक्षरों का जिस क्रम से वर्तमान है इसी प्रकार का क्रम सब दिन बना रहता है।"[५३] उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है, यह ठीक है कि वेद की ये पुस्तकें नाशवान् हैं, नित्य नहीं। किन्तु इनके अनित्य होने से वेद अनित्य नहीं हो सकता; जैसे इस कल्प में वेदों के शब्द, अक्षर, अर्थ और पद-पदार्थ का सम्बन्ध है उसी प्रकार पहले भी थे, आगे भी होंगे; क्योंकि जो ईश्वर की विद्या है सो नित्य एक ही रस बनी रहती है, उनके एक अक्षर का भी विपरीतभाव कभी नहीं होता।[५४]

इस प्रकार स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद-नित्यता का अभिप्राय है—वेद ज्ञान रूप में तथा शब्दरूप में नित्य हैं। वेदों की आनुपूर्वी पद, छन्द, स्वर तथा पद-पदार्थ का सम्बन्ध सभी नित्य हैं। दूसरी ओर स्वामी जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के वेदोत्पत्ति विषय में वेदों की उत्पत्ति का विस्तृत वर्णन किया है। अब देखना यह है कि इस वेदोत्पत्ति का वेदनित्यता के साथ कैसे सामञ्जस्य किया जा सकता है।

---

५१. ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ४४ सं०।

५२. अतः कारणादीश्वरविद्यामयत्वेन वेदानां नित्यत्वं वयं मन्यामहे।
ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ३२।

५३. वही, वेदनित्यत्व, पृ० ३२-३३।

५४. वही, पृ० ३२ सं० तथा आर्य भाषा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४. वेदनित्यता तथा वेदोत्पत्ति का सामञ्जस्य

वेदोत्पत्ति का वर्णन करते हुए स्वामी दयानन्द ने 'तस्माद् यज्ञात्'[५५] इत्यादि मन्त्र तथा 'यस्मादृचो अपातक्षन्'[५६] इत्यादि मन्त्र प्रमाण रूप में प्रस्तुत किये हैं।[५७] उन्होंने ब्राह्मणों के वचन भी वेदों की उत्पत्ति के विषय में दिखलाये हैं; जैसे 'एवं वा अरेऽस्य महतो भूतस्य नि:श्वसितमेतद्यदृग्वेदो यजुर्वेद: सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस:'।[५८] साथ ही यह भी बतलाया है कि जैसे शरीर से श्वास निकल कर फिर उसमें ही प्रविष्ट हो जाती है उसी प्रकार ईश्वर से वेदों का प्रादुर्भाव तिरोभाव होता है, यह निश्चित है।[५९] अतः यह कहा जा सकता है कि यहाँ उत्पत्ति शब्द से वेदों का प्रादुर्भाव ही कहा गया है।

स्वामी दयानन्द भारतीय दर्शनों के सभी मतों का समन्वय करते हैं अतः उनकी दृष्टि में प्रादुर्भाव-तिरोभाव अथवा उत्पत्ति-विनाश केवल दृष्टिकोण का भेद है। एक सन्दर्भ से स्वामी जी के इस मन्तव्य का स्पष्टीकरण हो जाता है। ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में स्वामी जी ने बतलाया है कि सबके उपकार के लिये सभी मनुष्यों को यज्ञ करना चाहिये। इस पर शङ्का होती है कि अग्नि में डालने से कस्तूरी आदि सुगन्धित द्रव्यों का विनाश हो जाता है, फिर यज्ञ उपकार के लिये कैसे हो सकता है?[६०] इसके उत्तर में स्वामी दयानन्द कहते हैं—किसी वस्तु का अत्यन्त विनाश नहीं हो सकता। विनाश तो उसे माना जाता है जो वस्तु दृश्य होकर फिर न दिखलाई दे।[६१] इसे और स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है—जैसे कोई एक मृत्पिण्ड को चूरा करके वेगयुक्त वायु में भुजाओं के वेग

---

५५. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋच: सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥ यजुर्वेद, ३१.७।

५६. यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतम: स्विदेव स:॥ अथर्ववेद, १०.७.२०।

५७. द्र०, ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्तिविषय, पृ०, १०-३०।

५८. शत०, १४. ५.४.१०; ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्तिविषय, पृ० ११।

५९. यथा शरीराच्छ्वासो नि:सृत्य पुनस्तदेव प्रविशति, तथैवेश्वराद् वेदानां प्रादुर्भावतिरोभावौ भवत इति निश्चय:। वही, पृ० ११।

६०. द्र०, वही, पृ० ५८-५९।

६१. नात्यन्तो विनाश: कस्यापि संभवति। विनाशो हि यद् दृश्यं भूत्वा पुनर्न दृश्येतेति विज्ञायते। वही, पृ० ५९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से आकाश में फेंक देता है तो उसका नाश हो गया यह उपचारतः प्रयोग किया जाता है; क्योंकि वह चक्षु से नहीं दिखाई देता। णश् अदर्शने इस धातु से घञ् प्रत्यय करके यह नाश शब्द सिद्ध होता है। इसीलिये बाह्य इन्द्रिय के द्वारा अदर्शन ही नाश हो सकता है।[६२]

वेदोत्पत्ति का क्या अभिप्राय है? इसे स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं—"सृष्टि के आदि में ईश्वर वेदों को उत्पन्न करके संसार में प्रकाश करता है और प्रलय में संसार में वेद नहीं रहते, परन्तु उसके ज्ञान के भीतर वे सदा बने रहते हैं, बीजाङ्कुरवत्। जैसे बीज में अङ्कुर प्रथम ही रहता है, वही वृक्ष रूप होके फिर भी बीज के भीतर रहता है, इसी प्रकार से वेद भी ईश्वर के ज्ञान में सब दिन बने रहते हैं, उनका नाश कभी नहीं होता; क्योंकि वह ईश्वर की विद्या है, इससे इनको नित्य ही जानना।"[६३] इस प्रकार सृष्टि के आदि में ईश्वर जो वेदों का प्रकाश करता है वही वेदोत्पत्ति कही गई है। स्वामी दयानन्द ने जो वेदों की उत्पत्ति का समय दिया है[६४], वह वर्तमान सृष्टि में वेदों के प्रकाशित होने का समय बतलाया गया है। यह कहा जा सकता है कि वर्तमान सृष्टि-रचना को जितना समय हुआ है उतना ही वेदों की उत्पत्ति या प्रादुर्भाव को हुआ है।

स्वामी जी के अनुसार वेदों का प्रकाश करने वाला ईश्वर है। जिस प्रकार भारतीय दर्शन के अनेक विद्वान् शङ्का करते रहे हैं कि शरीर-रहित होने से ईश्वर वेदों की रचना नहीं कर सकता, इसी प्रकार की शङ्का स्वामी जी के सामने भी उपस्थित हुई है। इसका समाधान करते हुए स्वामी जी ने कतिपय मन्तव्यों को स्पष्ट किया है; जैसे—(१) ईश्वर के उपदेश के विना मनुष्यों को ग्रन्थ-रचना का सामर्थ्य नहीं हो सकता। अतः ईश्वरीय ज्ञान का होना आवश्यक है।[६५] (२) ईश्वर में अनन्त विद्या है। वह परोपकारी है। अतः मनुष्यों के लिये वेद-विद्या का उपदेश करता ही है।[६६] सर्वशक्तिमान् ईश्वर ने शरीर न होते हुए भी अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा चारों ऋषियों के ज्ञान में वेदों की प्रेरणा दी, इसमें ब्राह्मण ग्रन्थ भी प्रमाण हैं—'तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा

---

६२. द्र०, वही, पृ० ६१ सं०।
६३. वही, पृ० १२-१३।
६४. वही, पृ० २५-२६।
६५. द्र०, वही, पृ० १४-१५।
६६. द्र० वही, पृ० १६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अजायन्ताग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात् सामवेदः।[६७] इसी प्रकार उन्होंने मनुस्मृति को भी इस विषय में प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है।[६८] (४) स्वामी दयानन्द ने यह भी दिखलाया है कि ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी क्या है और उस के अनुसार वेद को ही केवल वेद को ही ईश्वरीय ज्ञान कहा जा सकता है।[६९]

वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं या ईश्वरप्रणीत हैं, इस विषय में स्वामी दयानन्द के दृष्टिकोण को कुछ विस्तार से निरूपित करना आवश्यक है। स्वामी जी कहते हैं—"जैसा ईश्वर का निर्भ्रम ज्ञान वैसा जिस पुस्तक में भ्रान्तिरहित ज्ञान का प्रतिपादन हो वह ईश्वरोक्त।"[७०] उनकी दृष्टि से ईश्वरीय ज्ञान में निम्न प्रकार की विशेषताएँ होती हैं—(१) वह ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल होता है, (२) उसमें सृष्टि-क्रम के विरुद्ध कथन नहीं होता, (३) वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के विरुद्ध नहीं होता, (४) आप्तों के स्वभाव एवं व्यवहार के विपरीत नहीं होता और (५) शुद्धात्मा के स्वभाव के विरुद्ध नहीं होता। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में इन सभी का निरूपण किया है।[७१]

स्वामी दयानन्द वेद को सब सत्य विद्याओं का पुस्तक मानते हैं। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय उल्लास में जो सत्य की कसौटी दिखलाई है, उन सभी कसौटियों को वेद पर भी घटित किया है। उनका विचार है कि उपर्युक्त कसौटियों पर वेद ही खरा उतरता है। अन्य धर्म पुस्तकें इन कसौटियों पर पूरी नहीं उतरतीं अतः वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है—"इस प्रकार के वेद हैं, अन्य बाइबल कुरान आदि पुस्तकें नहीं।"[७२] बाइबल कुरान आदि को इस प्रकार का ग्रन्थ क्यों नहीं माना जा सकता? इसका विवेचन स्वामी जी ने सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें तथा चौदहवें समुल्लास में किया है।[७३] वेद ईश्वर-प्रणीत है, इस मन्तव्य को स्वामीजी ने

---

६७. शत०, ११.५.२.३; ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्ति, पृ० १८।

६८. अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्॥
अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः॥
मनु०, १.२३, २.१५१; ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्ति, पृ० २१।

६९. द्र०, (१) सत्यार्थप्रकाश, समु० ७, पृ० २९७ तथा आगे।
(२) वेद तथा ऋषि दयानन्द, ईश्वरीय ज्ञान और उसकी कसौटी, पृ० ३५-३८।

७०. सत्यार्थप्रकाश, समु० ७, पृ० २९७।

७१. वही, समु० ७, पृ० २९७।

७२. वही, समु० ७, पृ० २९७।

७३. इसकी स्पष्ट व्याख्या बाइबल और कुरान के प्रकरण में तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में की जायगी। वही, समु० ७, पृ० २९७-२९८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्यों का सनातन सिद्धान्त माना है —"आर्य लोग सनातन से युक्ति-प्रमाण सहित वेदों को परमेश्वरकृत मानते बराबर चले आये हैं।"[७४]

दयानन्द से पूर्व कई आचार्यों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि वेद ही ईश्वर-प्रणीत हैं अन्य ग्रन्थ नहीं। हाँ, उनके सामने बौद्ध आदि मतों के ग्रन्थ हो विद्यमान थे, बाइबल और कुरान नहीं, अतः उन्होंने बौद्ध ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है, जैसा कि ऊपर दिखलाया जा चुका है।[७५] वाचस्पति मिश्र ने अनेक युक्तियाँ देते हुए यह सिद्ध किया था कि बौद्ध आदि के आगम ईश्वर-प्रणीत नहीं हो सकते, वेद ही ईश्वर-प्रणीत हैं।[७६] इस प्रकार की स्थापनाओं का बौद्ध आदि के द्वारा प्रबल युक्तियों से खण्डन भी किया गया था, यह भी दिखलाया जा चुका है।[७७]

स्वामी दयानन्द ने वेद ईश्वरीय ज्ञान है, इस मन्तव्य में होने वाली अनेक शङ्काओं का समाधान भी किया है। उदाहरणार्थ (१) कुछ जनों का विश्वास है कि वेदों को ब्रह्मा ने बनाया। इसके विषय में स्वामी जी कहते हैं कि प्रमाण के अभाव में इस मत को स्वीकार नहीं किया जा सकता।[७८] (२) एक धारणा है कि व्यास जी ने चारों वेदों की संहिताओं का संग्रह किया है[७९], इसका निराकरण करते हुए स्वामी जी कहते हैं—'इस प्रकार के इतिहासों को भी मिथ्या ही जानना चाहिये'[८०], (३) आधुनिक विद्वानों का एक प्रबल पक्ष यह है कि समय-समय पर ऋषियों ने वेदों की रचना की। कौन से ऋषियों ने? जो सूक्तों और मन्त्रों पर लिखे जाते हैं। इसका परिहार करते हुए स्वामी जी ने कहा है जब मन्त्रों पर लिखे ऋषियों की उत्पत्ति भी नहीं हुई थी तब ब्रह्मा आदि के समय वेद विद्यमान थे। ब्रह्मा आदि ने अग्नि आदि ऋषियों से वेदों का अध्ययन किया था, फिर अन्य व्यासादि ऋषियों की तो बात ही क्या है?[८१]

---

७४. भ्रान्तिनिवारण, दयानन्दीयलघुग्रन्थसंग्रह, पृ० १९९।

७५. द्र०, यही, परि० ४ अनु० २ (ग)।

७६. न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका, न्यायसूत्र, २.१.६८ (६९)।

७७. द्र०, यही, परि० ४ अनु० १ (ख) (ग)।

७८. द्र०, ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्ति, पृ० २०।

७९. वही, पृ० २१।

८०. वही, पृ० २१।

८१. द्र०, वही, पृ० २१; वेद तथा ऋषि दयानन्द, पृ० ३८-३९।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार अन्य अनेक युक्तियों से स्वामी दयानन्द ने यह सिद्ध किया है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं, ईश्वरोक्त हैं। इस विषय में उन्होंने वेद, उपनिषद् तथा दर्शन ग्रन्थों के प्रमाण भी दिखाये हैं।[८२]

अब प्रश्न यह है कि यदि वेद ईश्वरोक्त हैं, ईश्वर-प्रणीत हैं तो वे नित्य कैसे हैं? जैसा कि अभी ऊपर कहा जा चुका है, प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर पूर्व सृष्टि के समान ही वेदों की रचना किया करता है। प्रलयकाल में भी वे ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान रहते हैं। अतः वेदों के ईश्वरोक्त होने पर भी उन्हें नित्य कहा जा सकता है। स्वामी दयानन्द ने इस विषय में एक अन्य युक्ति भी दी है। ईश्वर से वेदों की उत्पत्ति मानने पर उनकी स्वतः ही नित्यता सिद्ध हो जाती है; क्योंकि ईश्वर का सभी सामर्थ्य नित्य है। इस प्रकार की युक्तियों पर आगे वेद-नित्यता के सन्दर्भ में विचार किया जायेगा। उपर्युक्त विवेचन क आधार पर तो यही कहना अभीष्ट है कि स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेदोत्पत्ति का वेद-नित्यता से कोई विरोध नहीं है।

५. वेद-नित्यता में युक्तियाँ

स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेदों का ईश्वरोक्त होना या ईश्वरप्रणीत होना वेदनित्यता में प्रमुख साधन कहा जा सकता है, उन्होंने कई स्थलों पर इस मन्तव्य को स्पष्ट किया है। सत्यार्थप्रकाश में वे कहते हैं—

प्रश्न—वेद नित्य हैं या अनित्य?

उत्तर—नित्य हैं, क्योंकि परमेश्वर के नित्य होने से उसके ज्ञानादि गुण भी नित्य हैं।[८३]

स्वामी जी ने कई स्थलों पर इस प्रकार का भाव प्रकट किया है कि नित्य वस्तु के गुण भी नित्य होते हैं। इस पर तर्कबुद्धि से यह शङ्का होती है कि नित्य वस्तु क गुण नित्य होते हैं, यह नियम नहीं बन सकता। क्यों? आत्मा नित्य है किन्तु न्याय-वैशेषिक की दृष्टि से उसके ज्ञान आदि गुण त्रिक्षणावस्थायी (तीन क्षण रहने वाले हैं); इसी प्रकार नित्य होने वाले पार्थिव परमाणु के रूप आदि भी अनित्य हो सकते हैं। कुछ विचार करने पर इस शङ्का का समाधान सहज ही हो जाता है।

---

८२. द्र०, ऋग्वेदादि०, वेदोत्पत्तिविषय, वेद तथा ऋषि दयानन्द, वद ईश्वरीय ज्ञान है, पृ० ३५-५४।

८३. सत्यार्थप्रकाश, समु० ७, पृ० ३०२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि आत्मा के ज्ञान आदि गुण न्याय-वैशेषिक की दृष्टि से अनित्य हैं तथापि आत्मा का जो ज्ञान करने का स्वभाव है वह तो सदा ही बना रहता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि ज्ञान न करते समय भी आत्मा में ज्ञान की शक्ति विद्यमान ही रहती है। जड़ जगत् के उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है। यदि नित्य परमाणु के कृष्ण आदि रूप को नाशवान् माना जाये—अनित्य कहा जाये तो भी उसमें कोई न कोई रूप सदा ही विद्यमान रहता है अतः नित्य वस्तु के गुण नित्य हैं, यह समझ में आ सकता है।

जहाँ तक ईश्वर के ज्ञान की नित्यता का प्रश्न है, स्वामी दयानन्द की दृष्टि में ईश्वर निराकार है। उसके ज्ञान क्रिया आदि एकरस रहते हैं नित्य हैं। इस जगत् की नियामक शक्ति के रूप में ही ईश्वर के स्वरूप को सोचा जा सकता है। प्रलय काल में उस शक्ति के ज्ञान आदि गुण सूक्ष्म रूप में विद्यमान रहा करते हैं अतः ईश्वर के गुण नित्य हैं, यह स्वीकार्य ही है।

भारतीय विचारकों ने ईश्वर के स्वरूप पर विचार करते हुए ईश्वर की ज्ञान तथा क्रिया को नित्य माना भी है। योगसूत्र के व्यासभाष्य में कहा गया है—'स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः'—वह (ईश्वर) तो सदा ही मुक्त है सदा ही ऐश्वर्य सम्पन्न है।[८४] इसकी व्याख्या करते हुए वाचस्पति मिश्र लिखते हैं—ऐश्वर्य का अर्थ है ज्ञान-क्रिया-शक्तिसम्पदा।[८५] इससे यह विदित होता है कि योग भाष्य आदि के अनुसार भी ईश्वर का ज्ञान नित्य है। नित्य का स्वरूप दिखलाते हुए स्वामी जी कहते हैं कि जो नित्य होता है वह उत्पत्ति और विनाश से पृथक होता है।[८६] इसके आगे उन्होंने उत्पत्ति और विनाश की व्याख्या करते हुए यह दिखलाया है कि ईश्वर एकरस है, उसमें उत्पत्ति और विनाश का स्पर्श भी नहीं हो सकता। इस प्रकार के सदा निर्विकार रूप अज, अनादि, नित्य सत्य सामर्थ्य वाले ईश्वर से वेदों का प्रादुर्भाव होने के कारण और उसके ज्ञान में सदा ही विद्यमान रहने के कारण वेद भी सत्यार्थ से युक्त तथा नित्य हैं यह सिद्ध होता है।[८७]

---

८४. योगभाष्य, १.२४।

८५. तत्त्ववैशारदी, योगभाष्य, १.२४।

८६. नित्यं चोत्पत्तिविनाशाभ्यामितरद् भवितुमर्हति। ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ४४।

८७. एवं भूतस्य सदा निर्विकारस्वरूपस्याजस्यानादेर्नित्यस्य सत्यसामर्थ्यस्येश्वरस्य सकाशाद् वेदानां प्रादुर्भावाद् ज्ञाने सदैव वर्तमानत्वात् सत्यार्थवत्वं नित्यत्वं चैतेषामस्तीति सिद्धम्। वही, पृ० ४४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद ज्ञानरूप में नित्य हैं इस विषय में स्वामी दयानन्द ने अनेक स्थलों पर युक्तियां दी हैं। जैसा कि अभी कहा गया है, ईश्वर का ज्ञान होने से वेद नित्य हैं; क्योंकि ईश्वर नित्य है, उसके ज्ञान और क्रिया शक्ति भी नित्य हैं।[८८] स्वामी दयानन्द कहते हैं कि जो नित्य वस्तु है उसके नाम, गुण, कर्म भी नित्य होते हैं, उसका आधार नित्य है और आधार के विना नाम, गुण, कर्म आदि कहीं नहीं उपलब्ध होते; क्योंकि ये पराश्रित हैं।[८९] ईश्वर की विद्या होने से वेद अनित्य नहीं हो सकते। वे ईश्वर के ज्ञान में सदा ही विद्यमान रहते हैं। यह ठीक है कि यह सारा जगत् विभाग को प्राप्त होकर कार्यरूप सभी स्थूल पदार्थों का नाश हो जाता है उस समय वेद-ग्रन्थों का भी अभाव हो जाता है, किन्तु ईश्वर के ज्ञान में वेद विद्यमान रहते ही हैं।[९०]

इस प्रकार ज्ञान रूप में वेद नित्य हैं। इस विषय में प्रवल युक्ति यही है कि ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद नित्य हैं—ईश्वर का ज्ञान नित्य है, उसकी वृद्धि क्षय और विपरीतता कभी नहीं होती इस कारण से वेदों को नित्य स्वरूप ही मानना चाहिये।[९१]

स्वामी दयानन्द ने वेदों को शब्द रूप में भी नित्य माना है। जैसे जगत् का सृष्टि और प्रलय होता है इसी प्रकार वेदों का भी आविर्भाव तथा तिरोभाव हुआ करता है। इनका स्वरूप नष्ट नहीं होता, ऐसा कैसे सम्भव है? इसका उत्तर देते हुए स्वामी जी ऋग्वेद का 'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्',[९२] यह मन्त्र प्रमाण रूप में प्रस्तुत करते हैं।[९३] इसकी व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि यहाँ सूर्य, चन्द्र शब्द का ग्रहण उपलक्षण के लिये है। जिस प्रकार पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र आदि की रचना उस ईश्वर के ज्ञान में थी उस प्रकार की ही उसने इस कल्प में रचना की है, यह जाना जाता है; क्योंकि ईश्वर के ज्ञान में वृद्धि, क्षय

---

८८. द्र०, वही०, पृ० ३१।

८९. यन्नित्यं वस्तु वर्त्तते तस्य नामगुणकर्माण्यपि नित्यानि भवन्ति, तदाधारस्य नित्यत्वात्। नैवाधिष्ठानमन्तरा नामगुणकर्मादयो गुणाः स्थितिं लभन्ते, तेषां पराश्रितत्वात्। वही, पृ० ४३।

९०. द्र०, वही, पृ० ३१-३२।

९१. वही, पृ० ३३।

९२. ऋग्वेद, १०.१९०.३।

९३. द्र०, ऋग्वेदादि०, पृ० ३२।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और विपर्यय नहीं होते इसी प्रकार वेदों में भी स्वीकार करना चाहिये। वेदों को उसने अपनी विद्या से रचा है।[९४]

वेद शब्द-रूप में भी नित्य हैं। इस विषय में भी दयानन्द की प्रमुख युक्ति यही है कि वेद ईश्वर की विद्या है। किन्तु प्रश्न यह है कि शब्द अनित्य हैं, कार्य होने से घट के समान। जैसे घट बनाया जाता है वैसे ही शब्द भी उत्पन्न किया जाता है। अतः शब्द के अनित्य होने पर वेदों को भी अनित्य मानना चाहिये।[९५] इसके उत्तर में स्वामी जी कहते हैं— ऐसा मानना ठीक नहीं। शब्द दो प्रकार का है— नित्य और कार्य। जो परमात्मा के ज्ञान में स्थित शब्द, अर्थ इनके सम्बन्ध हैं उन्हें नित्य मानना ही उचित है। जो हम लोगों के शब्द हैं वे कार्य हैं।[९६]

यह विचारणीय है कि ईश्वर के शब्द नित्य कैसे हैं। स्वामी जी कहते हैं— जिसकी ज्ञान और क्रिया नित्य हैं, स्वभाव–सिद्ध तथा अनादि हैं उसका सब सामर्थ्य भी नित्य होना चाहिये।[९७] फिर भी, यह प्रश्न उठ सकता है कि ईश्वर के शब्दार्थ सम्बन्ध नित्य हैं, मनुष्य के शब्दार्थ-सम्बन्ध अनित्य; ऐसा मानने का आधार क्या है? इस विषय में यह टिप्पणी की गई है कि यहाँ 'च' शब्द से 'नित्याश्च' यह भाव निकलता है। अतः अभिप्राय यह है -हमारे व्यवहार में जो वैदिक शब्द प्रयुक्त होते हैं वे नित्य हैं; किन्तु जो हमारे द्वारा किन्हीं अर्थों में यदृच्छारूप में कल्पित कर लिये जाते हैं अथवा टि, घु संज्ञा आदि के रूप में परिभाषित कर लिये जाते हैं, वे अनित्य हैं।[९८] इस विषय को अनुसन्धान द्वारा अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, वेद के शब्द, छन्द, स्वर आदि पर भी विद्वान् आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करते रहे हैं, उनकी नित्यता के विषय में भी अग्रिम अनुसन्धान अपेक्षित है।

जहाँ तक शब्द की नित्यता का प्रश्न है यह विद्वानों के विवाद का विषय रहा है कि शब्द नित्य है या अनित्य है। किन्तु वहाँ ईश्वर और मनुष्य के शब्दों का वर्गीकरण नहीं किया गया। फिर, क्या स्वामी दयानन्द का यह मन्तव्य उनकी

---

९४. द्र०, वही, पृ० ३२ सं०।

९५. द्र०, ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ३१।

९६. मैवं मन्यताम्। शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात्। ये परमात्मज्ञानस्थाः शब्दार्थसम्बन्धाः सन्ति ते नित्या भवितुमर्हन्ति। येऽस्मदादीनां वर्त्तन्ते ते तु कार्याश्च। वही, पृ० ३१।

९७. द्र०, वही, पृ० ३१ सं०।

९८. द्र०, टिप्पणी ३, वही, पृ० ३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निजी उद्भावना है या इसका बीज प्राचीन विचारों की व्याख्या-परम्परा में उपलब्ध होता है।

६. वेद-नित्यता में विविध-प्रमाण

ऋषि दयानन्द ने वेदों की नित्यता का विचार करते हुए प्राचीन वाङ्मय से अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। प्रथम प्रमाण पाणिनि व्याकरण से दिया गया है। शब्द की नित्यता पर पतञ्जलि मुनि ने व्याकरण महाभाष्य में बहुत से विचार प्रस्तुत किये हैं। यदि शब्द नित्य हैं तो शब्दरूप वेद की नित्यता में कोई कठिनाई नहीं होगी। पतञ्जलि ने कहा है—'नित्याश्च शब्दाः'[९९] अर्थात् शब्द नित्य हैं। पतञ्जलि ने यह भी बतलाया है कि वर्ण कूटस्थ हैं, उनमें विनाश, उत्पत्ति और विकार नहीं होते।[१००] शब्द की नित्यता के प्रसङ्ग में पतञ्जलि ने यह भी कहा है कि शब्द उच्चारण द्वारा अभिव्यक्त होता है—'प्रयोगेणाभिज्वलितः'।[१०१] इससे स्पष्ट है कि उनकी दृष्टि में शब्द नित्य है, उसकी उत्पत्ति और विनाश नहीं होते। उच्चारण से तो केवल उसकी अभिव्यक्ति हुआ करती है। एक अन्य स्थल पर उन्होंने यह भी कहा है कि आचार्य पाणिनि के मत में भी शब्द नित्य हैं।[१०२] इस प्रकार यह विदित होता है कि पतञ्जलि के मत से पाणिनि व्याकरण के अनुसार शब्द नित्य है। पतञ्जलि के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए स्वामी दयानन्द कहते हैं—वैदिक और लौकिक सब शब्द नित्य हैं।[१०३] यहां स्वामी जी ने महाभाष्य की दृष्टि से वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के शब्दों को नित्य कहा है; किन्तु इस प्रकरण के आरम्भ में 'शब्दो द्विविधो नित्यकार्यभेदात्'[१०४] इन शब्दों में उन्होंने अपना मत प्रकट किया है। अतः यहाँ किसी विरोध की आशङ्का नहीं की जा सकती। वस्तुतः शब्द के नित्यत्व और अनित्यत्व के विषय में भारतीय दर्शन में कई मत उपलब्ध होते हैं।

---

९९. महाभाष्य, अइउण्, पृ० ६९।

१००. द्र०, नित्याश्च शब्दाः। नित्येषु च शब्देषु कूटस्थैरविचालिभिर्वर्णैर्भवितव्यमनपायोपजन—विकारिभिः। वही, पृ० ६९।

१०१. वही, पृ० ७०।

१०२. सर्वे सर्वपदादेशा दाक्षीपुत्रस्य पाणिनेः।
एकदेशविकारे हि नित्यत्वं नोपपद्यते॥
(क) महाभाष्य, १.१.१९। (ख) ऋग्वेदादि०, पृ० ३३।

१०३. वैदिका लौकिकाश्च सर्वे शब्दा नित्याः सन्ति। ऋग्वेदादि०, पृ० ३३।

१०४. वही, पृ० ३१।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याकरण की दृष्टि से शब्द की नित्यता दिखलाकर स्वामी जी ने मीमांसा की दृष्टि से शब्द की नित्यता दिखलाई है—'नित्यस्तु स्याद्दर्शनस्य परार्थत्वात् ।'[१०५] मीमांसा-सूत्र में शब्द-नित्यता का एक अधिकरण है जिसमें यह भी एक सूत्र है। जैमिनि ने इस प्रकार के अनेक हेतु शब्द की नित्यता में दिखलाये हैं जिनका ऊपर निरूपण किया जा चुका है। एक बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि वैयाकरण और मीमांसक दोनों के शब्द-नित्यता के मन्तव्य में कुछ अन्तर माना जाता है। वैयाकरण तो स्फोट रूप शब्द को नित्य कहते हैं, ध्वनि रूप को अनित्य, किन्तु मीमांसक के यहां शब्द श्रूयमाण वर्णों से भिन्न नहीं है और उसी रूप में वह नित्य है। कुछ भी हो वैयाकरण तथा मीमांसक के मत में शब्द नित्य है जिससे शब्दरूप वेद भी नित्य होगा। इनके ग्रन्थों में वेद-नित्यता सम्बन्धी अन्य सन्दर्भ भी उपलब्ध होते हैं जिनका यथावसर निरूपण किया जा चुका है।

वैशेषिक का सूत्र[१०६] प्रस्तुत करते हुए भी स्वामी दयानन्द कहते हैं—ईश्वरोक्त होने से वेदचतुष्टय का प्रामाण्य नित्यरूप से सभी को स्वीकार करना चाहिये।[१०७] उपलब्ध व्याख्याओं से प्रतीत होता है कि यहाँ ईश्वरोक्त होने से वेदों की प्रामाणिकता दिखलाई गई है। स्वामी दयानन्द ने ईश्वरोक्त होने से ही इनकी नित्यता भी दिखला दी है। वे ईश्वर का ज्ञान होने से अनेक स्थलों पर वेद की नित्यता को सिद्ध करते रहे हैं।

न्यायसूत्र का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए स्वामी दयानन्द ने इस न्यायसूत्र को प्रस्तुत किया है—'मन्त्रायुर्वेदप्रामाण्यवच्च०'।[१०८] यह सूत्र भी वेदों के प्रामाण्य की सिद्धि के लिये ही वहाँ प्रस्तुत किया गया है। स्वामी जी ने इसका अर्थ करते हुए कहा है—उन नित्य, ईश्वरोक्त वेदों का प्रामाण्य सबको स्वीकार करना चाहिए।[१०९] यह कहा जा सकता है कि यहाँ भी स्वामी जी ने ईश्वरोक्त होने से वेद की नित्यता भी दिखला दी है। यहां उन्होंने वात्स्यायन भाष्य का भी कुछ अंश उद्धृत

१०५. मीमांसासूत्र, १.१.१८।

१०६. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। वै० सू०, १.१.३।

१०७. ईश्वरेणैवोक्तत्वाच्चाम्नायस्य वेदचतुष्टयस्य प्रामाण्यं सर्वैर्नित्यत्वेन स्वीकार्यम्। ऋग्वेदादि०, पृ० ३६।

१०८. न्यायसूत्र, २.१.६७।

१०९. तेषां वेदानां नित्यानामीश्वरोक्तानां प्रामाण्यं सर्वैः स्वीकार्यम्। ऋग्वेदादि०, पृ० ३७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है[११०]—नित्यत्वाद् वेदवाक्यानां प्रमाणत्वे तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यादित्युक्तम्'। आज उपलब्ध वात्स्यायन भाष्य में 'इत्युक्तम्' के स्थान पर 'इत्ययुक्तम्' यह पाठ मिलता है। किञ्च, न्याय-परम्परा के उपलब्ध ग्रन्थों में वेद की नित्यता नहीं कही गई, और न ही नित्य होने से उनकी प्रामाणिकता स्वीकारी गई है।

योगशास्त्र का प्रमाण देते हुए उन्होंने पतञ्जलि का सूत्र 'स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'[१११] उद्धृत किया है और कहा है—जिस में निरतिशय, नित्य, स्वाभाविक ज्ञान है उसके द्वारा उक्त वेदों की भी सत्यार्थता और नित्यता जाननी चाहिये।[११२] यहां भी स्वामी दयानन्द ने ईश्वरोक्त होने से वेद की नित्यता का उल्लेख किया है। वस्तुतः यह विचारणीय ही है कि योग की दृष्टि में वेद की नित्यता का क्या आशय है।

सांख्यशास्त्र का प्रमाण प्रस्तुत करते हुए स्वामी दयानन्द ने उसका वेद के स्वतः प्रामाण्य को प्रतिपादित करने वाला सूत्र[११३] उद्धृत किया है। उन्होंने कहा है—'स्वतः प्रामाण्यनित्यत्वे स्वीकार्य्ये' स्वतः-प्रामाण्य और नित्यता स्वीकार करनी चाहिए। वेद की नित्यता और स्वतः प्रामाण्य में उन्होंने यह हेतु दिया है - क्योंकि वेद पुरुष के सहचारी प्रधान की सामर्थ्य से प्रकट होते हैं (निजशक्त्यभिव्यक्तेः)।[११४]

आज न्याय-वैशेषिक तथा सांख्ययोग की दृष्टि से वेद को अनादि नित्य नहीं माना जाता। इन सम्प्रदायों के उत्तरकालीन ग्रन्थों को देखने से विदित होता है कि यहाँ विस्तार से इस विषय में विचार किया गया है जिसका ऊपर विवेचन किया जा चुका है।

वेदान्त के मत का निरूपण करते हुए स्वामी दयानन्द ने शास्त्रयोनित्वात्[११५] सूत्र उद्धृत किया है और इसके शाङ्कर भाष्य को प्रस्तुत करते हुए यह अभिप्राय निकाला है—इससे क्या आया सर्वज्ञ ईश्वर का शास्त्र भी नित्य तथा सब अर्थों

---

११०. वही, पृ० ३७।

१११. योगसूत्र, १.२६।

११२. ऋग्वेदादि०, पृ० ३८ सं०।

११३. निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतःप्रामाण्यम्। सां० सू०, ५.५१।

११४. वेदानां निजशक्त्यभिव्यक्तेः पुरुषसहचारिप्रधानसामर्थ्यात् प्रकटत्वात् स्वतः प्रामाण्यनित्यत्वे स्वीकार्ये। ऋग्वेदादि०, पृ० ३८।

११५. ब्रह्मसूत्र, १.१.३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ज्ञान से युक्त हो सकता है।[११६] तदनन्तर स्वामी जी ने वेदान्त का एक ग्रन्थ सूत्र उद्धृत किया है।[११७] इसके अर्थ में वे कहते हैं—सब कालों में नियत होने से (वेदों की) नित्यता सब मनुष्यों को माननी चाहिए।[११८] इस सूत्र की व्याख्या में प्रायः सभी आचार्यों ने वेदों की नित्यता स्वीकार की है किन्तु 'अत एव' शब्द के अर्थ में व्याख्या-भेद दिखलाई देता है जिसके लिये ब्रह्मसूत्र की विविध व्याख्याओं का अनुशीलन करना अपेक्षित है।

भिन्न-भिन्न शास्त्रों के प्रमाण प्रस्तुत करने के पश्चात् स्वामी दयानन्द यजुर्वेद का एक मन्त्र[११९] उद्धृत करते हुए व्याख्या में बतलाते हैं—इसीलिये किसी को भी वेद को अनित्य नहीं मानना चाहिये; क्योंकि उसकी विद्या सदा एकरस विद्यमान रहती है।[१२०]

इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों के आधार पर स्वामी दयानन्द ने यह कहा है कि ज्ञान-रूप में तथा शब्द-रूप में वेद नित्य हैं। व्याकरण शास्त्र तथा मीमांसा शास्त्र के आधार पर शब्दात्मक वेद की नित्यता है। अन्य दर्शनों की दृष्टि से यह दिखलाया गया है कि वेद ईश्वर का ज्ञान है, प्रलय में भी यह ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान रहता है और प्रत्येक सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर पहले के समान ही वेद-ज्ञान को प्रकट कर दिया करता है। अतः ईश्वरीय ज्ञान होने से और सब कालों में नियत रूप होने के कारण वेद नित्य हैं। वेद मन्त्र[१२१] के आधार पर भी उन्होंने ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद की नित्यता दिखलाई है।

७. वेदनित्यता के विषय में पाश्चात्त्य विद्वानों के मत और ऋषि दयानन्द

स्वामी दयानन्द ने कितने ही प्रसङ्गों में पाश्चात्त्य विद्वानों के मतों का निराकरण किया है। उन्होंने कहीं-कहीं उनके मत का उल्लेख भी किया है, कहीं

---

११६. अतः किमागतम्, सर्वज्ञस्येश्वरस्य शास्त्रमपि नित्यं सर्वार्थज्ञानयुक्तं च भवितुमर्हति। ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ३९।

११७. अत एव च नित्यत्वम्। ब्रह्मसूत्र, १.३.२९; ऋग्वेदादि०, पृ० ३९।

११८. सर्वेषु कालेष्वव्यभिचारित्वान्नित्यत्वं च सर्वैर्मनुष्यैर्मन्तव्यमिति। ऋग्वेदादि०, पृ० ३९।

११९. द्र०, यजुर्वेद, ४०.८; ऋग्वेदादि०, पृ० ४०।

१२०. अत एव नैव वेदानामनित्यत्वं केनापि मन्तव्यम्, तस्य विद्यायाः सर्वदैकरसवर्त्तमानत्वात्। ऋग्वेदादि०, पृ० ४१।

१२१. कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः। यजुर्वेद, ४०.८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

केवल निराकरणमात्र, इसी प्रकार कहीं पाश्चात्त्य विद्वानों का नामत: उल्लेख किया है, कहीं केवल यूरोप खण्ड निवासी, शारमण्य, इंग्लैण्ड देशोत्पन्न इत्यादि शब्दों से उनकी ओर सङ्केत किया है।[१२२]

वेदोत्पत्ति के विषय में स्वमन्तव्य का निरूपण करने के अनन्तर वे कहते हैं—यूरोप खण्ड के अध्यापक विलसन, मोक्षमूलर आदि ने जो कहा है कि वेद मनुष्य-रचित हैं, श्रुति नहीं हैं और जो कहा है चौबीस, उन्तीस, तीस अथवा इकत्तीस सौ वर्ष वेदों की उत्पत्ति में व्यतीत हुए हैं, उपर्युक्त कथन से ही यह जानना चाहिये कि वह सब भ्रममूलक है।[१२३] उनका अनुसरण करके लोकभाषा में इसी प्रकार का मत प्रकट करने वालों का भी वे भ्रम ही बतलाते हैं।[१२४] आज भारतीय पाठकों के समक्ष मैक्समूलर और विलसन आदि के मत किस रूप में प्रचलित हैं, यहां यह विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

भारतीय मत का उल्लेख करते हुए मैक्समूलर ने कहा है—भारतीय तत्त्ववेत्ताओं की परम्परागत दृष्टि के अनुसार वेद की एक पंक्ति भी पुरुष की कृति नहीं है। समस्त वेद किसी न किसी रूप में देव की कृति है। और, जिन्होंने ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त किया है, इसे प्रकट किया, इसका दर्शन किया है उन्हें भी साधारण मनुष्य नहीं माना जा सकता, किन्तु वे सामान्य जन के स्तर से उच्च ही हैं, इसलिये उनके ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति में भ्रान्ति की आशङ्का भी नहीं है।[१२५]

---

१२२. द्र०, ऋग्वेदादि०, भाष्यकरण०, पृ० ३६८ सं०।

१२३. एतावता कथनेनैवाध्यापकविलसनमोक्षमूलराद्यभिधैर्यूरोपाख्यखण्डस्थैर्मनुष्यरचितो वेदोऽस्ति, श्रुतिर्नास्तीति यदुक्तं यच्चोक्तं चतुर्विंशतिरेकोनत्रिंशत् त्रिंशदेकत्रिंशच्च शतानि वर्षाणि वेदोत्पत्तौ व्यतीतानीति, तत्सर्वं भ्रममूलमस्तीति वेद्यम्। वही, वेदोत्पत्ति, पृ० २९।

१२४. तथैव प्राकृतभाषया व्याख्यानकारिभिरप्येवमुक्तं तदपि भ्रान्तमेवास्तीति च। वही, पृ० २९।

१२५. According to the orthodox views of Indian theologians, not a single line of the veda was the work of human authors. The whole Veda is in some way or other the work of the Deity and even those who received the revelation, or, as they express it, those who saw it, were not supposed to be ordinary mortals, but beings raised above the level of common humanity, and less liable therefore to error in the reception of revealed truth. The Vedas, F. Maxmuller (Susil Gupta India Limited, Calcutta-12, 1956), p.21.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे यह भी कहते है कि संस्कृत में ईश्वरीय ज्ञान का नाम 'श्रुति' है जिसका अर्थ है सुना गया और 'श्रुति' यह नाम वैदिक सूक्तों को औरों से पृथक् करता है।[१२६] इसके अनन्तर मैक्समूलर कहते हैं– इस विषय में मैं एकदम यह कहना चाहता हूं कि वेदों के सूक्तों में इस अतिशयोक्तिपूर्ण मन्तव्य का औचित्य सिद्ध करने वाली कोई बात नहीं है।[१२७]

मैक्समूलर ने वेदों का समय लगभग ई० पू० १० शताब्दी माना है।[१२८] वे यह भी कहते हैं—इससे पहले इस समय को कहां तक बढ़ाया जा सकता है, यह कहना असम्भव है। इतना ही कहना पर्याप्त है कि (यदि) ऋग्वेद के सूक्तों में १० शताब्दी ई० पू० से आगे जाने के सङ्केत मिलते हैं तो इसे आगे बढ़ाना सम्भव है।[१२९]

अन्य स्थल पर वे स्पष्ट कहते हैं—वैदिक सूक्तों के कालक्रम की तिथि जो किन्हीं के द्वारा १२००, दूसरों के द्वारा २००० अथवा ४५०० ई०पू० निर्धारित की गई है निःसन्देह वह अनिश्चित ही है और उसे कल्पित से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।[१३०] साथ ही, यह सुविदित ही है कि वैदिक सूक्तों के समय तथा प्रामाणिकता को निर्धारित करने के लिये बहुत परिश्रम किया गया है। अब उन वैदिक सूक्तों की प्रामाणिकता सभी संस्कृत के विद्वान् स्वीकार करते हैं। उनका समय मैंने अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास (History of Ancient Sanskrit Literature, 1859) में लगभग १२०० से १५०० ई० पू० निश्चित किया है।[१३१] यद्यपि यह समय सामान्यतः स्वीकार कर लिया गया

---

१२६. The name for revelation in Sanskrit is Śruti, which means hearing, and this title distinguishes the Vedic hymns. वही, पृ०.२१.

१२७. But let me state at once that there is nothing in the hymns themselves to warrant such extravagant theories. वही, पृ० २२.

१२८. द्र०, वही, पृ० २० ।

१२९. द्र०, वही, पृ० २० ।

१३०. The chronological date of the Vedic hymns, which has been fixed by some at 1200, by others at 2000, nay at 4500 B. C. are no doubt, very uncertain, and can be no more than constructive. वही, पृ० ५३.

१३१. It is well known how much labour has been spent on establishing the date and the authenticity of the vedic hymns. Their authenticity is now admitted by all Sanskrit scholars. Their date has been fixed by me in my history of Ancient Sanskrit Literature (1859) at about 1200 to 1500 B.C.
वही, पृ० ५२.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तथापि मैं ही अन्तिम व्यक्ति हूँ जो इसे दृढ़तापूर्वक निश्चित किया गया नहीं मानता, और मैंने बार-बार अपना यह तर्क प्रस्तुत किया है कि क्यों मैं अपनी ही युक्तियों को बलपूर्वक स्थापित करने से बचने में प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।[132] जो अन्य विद्वान् २००० या ५००० ई०पू० के किसी उच्चतर युग की दुहाई देते हैं उस समय के विषय में उनका पूर्ण स्वागत है, यदि वे उसे किसी प्रकार के ऐतिहासिक साक्ष्य के आधार पर सिद्ध करते हैं।[133]

इस प्रकार मैक्समूलर ने वेदोत्पत्ति का समय निर्धारित करने का प्रयास अवश्य किया था; किन्तु उसे ही अन्तिम निर्णय मानना युक्तिसंगत न होगा।

विल्सन भी वेदों की उत्पत्ति का समय १२वीं शती ई०पू० ही बतलाते हैं। मनुस्मृति का समय पञ्चम या षष्ठ शती ई०पू० रखते हुए वे ब्राह्मणों का समय कम से कम सप्तम या अष्टम शती ई०पू० मान लेते हैं।[134] ब्राह्मणों के समय के आधार पर ही वे वेदों के युग का अनुमान करते हैं—फिर हम वेदों की रचना एवं प्रसार तथा उन सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों के लिये जो ब्राह्मणों में दृष्टिगोचर होते हैं, चार या पांच शताब्दी से कम का समय देना उचित नहीं समझते। यह सब हमें उसी युग का निश्चय कराता है जिसका पहले ही आकलन किया जा चुका है, अर्थात् १२वीं या १३वीं शती ई०पू०।[135]

---

१३२. But though this date has met with very general acceptance, I am the very last person to consider it as firmly established, and I have again and again given my reason why I should gladly escape from the force of my own arguments.

वही, पृ० ५२.

१३३. If other scholars have clamoured for a higher age, for 2000 or 5000 B.C., they are quite welcome to these dates if they can establish them by any kind of historical evidence.

वही, पृ० ५२.

१३४. Introduction, ऋग्वेदसंहिता (English Translation) (Nag Publishers, Delhi-7, 1977), p. XLVi.

१३५. We cannot allow less than four or five centuries for the composition and currency of the hymns, and the occurrence of those important changes, both civil and religious, which the Brahmana exhibits. This will bring us to the same era as that which has previously been computed, or about twelve or thirteen centuries, B.C. वही,पृ० XLVi

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विल्सन ने कोलब्रुक आदि का मत प्रस्तुत करते हुए बतलाया है कि ज्योतिष के आधार पर भी वेदों के काल-निर्णय का प्रयास किया गया है।[१३६] वस्तुतः पाश्चात्त्य विद्वानों ने वेद के कालनिर्णय का अनेक प्रकार से प्रयास किया है। एक दूसरे की स्थापना का युक्तिपूर्वक निराकरण करते हुए उन्होंने अपना मत प्रकट भी किया है। इस विषय में प्रमुख पाश्चात्त्य एवं भारतीय विद्वानों के विचारों का निरूपण करना उचित जान पड़ता है।

विन्टरनिट्स ने वेदों के काल पर विचार करते हुए लिखा है कि ऋग्वेद के काल के विषय में विद्वानों में मतभेद है; जैसे- मैक्समूलर के अनुसार वैदिक काव्य के प्रारम्भ का समय १२०० से १००० ई० पू० है।[१३७] अपने व्याख्यानों में उन्होंने कहा था—वैदिक सूक्तों की रचना १००० या १५०० या २००० या ३००० ई० पू० हुई। इसका निर्णय इस संसार में कभी भी कोई नहीं कर सकेगा।[१३८] मैक्समूलर की इस स्थापना की पश्चिमी विद्वानों ने भी आलोचना की है। विन्टरनिट्स कहते हैं कि मैक्समूलर की वैदिक तिथि की स्थापना किन्हीं तथ्यों पर आधृत न होकर विशुद्ध कल्पना मात्र थी।[१३९] एल० फॉन श्रेडर जैसे कुछ विद्वानों ने इस तिथि को १५०० या २००० ई० पू० तक बढ़ा दिया।[१४०] सन् १८९३ में जैकोबी ने बॉन में तथा बालगङ्गाधर तिलक ने वम्बई में ज्योतिष-सम्बन्धी गणनाओं के आधार पर वैदिक सूक्तों का काल निर्धारित करने का प्रयास किया। तिलक के अनुसार कुछ वैदिक सूक्त ६००० ई० पू० के हैं, किन्तु जैकोबी ४५०० ई० पू० से आगे नहीं बढ़ते। वे यह भी कहते हैं कि ऋग्वेद का यह काल ४५०० से २५०० ई० पू० तक फैला हुआ है।[१४१]

तिलक तथा जैकोबी के इस मत का बलपूर्वक विरोध किया गया। फिर भी, इससे विद्वानों को यह एक नवीन दिशा मिली कि इस विषय में और भी

---

१३६. द्र०, वही, पृ० XLVi.

१३७. द्र०, प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास, भाग-१, खण्ड-१ (मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७५), पृ० २१३-२१४।

१३८. वही, पृ० २१५।

१३९. वही, पृ० २१५।

१४०. द्र०, Indiens Literatur und Kultur, pp. 291F.
उल्लिखित, भारतीय साहित्य का इतिहास, भाग-१, खण्ड-१, पृ० २१५।

१४१. द्र०, वही, पृ० २१७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्तियाँ हो सकती हैं, अतः इस दिशा में आगे विचार करना आवश्यक है। १९०७ ई० में ह्यूगो विंक्लर ने एशिया माइनर में कुछ खोजें कीं जिनके आधार पर ऋग्वेद के काल पर कुछ नया प्रकाश डाला गया। किन्तु इन सभी प्रयासों की अपनी सीमा रही, ज्योतिष और पुरातत्त्व की खोजों से भी सन्तोषजनक परिणाम न निकल सका।

आज भी विद्वान् निरन्तर ऋग्वेद के काल का निर्णय करने का प्रयत्न कर रहे हैं। विविध प्रकार का वाङ्मय, पुरातत्त्व की खोजें सभी के द्वारा इस विषय में नवीन तथ्य प्रकट किये जा रहे हैं। वस्तुतः इस विषय में निश्चित रूप से कुछ भी कहना कठिन ही नहीं, असम्भव प्रतीत होता है। फिर भी, तथ्य की खोज स्वाभाविक है। अतः विद्वानों को अनुसन्धानात्मक दृष्टि से इस विषय में तत्पर रहना ही होगा।

८. दयानन्द के वेदनित्यता-सम्बन्धी मन्तव्य और पूर्व विचारक

स्वामी दयानन्द के वेदनित्यता-सम्बन्धी मन्तव्यों में प्राचीन विचारकों के मन्तव्यों से समानता ही नहीं है, अपितु उनके मन्तव्यों का समन्वित रूप यहाँ परिलक्षित होता है। स्वामी जी ने वेद के दोनों रूपों—ज्ञान रूप और शब्द रूप की नित्यता दिखलाई है। साथ ही उन्हें सर्वज्ञ ईश्वर की कृति भी बतलाया है। अद्वैत वेदान्त के मन्तव्य से यह मत अधिकांश में मिलता है। जैसा कि ऊपर दिखलाया गया है, अद्वैत वेदान्त की दृष्टि में सर्वज्ञ के द्वारा प्रत्येक सर्ग के आदि में पूर्व सर्ग के समान ही वेद-रचना की जाती है। प्रलय काल में वेद ब्रह्म में लीन होकर विद्यमान रहता ही है। अतः वेद प्रवाह से नित्य है, स्वरूप से नहीं। इसे ही अनित्य कह दिया जाता है।[१४२] स्वामी दयानन्द भी प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर के द्वारा यथापूर्व ही वेदों की रचना मानते हैं; किन्तु वे इसे वेदों का आविर्भाव तिरोभाव मात्र कहकर वेदों को नित्य ही स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अनित्य या प्रवाह से नित्य अथवा नित्य कहने में केवल दृष्टि का भेद है।

अद्वैत वेदान्त तथा स्वामी दयानन्द के मन्तव्यों में एक अन्तर स्पष्ट है। वह यह कि स्वामी जी ईश्वरोक्त होने से वेद-नित्यता की सिद्धि करते हैं। उनका

---

१४२. द्र०, ऊपर परि० ४, अनु० ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कथन है—'यन्नित्यं वस्तु वर्तते तस्य नामगुणकर्माण्यपि नित्यानि भवन्ति'[१४३]—जो नित्य वस्तु है उसके नाम गुण तथा क्रिया भी नित्य होते हैं। भाव यह है—यह वचन ईश्वर तथा वेद के सन्दर्भ में कहा गया है। ईश्वर का नाम नित्य है, यह प्राचीन विचारकों ने भी स्वीकार किया है। 'तस्य वाचकः प्रणवः' (योगसूत्र १ २७) तथा उसकी व्याख्याओं से यह स्पष्ट विदित होता है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, ईश्वर का ज्ञान तथा क्रिया नित्य हैं अतः ज्ञान रूप में वेद भी नित्य हैं। ईश्वर की ज्ञान-क्रिया-शक्ति नित्य है इसका भारतीय दर्शन के अनेक विचारकों ने प्रतिपादन किया था। व्यासभाष्य में कहा गया था—स तु सदैव मुक्तः सदैवेश्वरः।[१४४] इसकी व्याख्या में वाचस्पति मिश्र कहते हैं—ऐश्वर्य का अर्थ है ज्ञान-क्रिया शक्ति से सम्पन्न होना।[१४५] इसी प्रकार वाचस्पति मिश्र ने अन्यत्र कहा है कि उसकी ज्ञान और क्रिया की शक्ति नित्य हैं।[१४६] ऊपर बतलाया जा चुका है कि तत्त्वचिन्तामणि तथा रामरुद्री टीका आदि में भी ईश्वर के ज्ञान को नित्य माना गया है।[१४७] यद्यपि न्याय-वैशेषिक के अनुसार ज्ञान अनित्य है तथापि ईश्वर का ज्ञान तो नित्य ही है। फलतः ईश्वरीय ज्ञान की नित्यता भारतीय विचारकों को अभिमत रही ही है।

जहां तक शब्द रूप में वेदनित्यता का प्रश्न है, स्वामी जी ने शब्द को नित्य मानने वाले वैयाकरण तथा मीमांसकों के मत प्रस्तुत किये हैं। शब्द के नित्य होने से शब्द रूप वेद की नित्यता भी अनायास सिद्ध हो जाती है। केवल व्याकरण और मीमांसा में ही शब्द की नित्यता का प्रतिपादन नहीं किया गया, अपितु योगदर्शन के व्यासभाष्य में भी कहा गया है सदृश व्यवहार-परम्परा (संप्रतिपत्ति) के नित्य होने से शब्द और अर्थ का सम्बन्ध नित्य है, यह आगम के अनुयायी मानते हैं।[१४८]

योगभाष्य में शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्थित तथा स्वाभाविक बतलाया गया है—'स्थितोऽस्य वाच्यस्य वाचकेन सह सम्बन्धः।[१४९] वहां यह स्पष्ट

---

१४३. ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ४३।

१४४. व्यासभाष्य, योगसूत्र, १.२४।

१४५. ज्ञानक्रियाशक्तिसम्पदैश्वर्यम्। तत्त्ववैशारदी, योगभाष्य, १.२४।

१४६. तस्य ज्ञानक्रियाशक्ती नित्ये। न्या० वा० ता०, पृ० ५९७।

१४७. द्र०, ऊपर परि० ४, अनु० २ (च)।

१४८. सम्प्रतिपत्तिनित्यतया नित्यः शब्दार्थसम्बन्ध इत्यागमिनः प्रतिजानते। योगभाष्य, १.२७।

१४९. वही, १.२७।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया गया है कि जैसे पहले से विद्यमान पिता और पुत्र का सम्बन्ध—यह इसका पिता है, यह इसका पुत्र है इस रूप में प्रकट कर दिया जाता है। इसी प्रकार शब्द और अर्थ का सम्बन्ध भी स्थित है ईश्वर के सङ्केत द्वारा उसे प्रकट कर दिया जाता है। इसी सर्ग में नहीं भूत और भविष्य के सर्गों में भी शब्द और अर्थ का सम्बन्ध इसी प्रकार रहता है।[150] वाचस्पति मिश्र ने व्यासभाष्य के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए बतलाया है—सभी शब्दों का सभी अर्थों के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है ईश्वर का सङ्केत तो उस सम्बन्ध का प्रकाशक और नियामक होता है। अब प्रश्न यह है कि योग के अनुसार प्रलय काल में सभी शब्द प्रकृति में विलीन हो जाते हैं फिर अन्य सर्गों में उसी प्रकार का शब्दार्थ-सम्बन्ध कैसे रहेगा। इसका उत्तर देते हुए वाचस्पति मिश्र कहते हैं—यद्यपि शब्द अपनी शक्ति के साथ प्रकृति में समरस हो जाता है तथापि पुनः आविर्भूत होते समय शक्ति से युक्त शब्द का ही आविर्भाव हुआ करता है।[151]

इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने शब्द रूप में वेद को नित्य माना है; किन्तु मीमांसक के समान वेद को अपौरुषेय नहीं बतलाया और न ही नित्य तथा अपौरुषेय होने से वेदप्रामाण्य का प्रतिपादन किया है। वस्तुतः स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेद ईश्वरोक्त होने से नित्य हैं तथा भ्रान्ति-रहित हैं अतः स्वतः प्रमाण हैं, यह अन्यत्र विवेचन किया जा चुका है।[152]

दूसरी ओर कतिपय भारतीय विचारकों ने शब्द को अनित्य माना है। फलतः उनके मत में शब्द और अर्थ का सम्बन्ध भी अनित्य ही है। यद्यपि उन्होंने यह विभाजन नहीं किया कि कौन से शब्द आदि नित्य हैं और कौन से अनित्य हैं तथापि स्वामी दयानन्द ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए दिखलाया है—शब्द दो प्रकार का होता है--एक नित्य और दूसरा कार्य। इनमें जो शब्द, अर्थ और सम्बन्ध परमेश्वर के ज्ञान में हैं वे सब नित्य ही होते हैं और जो हम लोगों की कल्पना से उत्पन्न होते हैं वे कार्य ही होते हैं।[153] इस कथन पर ऊपर विचार किया जा चुका है।[154] स्वामी जी सभी वैदिक दर्शनों का समन्वय करते हैं।

---

१५०. सर्गान्तरेष्वपि वाच्यवाचकशक्त्यपेक्षस्तथैव सङ्केतः क्रियते। वही, १.२७।

१५१ यद्यपि सह शक्त्या प्रधानसाम्यमुपगतः शब्दस्तथापि पुनराविर्भवत् तच्छक्तियुक्त एवाविर्भवति। तत्त्ववैशारदी, वही, १.२७।

१५२. द्र०, वेद तथा ऋषि दयानन्द, वेद स्वतःप्रमाण हैं, पृ० १०९-११२।

१५३. ऋग्वेदादि०, वेदनित्यत्व, पृ० ३१।

१५४. द्र०, ऊपर परि० ५, अनु० ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कथन में भी उनकी उस समन्वयात्मक दृष्टि का ही दर्शन होता है। फिर भी इस विषय में निरन्तर अनुसन्धान करना होगा और आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से भी शब्द की नित्यता आदि का सामञ्जस्य करना होगा।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द के वेदनित्यता-सम्बन्धी मन्तव्य में वेदों की ईश्वरोक्तता तो योग, न्याय, वैशेषिक आदि के समान है, वेद-नित्यता मीमांसा के समान है और प्रत्येक सर्ग में पहले सर्ग के समान ही वेद की रचना होती है, यह वेदान्त के समान है। ईश्वरीय ज्ञान होने से तथा नित्य होने से वेद भ्रान्ति-रहित हैं, इस धारणा में योग, न्याय, वैशेषिक तथा मीमांसा के विचारों का समन्वय है और भ्रान्तिरहित होने से वेद स्वतः प्रमाण हैं इस मन्तव्य में सांख्य, मीमांसा तथा वेदान्त से समानता है। फलतः सभी वैदिक दर्शनों के मन्तव्यों का समन्वित रूप स्वामीजी के वेद-सम्बन्धी विशेषतः वेद-नित्यता-सम्बन्धी विचारों में प्रतीत होता है। हाँ, प्रस्तुत विवेचन से ही वेद-नित्यता-सम्बन्धी विचार की इतिश्री नहीं समझी जा सकती। भविष्य के गहन अध्ययन से इस मन्तव्य के विशद एवं विशदतर होने की आशा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

प्रस्तुत अध्ययन से वेद-संज्ञा एवं वेदसंख्या आदि के विषय में भी कुछ तथ्य प्राप्त होते हैं; किन्तु वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। इससे विशाल भारतीय वाङ्मय के एतद्विषयक विभिन्न मन्तव्यों का पता चलता है और उनकी उलझनों को सुलझाते हुए एक ऐसे मार्ग का निर्माण करने वाले ऋषि दयानन्द की ओर दृष्टि जाती है जो मार्ग परम्परागत विचारों पर आश्रित होकर भी भारत के नव जागरण की ओर उन्मुख है—

(१) वेद शब्द यौगिक है; किन्तु यह ऋक्, यजुः, साम और अथर्व के लिये रूढ हो गया है। फिर भी इसका अन्य अर्थों में भी प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। कुछ विद्वान् ऋक्, यजुः, साम और अथर्व के मन्त्र-भाग तथा ब्राह्मण-भाग (उपनिषद् सहित) सभी को वेद मानते रहे हैं; किन्तु किन्हीं विद्वानों के मत में केवल मन्त्र-संहिता ही वेद हैं। इसी प्रकार किन्हीं के मत में वेद की शाखाएँ भी वेद हैं; परन्तु अन्य मत के अनुसार वे वेद नहीं हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मुख्य अर्थ में मन्त्रभाग को ही वेद कहा जाता रहा, अन्य ग्रन्थों को औपचारिक अर्थ में वेद कहा गया जो बाद में मुख्य के समान ही लोक-प्रचलित हो गया।[1]

(२) 'नित्य' शब्द का विविध अर्थों में प्रयोग होता रहा है। व्याकरण से ध्रुव अर्थ में इसे निष्पन्न किया गया है। सम्भवतः यह नियत शब्द के समानार्थक रूप में ही प्रयुक्त हुआ है। दर्शन ग्रन्थों में नित्य शब्द का बहुशः प्रयोग मिलता है, वहाँ नित्य का लक्षण भी किया गया है। किन्हीं के अनुसार सभी नित्य हैं; किन्तु नित्यता दो प्रकार की है कूटस्थनित्यता और परिणामी नित्यता। आत्मा (चिति-शक्ति तथा ईश्वर) कूटस्थनित्य हैं, शेष परिणामी नित्य हैं। परिणामी नित्य को अनित्य भी कह दिया जाता है। अन्य मत में कुछ कूटस्थनित्य हैं कुछ अनित्य हैं। अनित्य पदार्थ भी दो प्रकार के हैं एक त्रिक्षणावस्थायी (तीन क्षण ठहरने वाले) और दूसरे स्थिर (बहुत समय रहने वाले)। इन स्थिर पदार्थों को भी कभी-कभी नित्य कह दिया जाता है। जिस पदार्थ की उत्पत्ति और विनाश होता

---

१. वही, परि० १, अनु० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है उसे अनित्य कहा जाता है। यदि उत्पत्ति और विनाश को वस्तु के आविर्भाव और तिरोभाव के रूप में देखा जाये तो इसे तत्त्व का परिणाम ही कहा जा सकता है।[२]

(३) वेद-नित्यता के विषय में कई मत दृष्टिगोचर होते हैं। एक मत के अनुसार ज्ञान-रूप या शब्द-रूप वेद नित्य नहीं। ये किसी समय उत्पन्न हुए और सदा नहीं रहेंगे। अथवा ईश्वरीय ज्ञान होने से वेद ज्ञान रूप में नित्य हैं; किन्तु शब्द रूप में नित्य नहीं। दूसरे मत के अनुसार वेद स्वरूपतः नित्य नहीं; क्योंकि प्रलय काल में वे अपने विद्यमान स्वरूप में नहीं रहा करते, फिर भी प्रलय के पश्चात् सर्वज्ञ के द्वारा पूर्व सर्ग के समान ही वेदों की रचना कराई जाती है अतः वेदाध्ययन का सम्प्रदाय उसी रूप में चलता रहता है। इस प्रकार वेद ज्ञान-रूप में तथा शब्द-रूप में भी प्रवाह से नित्य हैं, इसी रूप को अनित्य भी कह दिया जाता है। तीसरे मत के अनुसार वेद स्वरूपतः नित्य हैं। ज्ञान-रूप में या शब्द रूप में सदा से इसी रूप में चले आ रहे हैं, इसी रूप में रहेंगे। यह स्वरूपतः वेदों की नित्यता कही जा सकती है। इस नित्यता से वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध होती हैं तथा अपौरुषेय होने से वेद दोष-रहित हैं अतः स्वतः प्रमाण ही हैं, यह सिद्ध हो जाता है।[३]

(४) भारतीय वाङ्मय के परम प्राचीन ग्रन्थों में वेद-नित्यता के संकेत मात्र मिलते हैं। परवर्ती ग्रन्थों में इसका स्पष्ट विवेचन किया गया है। विशेष रूप से मीमांसा-परम्परा में वेद-नित्यता की विविध युक्तियों से सिद्धि की गई है—सूत्रों से लेकर उत्तरकालीन ग्रन्थ-सन्दर्भों में भी। सांख्य में वेद को अपौरुषेय बतलाते हुए भी नित्य नहीं माना गया। यह अग्रिम अनुसन्धान का विषय ही है कि सांख्य की दृष्टि में इन दोनों मन्तव्यों का कैसे सामञ्जस्य किया जा सकता है। जहाँ तक वेदान्त का प्रश्न है वहाँ तो प्रत्येक सर्ग के आदि में पूर्व सर्ग के समान ही वेद-रचना हुआ करती है अतः अनित्य होते हुए भी वेद अपौरुषेय हैं। इनकी अपौरुषेयता का स्वरूप भी मीमांसा की अपेक्षा कुछ भिन्न ही है। न्याय-वैशेषिक तथा योग की दृष्टि में वेद आप्तोक्त हैं, परम आप्त पुरुष (परमात्मा) की कृति हैं। ये पौरुषेय हैं, स्वरूपतः अनित्य हैं। सर्वज्ञ ईश्वर द्वारा प्रत्येक सर्ग के आदि में वेदों की रचना की जाती है।[४]

---

२. वही, परि० १, अनु० २।

३. वही, परि० १, अनु० ३।

४. वही, परि० १, अनु० ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) वेद-नित्यता के विषय में क्यों विचार किया जाने लगा ? वेद-विरोधियों की क्या धारणा रही ? और वेदानुयायियों ने किस प्रकार उनकी चुनौती का सामना किया ? किञ्च, स्वामी दयानन्द ने वेदोत्पत्ति और वेद-नित्यता आदि के विषय में किन युक्तियों के आधार पर किस मन्तव्य का प्रतिपादन किया ? उनके मन्तव्य भारतीय दार्शनिक जगत् में क्या स्थान रखते हैं ? इन सभी समस्याओं पर प्रस्तुत ग्रन्थ में विचार किया जा रहा है। इस विचार का केन्द्रबिन्दु वेदनित्यता तथा ऋषि दयानन्द के मन्तव्य ही रहे हैं। इसी हेतु इस सन्दर्भ का प्रस्तुत नामकरण किया गया है।[५]

(६) वेदमन्त्रों में वेद शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग हुआ है, वहाँ ऋक्, साम तथा यजुस् आदि शब्दों का प्रयोग मिलता है। 'छन्दांसि' शब्द से अथर्ववेद का ग्रहण भी माना गया है। कुछ मन्त्रों में उस यज्ञ से वेदों की उत्पत्ति कही गई है। यदि यज्ञ का अर्थ ईश्वर (विष्णु) माना जाता है तो यहाँ स्पष्टतः वेद ईश्वर से उत्पन्न हुए, यह अभिप्राय होगा। ऋग्वेद के 'वाचा विरूपनित्यया' मन्त्रांश से वेदवाणी को नित्य माना जाता है। यजुर्वेद में भी ऋग्वेद के समान ही वेदों की उत्पत्ति का निरूपण किया गया है। यहाँ 'चत्वारि शृङ्गा' शब्द से वेद चार हैं, यह अर्थ लिया गया है। अथर्ववेद के किन्हीं स्थलों पर ऋक्, यजुस् और साम के साथ 'छन्दस्' शब्द का भी प्रयोग हुआ है। वहाँ एक मन्त्र में ऋक्, यजुस्, साम तथा अथर्वाङ्गिरस की स्कम्भ (धारक शक्ति) से उत्पत्ति बतलाई गई हैं। फिर भी वेद-मन्त्रों में वेदनित्यता आदि का स्पष्ट निरूपण नहीं मिलता।[६]

(७) ब्राह्मण ग्रन्थों में वेद-संख्या, वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता आदि के विषय में कुछ अधिक सामग्री उपलब्ध होती है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऋक्, यजुः, साम तीन प्रकार के मन्त्रों की अग्नि आदि से उत्पत्ति का उल्लेख किया गया है। साथ ही त्रयी विद्या का भी। यहाँ चारों वेदों का नामतः उल्लेख नहीं। शतपथ में 'ते सर्वे त्रयो वेदाः' जैसे वचन मिलते हैं त्रयी विद्या शब्द का भी अनेक स्थलों में प्रयोग किया गया है। यहाँ 'अथर्वाणो वेदः', 'अङ्गिरसो वेदः' जैसे वाक्यांश भी हैं, किन्तु वेदों की उत्पत्ति का निरूपण करते समय तीन वेदों का ही उल्लेख किया गया है। ताण्ड्य महाब्राह्मण में वेदों की उत्पत्ति आदि का स्पष्ट निरूपण नहीं मिलता। गोपथ ब्राह्मण में वेदों की संख्या, उत्पत्ति तथा नित्यता आदि के विषय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध होती है। यहाँ स्पष्टतः

५. वही, परि० १, अनु० ५।

६. द्र०, वही, परि० २, अनु० १।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद चार हैं, चतुर्थ वेद ब्रह्मवेद है, इत्यादि वचन मिलते हैं। किन्तु कहीं-कहीं सर्पविद्या आदि के लिये भी वेद शब्द का प्रयोग किया गया है। यहाँ 'अथर्वन्' तथा 'अङ्गिरस्' शब्दों का कई स्थलों पर पृथक् रूप में प्रयोग मिलता है जिसके आधार पर अनेक कल्पनाएँ की जाती हैं। वस्तुतः अथर्ववेद की उत्पत्ति आदि के विषय में जो विविध विवाद विद्वानों में प्रचलित हैं उनके विषय में अग्रिम अनुसन्धानों से निश्चय करना उपयोगी होगा।[७]

(८) उपनिषदों में 'ऋचः, यजूंषि, सामानि' आदि के रूप में बहुवचन के प्रयोग मिलते हैं। कहीं-कहीं 'त्रयो वेदाः' शब्द का प्रयोग है। अनेक स्थलों पर चारों वेदों का स्पष्टतः उल्लेख है। कहीं अथर्ववेद का ब्रह्मवेद शब्द से उल्लेख किया गया है। छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक में 'आथर्वण या अथर्वाङ्गिरस' शब्द से भी अथर्ववेद का निर्देश किया गया है। छान्दोग्य में स्पष्ट रूप में आथर्वण को चतुर्थ वेद कहा गया है। बृहदारण्यक में चारों वेदों को उस महान् शक्ति का निश्वसित कहा गया है जिससे प्रकट होता है कि इस उपनिषद् के अनुसार पराशक्ति से स्वाभाविक रूप में वेदों की उत्पत्ति हुआ करती है। प्रसिद्ध उपनिषदों के अतिरिक्त अन्य उपनिषदों में भी चारों वेदों की संख्या का निर्देश करते हुए इनका नामतः उल्लेख किया गया है और इनको ब्रह्म का निश्वास मात्र कहा गया है। वेदों की उत्पत्ति का बहुशः कथन करते हुए भी उपनिषदों को वेदों की नित्यता कैसे अभिमत है? यह विदित नहीं होता।[८]

(९) छह वेदाङ्गों में शिक्षा, छन्दस् तथा ज्योतिष में वेद शब्द का कई बार प्रयोग मिलता है। श्लोकात्मक पाणिनीय शिक्षा में वेद में पुरुषरूप का आरोप करके शिक्षा आदि छह अङ्गों को पुरुष-शरीर के विविध अङ्गों के रूप में दिखलाया गया है। पिङ्गल के छन्दःशास्त्र में वेदों की उत्पत्ति आदि के विषय में विशेष सूचना नहीं मिलती। ज्योतिष शास्त्र में कई ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। वेदाङ्ग ज्योतिष नाम से जो ग्रन्थ उपलब्ध है उसमें वेदनित्यता आदि के विषय में विशेष विचार उपलब्ध नहीं होता। सूर्यसिद्धान्त नामक ग्रन्थ में वेदों की चार संख्या और सूर्यात्मक भगवान् से वेदोत्पत्ति का उल्लेख मिलता है।[९]

(१०) कल्प ग्रन्थ सूत्र रूप में हैं। श्रौतसूत्र गृह्यसूत्र आदि कल्प नामक वेदाङ्ग के अन्तर्गत हैं। चारों वेदों से सम्बन्ध रखने वाले पृथक्-पृथक् कल्पग्रन्थ

७. द्र०, यही, परि० २, अनु० २।
८. द्र०, यही, परि० २, अनु० ३।
९. द्र०, यही, परि० २, अनु० ४।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। यहाँ वेद, समाम्नाय आदि शब्दों तथा ऋक्, यजुः, आदि शब्दों का बहुशः प्रयोग मिलता है। किन्हीं के अनुसार मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों का नाम वेद है, किन्तु कुछ व्याख्याकार बतलाते हैं कि किसी के मत में केवल मन्त्र ही वेद कहलाते हैं। यहाँ प्रायः ऋक्, यजुः, साम का उल्लेख मिलता है। वैतान श्रौतसूत्र में कई बार 'ब्रह्मवेद', अथर्व तथा अङ्गिरस् शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। इन श्रौतसूत्रों में वेद की उत्पत्ति और नित्यता आदि के विषय में कोई विशेष सूचना नहीं मिलती। गृह्यसूत्रों में ऋक्, यजुस्, साम शब्द का बहुशः प्रयोग मिलता है। कहीं-कहीं ब्रह्मवेद तथा अथर्ववेद का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ भी कुछ स्थलों पर मन्त्र तथा ब्राह्मण दोनों को वेद कहा गया है। पारस्कर गृह्यसूत्र में तो वेदाध्ययन शब्द की व्याख्या करते हुए तर्क का भी इसी में अन्तर्भाव कर लिया गया है और किन्हीं के मतानुसार वेदाध्ययन का अभिप्राय वेदाङ्गों सहित अध्ययन बतलाया गया है। किन्तु इन्हें वेद संज्ञा के वाच्यार्थ का विवरण समझना युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होता। गृह्यसूत्रों में वेदों की संख्या, उत्पत्ति तथा नित्यता के विषय में कुछ उपलब्ध नहीं होता। जहाँ तक धर्मसूत्रों का प्रश्न है, यहाँ ऋक्, यजुः, साम तीन का बहुशः उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद का भी कहीं नाम लिया गया है। कई स्थलों से यह विदित होता है कि यहाँ वेदों की संख्या चार ही कही गई है। एक-दो स्थलों पर यह भी प्रकट होता है कि धर्मसूत्रकारों की दृष्टि में ब्रह्म से ही वेदों की उत्पत्ति होती है। फिर भी सामान्यतः वेद की उत्पत्ति तथा नित्यता का विवेचन धर्मसूत्रों में बहुत कम किया गया है।[१०]

(११) वेदाङ्ग में पाणिनि-व्याकरण की गणना की जा सकती है। पाणिनि ने वेदे, छन्दसि, निगमे आदि शब्दों का अनेकशः प्रयोग किया है। इन शब्दों से पाणिनि को क्या अर्थ अभिप्रेत है? यह विवादग्रस्त रहा है; पुनः पुनः अनुसन्धान की अपेक्षा रखता है। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया है और वेद की शाखाओं का भी परिगणन किया है। उन्होंने शब्द को नित्य माना है। वेदों के स्वर, वेद शब्दों की आनुपूर्वी को भी नियत बतलाया है। एक स्थल पर स्पष्टतः 'नित्यानि छन्दांसि' यह कहा है। भर्तृहरि ने वेद, श्रुति, छन्दस् आदि शब्दों से वेद का उल्लेख किया है, शब्दार्थ-सम्बन्ध को नित्य कहा है तथा वेद को आदि-रहित एवं विनाशरहित बतलाया है। साथ ही वेद को कई स्थलों पर अकर्तृक (जिसका कोई कर्त्ता न हो) भी कहा है।[११]

---

१०. द्र०, यही, परि० २, अनु० ५।

११. द्र०, यही, परि० २, अनु० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१२) यास्क ने निरुक्त में वेद का अनेक शब्दों से स्मरण किया है। विशेषकर निगम शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ ऋक्, यजुः, साम का कई बार प्रयोग हुआ है। 'चत्वारि श्रृङ्गा' मन्त्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में वेदों की संख्या चार कही गई है। वेदों की उत्पत्ति और नित्यता के विषय में भी निरुक्त में कुछ सामग्री मिलती है। यहाँ मन्त्रों में पदों की योजना तथा आनुपूर्वी को नियत कहा गया है। यह भी बतलाया गया है कि पुरुष-विद्या के अनित्य होने से वेद में यज्ञ आदि कर्म का प्रतिपादन किया गया है। इससे यह तात्पर्य समझा जाता है कि निरुक्तकार के मत में वेद नित्य हैं। किन्तु यह नित्यता किस प्रकार है? किस रूप में है? यह यहाँ स्पष्ट नहीं है।[१२]

(१३) स्मृतियों में वेद, श्रुति आदि शब्दों से वेद का स्मरण किया गया है। कहीं-कहीं 'वेदोपनिषदाम्' शब्द का प्रयोग भी मिलता है जिससे प्रतीत होता है कि यहाँ उपनिषद् को वेद से पृथक् माना गया है। स्मृतियों में ऋक्, यजुः, साम का अनेकशः उल्लेख मिलता है। सम्भवतः वहाँ तीन प्रकार के मन्त्रों का उल्लेख किया गया है। कई स्थलों पर स्पष्टतः वेदों की संख्या चार ही कही गई है। स्मृतियों में वेदों को सनातन (नित्य) कहा गया है, यह भी कहा गया है कि आदि में वेद के शब्दों के अनुसार ही ब्रह्मा ने सब के पृथक्-पृथक् नाम और कर्म की व्यवस्था की। साथ ही प्रजापति ने वेदों की सृष्टि की (असृजत), इस प्रकार का उल्लेख भी किया गया है। ऐसे स्थलों पर असृजत का अर्थ 'प्रादुर्भाव किया' यही मानना उचित प्रतीत होता है।[१३]

(१४) वाल्मीकि रामायण में वेद शब्द का बहुशः प्रयोग हुआ है, कहीं-कहीं प्रसङ्ग से किसी वेद का नाम आया है। ऋक्, यजुः, साम इन तीन वेदों के नाम भी आये हैं। वेद की उत्पत्ति और नित्यता आदि के विषय में यहाँ अधिक सूचनाएँ नहीं मिलतीं। 'नष्टां वेदश्रुतीमिव' इत्यादि प्रयोग से यह अवश्य विदित होता है कि यहाँ श्रुतिनाश की प्रकल्पना की जा चुकी थी। इसका क्या अभिप्राय है? इस पर महाभारत के प्रसंग में कुछ विचार किया गया है।[१४]

(१५) महाभारत में वेद-सम्बन्धी पर्याप्त सामग्री है। यहाँ वेद, श्रुति आदि शब्दों से वेद का उल्लेख मिलता है। स्थान-स्थान पर वेद चार बतलाये

---

१२. द्र०, वही, परि० २, अनु० ७।

१३. वही, परि० ३, अनु० १।

१४. वही, परि० ३, अनु० २।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गये हैं। चारों वेदों का नाम भी लिया गया है। वेद की उत्पत्ति और नित्यता के विषय में महाभारत में स्पष्टतः यह कहा गया है—ब्रह्मा से वेदों की उत्पत्ति हुई। वही भगवान् प्रत्येक सर्ग में वेदों की पुनः सृष्टि किया करता है। वेदवाणी अनादि तथा अनन्त है। वेदों में ऋषियों के जो नाम हैं स्वयम्भू वे ही नाम प्रलय के पश्चात् रख देता है। यहाँ कई स्थलों पर वेदश्रुति के नाश का उल्लेख मिलता है और नारायण द्वारा वेदों के उद्धार का भी। सम्भवतः ऐसे अधिकांश स्थलों पर प्रलय-कालीन श्रुतिलोप का उल्लेख किया गया है। फिर भी श्रुतिनाश के विषय में अग्रिम अनुसन्धान अपेक्षित है।[१५]

(१६) पुराणों में वेदों के नाम, संख्या, उत्पत्ति एवं नित्यता आदि के विषय में पर्याप्त चर्चा की गई है। वेदविद्या, त्रयीविद्या आदि का उल्लेख किया गया है। पुराणों के अनुसार ब्राह्मण तथा उपनिषद् भी वेद हैं या नहीं, यह विचारणीय ही है। यहाँ चारों वेदों का नामतः उल्लेख मिलता है। वेदोत्पत्ति और वेदनित्यता के विषय में यहाँ विविध दार्शनिक सम्प्रदायों में प्रचलित मतों की झलक दृष्टिगोचर होती है। कहीं वेदों को ब्रह्मा का निःश्वास कहा गया है, कहीं सर्ग के आदि में स्मरण किया या बनाया, आदि भी कहा गया है। वेदों को 'अनादिनिधनाः' भी कहा गया है। यहाँ भी व्यास द्वारा वेदों के चतुर्धा विभाग का उल्लेख मिलता है। सम्भवतः इसका तात्पर्य यह है कि व्यास जी ने अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से वेदों का चतुर्धा विभाग कर दिया। फिर भी यह अग्रिम अनुसन्धान का विषय है ही।[१६]

(१७) कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वेद तथा त्रयी आदि शब्दों का अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। यहाँ चारों वेदों का नामतः उल्लेख मिलता है। साथ ही इतिहासवेद शब्द का भी प्रयोग मिलता है, उसका क्या अभिप्राय है? यह विचारणीय ही है। वेद की उत्पत्ति तथा नित्यता क विषय में यहाँ कोई विशेष सूचना नहीं मिलती।[१७]

(१८) चरकसुश्रुत में आयुर्वेद के लिये वेद शब्द का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। किन्हीं सन्दर्भों में ऋग्वेद आदि के लिये भी वेद शब्द आया है। यहाँ चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया गया है। वेद की उत्पत्ति तथा नित्यता आदि के जो सन्दर्भ हैं उनमें विशेषतः आयुर्वेद का ही ग्रहण किया गया है।

---

१५. द्र०, यही, परि० ३, अनु० ३।
१६. द्र०, यही, परि० ३, अनु० ४।
१७. द्र०, यही, परि० ३, अनु० ५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुतः चरक-सुश्रुत आयुर्वेद के ग्रन्थ हैं उसको या उसके आधारभूत अथर्ववेद का निरूपण ही उनका विषय हो सकता है।[१८]

(१९) भरत के नाट्यशास्त्र में कई स्थलों पर 'वेद चार हैं' यह कहा गया है और उनका नामतः उल्लेख किया गया है। यहां बतलाया गया है कि ब्रह्मा ने चारों वेदों के आधार पर नाट्य-वेद का निर्माण किया। एक स्थल पर ईश्वर को 'वेदमय' कहा गया है; किन्तु कहीं स्पष्टतः वेदोत्पत्ति या वेदनित्यता का निरूपण नहीं किया गया।[१९]

(२०) भारतीय दर्शन के ग्रन्थों में वेदों की संज्ञा एवं संख्या का तो कहीं-कहीं प्रसङ्गवश ही निरूपण किया गया है; किन्तु उत्पत्ति तथा नित्यता का विस्तारपूर्वक विवेचन है। जो दर्शन वेद को प्रमाण नहीं मानते तथा अवैदिक (या नास्तिक) दर्शन के नाम से विख्यात हैं उनमें चार्वाक, बौद्ध और जैन प्रसिद्ध हैं। इन सभी के अनुसार वेद पुरुषकृत हैं, वे आप्तपुरुषों की रचना नहीं हैं, अपितु अविश्वसनीय पुरुषों की रचना हैं। चार्वाक के अनुसार जो वेदों के तीन कर्ता हैं वे धूर्त्त, भाण्ड तथा निशाचर हैं। चार्वाक ने याज्ञिकी हिंसा की कटु आलोचना की है तथा वेदानुयायियों के अन्य कुछ कार्यकलाप की भी।[२०]

बौद्धदर्शन के प्रारम्भिक युग से ही वैदिक विचारधारा को बुद्धि-संगत नहीं माना गया है। कालान्तर में यहां सर्वज्ञ के वचन को ही प्रामाणिक समझा गया है, वेद की अपौरुषेयता किं वा प्रामाणिकता का निराकरण किया गया है, साथ ही अनादिता तथा नित्यता का भी खण्डन किया गया है। ईश्वर की परीक्षा के प्रसगङ् में नैयायिक द्वारा अभिमत ईश्वर की सर्वज्ञता का भी निराकरण किया गया है। फलतः बौद्ध मत में वेद ईश्वर-प्रणीत भी नहीं हैं।[२१]

जैन दर्शन में कहा गया है कि अपौरुषेय वाणी का आविर्भाव नहीं हो सकता। वहां वेद की अनादिता और नित्यता का निराकरण किया गया है। प्रभाचन्द्र कहते हैं कि स्वयं वेद में भी वेद के कर्ता का स्मरण किया गया है; अतः वेद की अपौरुषेयता को सिद्ध करने वाले हेतु सद् हेतु नहीं हैं। वादिराज सूरि ने

---

१८. द्र०, यही, परि० ३, अनु० ६।

१९. द्र०, यही, परि० ३, अनु० ७।

२०. यही, परि० ४ अनु० १ (क)।

२१. यही, परि० ४, अनु० १ (ख)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शब्द की नित्यता का भी विस्तारपूर्वक खण्डन किया है। मल्लिषेण ने बतलाया है कि वेद ईश्वर-प्रणीत नहीं हो सकते। उन्होंने वेदानुयायियों के कर्मकलाप को दोषयुक्त दिखलाते हुए वेदों को आप्त-प्रणीत भी नहीं स्वीकारा। साथ ही वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता का भी निराकरण किया है।[२२]

(२१) न्याय-वैशेषिक के ग्रन्थों में वेद, श्रुति, आम्नाय आदि शब्दों से वेद का स्मरण किया गया है। यहाँ वेद को नित्य नहीं माना गया अपितु आप्तप्रणीत या ईश्वरप्रणीत कहा गया है। न्यायभाष्य, वार्त्तिक तथा न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका आदि में वेदनित्यता का निराकरण किया गया है। वेद नित्य हैं, ऐसा क्यों कहा जाता है? इसके उत्तर में वात्स्यायन का कथन है – अतीत और अनागत के भिन्न-भिन्न मन्वन्तरों तथा युगों में वेदाध्ययन की परम्परा, अभ्यास तथा वैदिक प्रयोगों का विच्छेद नहीं होता, यही वेदों की नित्यता है। न्यायवार्त्तिक तथा टीका में इसी अभिप्राय को स्पष्ट किया गया है। वेद ईश्वर-प्रणीत हैं इसीलिये वे प्रमाण हैं, नित्य होने से नहीं।[२३]

न्यायमञ्जरीकार जयन्त भट्ट ने विविध युक्तियों और तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि वेद चार हैं। वेद-त्रयी तो तीन प्रकार के मन्त्रों के कारण कही जाती है। उन्होंने बतलाया है कि ऋक्, यजुस्, साम तीन प्रकार के मन्त्र हैं। अथर्ववेद में भी तीनों प्रकार के ही मन्त्र हैं। उन्होंने यह भी कहा है कि अथर्ववेद को कहीं-कहीं ब्रह्मवेद भी कहा गया है, यही वेदों में प्रथम है। उनका कथन है कि मन्त्र-ब्राह्मण-समुदाय ही वेद कहलाता है। वेद-नित्यता को सिद्ध करने के लिये मीमांसक द्वारा प्रस्तुत किये गये अनुमानों का निराकरण करके जयन्त भट्ट ने वेदों की पौरुषेयता सिद्ध की है। और, बलपूर्वक कहा है – 'प्रति मन्वन्तरं चैषा श्रुतिरन्या विधीयते'।[२४]

वैशेषिक सूत्र में वेदों को आप्तोक्त कहा गया है और बतलाया गया है कि वेदों की रचना बुद्धिपूर्वक की गई है। प्रशस्तपाद भाष्य में वेदों को ईश्वरोक्त बतलाया गया है और उन्हें अनित्य तथा पौरुषेय माना गया है।[२५] प्रशस्तपादभाष्य की टीकाओं में इस भाव को अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। श्रीधर ने बतलाया है कि वेद चार हैं जो प्रजापति से उत्पन्न हुए हैं।

२२. वही, परि० ४, अनु० १ (ग)।
२३. द्र०, वही, परि० ४, अनु० २ (क), (ख)।
२४. द्र०, वही, परि० ४, अनु० २(ग)।
२५. द्र०, वही, परि० ४, अनु० २ (घ)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उन्होंने वेदनित्यता के साधक हेतुओं का भी दोष दिखलाया है और अनुमान द्वारा वेदों की अनित्यता सिद्ध करते हुए सिद्ध किया है कि वेद पुरुषविशेष की रचना हैं। इसी प्रकार किरणावली आदि टीकाओं में उदयनाचार्य ने वेद को ईश्वर-प्रणीत दिखलाया है।[२६]

न्याय-वैशेषिक के स्वतन्त्र ग्रन्थों में भी वेदोत्पत्ति तथा वेदनित्यता के विषय में कुछ सूचनाएं मिलती हैं। भासर्वज्ञ ने न्यायसार में अनुमान द्वारा सिद्ध किया है कि वेद परम आप्त पुरुष की कृति हैं। उदयनाचार्य ने न्यायकुसुमाञ्जलि में विस्तारपूर्वक सिद्ध किया है कि वेदों का कर्ता ईश्वर है। उन्होंने मीमांसक की वेद-नित्यता-विषयक युक्तियों का भी निराकरण किया है। इसी प्रकार तत्त्व-चिन्तामणि, तर्कभाषा तथा न्यायसिद्धान्तमुक्तावली आदि न्याय-वैशेषिक के स्वतन्त्र ग्रन्थों में भी संक्षेप में तथा कहीं विस्तार से वेदोत्पत्ति का निरूपण किया गया है। यहां यह अग्रिम अनुसन्धान का विषय है कि न्यायवैशेषिक के मत में प्रत्येक सर्ग के आदि में वेद की पूर्व सर्ग के समान ही रचना होती है या भिन्न प्रकार से।[२७]

(२) सांख्यसूत्र में वेद को अपौरुषेय बतलाया गया है; किन्तु अनित्य भी। यहाँ पौरुषेयता का स्वरूप भी दिखलाया गया है तथा अनुमान द्वारा वेद की अपौरुषेयता सिद्ध की गई है। सम्भवतः सांख्य के मतानुसार वेद-रचना में किसी पुरुष की स्वतन्त्रता न होना ही उसकी अपौरुषेयता है? और, वर्णों के अनित्य होने से वर्ण-समुदाय रूप वेद भी अनित्य है?[२८]

सांख्यकारिका की विविध टीकाओं में वेद के विषय में पर्याप्त विचार किया गया है। युक्तिदीपिका के अनुसार मन्त्र तथा ब्राह्मण वेद हैं। वाचस्पति मिश्र ने वेद-वाक्यों को अपौरुषेय बतलाया है। उन्होंने यह भी कहा है कि आदि विद्वान् कपिल को कल्प के आरम्भ में पहले कल्पों में अधीत श्रुति का स्मरण हो जाया करता है। इस कथन से यह प्रतीत होता है कि सांख्य-मत में वेद प्रवाह से नित्य है।[२९]

---

२६. द्र०, यही, परि० ४, अनु० २ (ङ)।
२७. द्र०, यही, परि० ४, अनु० २ (च)।
२८. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ३ (क)।
२९. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ३ (ख)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पातञ्जल योग के अनुसार शास्त्र (वेद) ईश्वरकृत है। ईश्वर सर्वज्ञ है। वह प्रत्येक सर्ग के आदि में वेद का उपदेश दिया करता है।[30]

(२३) वेद-नित्यता को सिद्ध करने वालों में पूर्वमीमांसा-सम्प्रदाय प्रमुख है वस्तुत: वेद के विविध पक्षों पर विचार करने वाला यह मुख्य शास्त्र है। मीमांसा-सूत्रों में ऋक्, यजुः, साम के स्वरूप का निरूपण किया गया है और ब्राह्मण-ग्रन्थ के स्वरूप का भी। यहाँ शब्द अर्थ और शब्दार्थसम्बन्ध की नित्यता सिद्ध की गई है और वेदों की नित्यता एवं अपौरुषेयता को सिद्ध करने के लिये भी अनेक युक्तियाँ दी गई हैं। शाबर भाष्य में इन सभी मन्तव्यों का विवेचन किया गया है तथा कुमारिल भट्ट ने श्लोकवार्त्तिक में विरोधियों की युक्तियों का निराकरण करते हुए मीमांसा के मन्तव्यों की विशद व्याख्या की है। वहां यह भी कहा है कि वेद की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये यहां वेद-नित्यता सिद्ध की जाती है। वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता का प्रतिपादन करने के लिये यहाँ अनुमान भी प्रस्तुत किये गये हैं।[31] पार्थसारथि मिश्र ने श्लोकवार्त्तिक की टीका न्यायरत्नाकर में तथा एक स्वतन्त्र ग्रन्थ शास्त्रदीपिका में वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता का संक्षिप्त एवं स्पष्ट निरूपण किया है। उन्होंने नैयायिक तथा वेदान्ती के मन्तव्यों की असारता दिखलाई है तथा वेदनित्यता का प्रतिपादन किया है।[32] प्रभाकर सम्प्रदाय के मन्तव्यों का विशद विवेचन शालिकनाथ की प्रकरणपञ्चिका में उपलब्ध होता है। यहाँ शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को अनादि तथा अपौरुषेय दिखलाया गया है तथा अनेक युक्तियों से वेदों की अपौरुषेयता सिद्ध की गई है।[33] मानमेयोदय मीमांसा-सम्प्रदाय का परवर्ती ग्रन्थ है। इसमें अन्य मतों का निराकरण करते हुए भाट्ट मीमांसा के मतों की स्थापना की गई है। यहाँ वेद ईश्वर-प्रणीत नहीं, यह दिखलाते हुए वेद की नित्यता तथा अपौरुषेयता सिद्ध की गई है।[34]

(२४) ब्रह्मसूत्र वेदान्त दर्शन के नाम से प्रसिद्ध हैं। यहां ब्रह्म को शास्त्र का कारण (योनि) कहा गया है; किन्तु इस कथन का विशदीकरण नहीं किया गया। ब्रह्मसूत्रों पर अनेक विद्वानों ने भाष्य किये हैं जिनके अनुसार वेदान्त के

---

३०. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ३ (ग)।

३१. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ४ (क), (ख)।

३२. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ४ (ग)।

३३. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ४ (घ)।

३४. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ४ (ङ)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनेक अवान्तर सम्प्रदाय हो गये हैं। उपलब्ध भाष्यों में अद्वैतवादी शाङ्करभाष्य (शारीरक भाष्य) सबसे प्राचीन है। रामानुज आदि के मत जो वैष्णव वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध हैं उनका भी पर्याप्त प्रचार दृष्टिगोचर होता है।[३५] शाङ्कर भाष्य में दिखलाया गया है कि ब्रह्म लीलामात्र से वेदरचना करता है, वेद उसके निश्वास के समान हैं। शङ्कराचार्य के मत में प्रपञ्च के सृष्टि प्रलय हुआ करते हैं, महाप्रलय के समय वेद भी ब्रह्म में विलीन हो जाते हैं। महाप्रलय के पश्चात् जब पुनः सृष्टि होती है तो परमेश्वर के अनुग्रह से हिरण्यगर्भ आदि को वेदों का भी अनुस्मरण हो जाता है और पूर्वकल्पों के समान ही वे वेदों की रचना करते हैं। शारीरक भाष्य के टीकाकारों ने वेदों की अनित्यता तथा अपौरुषेयता का स्वरूप स्पष्ट करते हुए यह दिखलाया है कि प्रत्येक सर्ग में वेदों की रचना पूर्व सर्गों के समान ही होती है। वर्णानुपूर्वी के अनित्य होने से तथा प्रलय में ब्रह्म में ही विलीन हो जाने से वेद अनित्य हैं; किन्तु वेद-रचना में पुरुष की स्वतन्त्रता न होने से वे अपौरुषेय हैं। इस प्रकार संसार के सर्ग-प्रलय होते हैं तथा वेद प्रवाह से नित्य (अनित्य) कहे जा सकते हैं।[३६]

अद्वैत वेदान्त के स्वतन्त्र ग्रन्थों में भी वेदों की अनित्यता तथा अपौरुषेयता का विशदीकरण किया गया है। विवरणप्रमेयसंग्रह तथा वेदान्तपरिभाषा नामक ग्रन्थ इस विषय में विशेष दर्शनीय हैं। विवरणप्रमेयसंग्रह में वेदों का जगत्-प्रपञ्च के समान ही ब्रह्म में आरोप बतलाया गया है और इन्हें नित्य कहा गया है, जिसका अभिप्राय प्रवाह से नित्य ही होता है। वेदान्तपरिभाषा में वेदान्त के एतद्विषयक मन्तव्य का स्पष्ट शब्दों में निरूपण किया गया है। तदनुसार वेद अनित्य हैं तथा अपौरुषेय हैं। यहां अपौरुषेयता का स्वरूप कुछ भिन्न शब्दों में दिखलाया गया है।[३७]

वेदान्त के अन्य सम्प्रदायों में भी वेद को अपौरुषेय माना गया है। भास्कराचार्य ने वेदों का ब्रह्म से आविर्भाव तथा तिरोभाव मानकर भी उन्हें अनादि नित्य कहा है। इसी प्रकार रामानुजाचार्य ने भी। रामानुज के मत में अपौरुषेयता का अर्थ है पहले उच्चारण के समान ही उच्चारण किया जाना। इनके मत में पुरुषोत्तम विना संस्कार ही अपने ज्ञान के अनुसार वेदों की पूर्व सर्ग के समान रचना किया करता है। निम्बार्काचार्य तथा मध्वाचार्य ने अत्यन्त संक्षेप में ही वेदनित्यता

३५. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ५ (क)।
३६. द्र०, यही, परि०, ४, अनु० ५ (ख)।
३७. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ५ (ग)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का निरूपण किया है। वल्लभाचार्य ने मन्त्र तथा ब्राह्मण को वेद कहा है। उन्होंने वेद की नित्यता सिद्ध करने के लिये कई हेतु प्रस्तुत किये हैं।[३८]

(२५) ऋषि दयानन्द ने वेदोत्पत्ति का निरूपण करते हुए भी वेद-नित्यता का अनेक युक्ति तथा प्रमाणों के साथ विवेचन किया है, उनकी जीवनी तथा शास्त्रार्थों में ऐसे कई प्रसङ्ग आये हैं जहाँ प्रतिवादियों का उत्तर देते हुए उन्होंने वेदों को ईश्वर-प्रणीत दिखलाया है। उनकी दृष्टि में वेदों की प्राप्ति का वही समय है जो मनुष्य की उत्पत्ति का आदिकाल है।[३९]

(२६) दयानन्द की दृष्टि में वेदनित्यता पर विचार करते समय यह प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि वेदों में अनित्य इतिहास है तो वे नित्य कैसे हो सकते हैं। इसके उत्तर में यही कहना है कि दयानन्द के अनुसार वेद में अनित्य इतिहास नहीं है। जो ऐतिहासिक से स्थल दृष्टिगोचर होते हैं उनका अर्थ यौगिक प्रक्रिया से ही करना युक्तिसंगत है। दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका में ऐसे कितने ही सन्दर्भों का यौगिक अर्थ दिखलाया है, साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि सूक्तों और मन्त्रों पर जो ऋषि लिखे जाते हैं वे उनके कर्ता नहीं हैं अपितु केवल अर्थद्रष्टा हैं।[४०] वेद में इतिहास है या नहीं? यह एक विवादास्पद प्रश्न रहा है, आज भी है। निरन्तर अनुसन्धान से ही इस विषय में किसी परिणाम पर पहुँचा जा सकता है।

(२७) दयानन्द के अनुसार वेदसंहिताएँ ही वेद कहलाती हैं उन्होंने चारों वेदों का नामतः उल्लेख किया है। शाखाओं और ब्राह्मणों को वेदों का व्याख्यान माना है, उपनिषदों को भी वेद नहीं माना। वेद-नित्यता पर स्वामी जी ने विस्तार से विचार किया है। वे ज्ञानरूप में तथा शब्दरूप में दोनों ही प्रकार से वेदों को नित्य मानते हैं। साथ ही उन्होंने वेदोत्पत्ति का भी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में विस्तार से वर्णन किया है।[४१]

(२८) वेदोत्पत्ति का निरूपण करते हुए स्वामी जी ने इस सृष्टि के आदि में ईश्वर द्वारा वेदों की उत्पत्ति बतलाई है। इस विषय में स्वभावतः यह शङ्का होती है कि यदि वेदों की उत्पत्ति होती है तो वे नित्य कैसे हो सकते

---

३८. द्र०, यही, परि० ४, अनु० ५ (घ)।
३९. द्र०, यही, परि० ५, अनु० १।
४०. द्र०, यही, परि० ५, अनु० २।
४१. द्र०, यही, परि० ५, अनु० ३।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं ? स्वामी जी की ओर से इस विषय में यही कहा जा सकता है कि उत्पत्ति और विनाश का अर्थ है—आविर्भाव तथा तिरोभाव। प्रलयकाल में भी वेद ईश्वर के ज्ञान में विद्यमान रहते हैं और प्रत्येक सृष्टि के आदि में ईश्वर पहले सर्गों के समान ही वेदों की रचना कर देता है। फलतः वर्तमान सृष्टि की दृष्टि से वेदों की उत्पत्ति कह दी जाती है और सृष्टि प्रलय के प्रवाह की दृष्टि से वेदों को नित्य माना जाता है।[४२]

(२९) स्वामी दयानन्द ने वेदों की नित्यता अनेक युक्तियों से सिद्ध की हैं। उनकी सबसे बड़ी युक्ति यह है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है और ईश्वर के ज्ञानादि गुण नित्य हैं; अतः वेद भी नित्य हैं। स्वामी जी कई स्थलों पर कहते हैं कि ईश्वर की विद्या होने से वेद नित्य हैं। भारतीय दर्शन के अन्य कई विचारकों ने भी ईश्वर के ज्ञान को नित्य माना है। ज्ञान-रूप में ही नहीं, शब्द-रूप में भी वेद नित्य हैं, यह बतलाते हुए स्वामी जी ने वेदान्त के समान ही कहा है कि विधाता पहले सर्गों के समान ही नवीन सर्ग में भी वेदों की रचना किया करता है। उसके शब्द मात्रा आदि ज्यों के त्यों रहते हैं। अतः वेद शब्द-रूप में भी नित्य ही है।[४३]

(३०) केवल युक्तियों से ही नहीं, भारतीय वाङ्मय के विविध प्रमाणों से वेदों की नित्यता सिद्ध की गई है। पतञ्जलि ने महाभाष्य में शब्द को नित्य कहा है। मीमांसासूत्र में अनेक युक्तियों से शब्द की नित्यता सिद्ध की गई है। फलतः शब्दरूप वेद भी नित्य होना ही चाहिए। स्वामी दयानन्द ने वैशेषिक, न्याय और योग तीनों के अनुसार भी वेदों को नित्य दिखलाया है। उसमें ईश्वरीय ज्ञान होना ही निमित्त दिखलाया गया है। किन्तु न्याय वैशेषिक की परवर्ती व्याख्याओं के अनुसार यह विदित होता है कि न्याय-वैशेषिक और सांख्य में वेद को नित्य नहीं माना गया। इस विषय में अग्रिम अनुसन्धान अपेक्षित ही है। स्वामी जी ने वेदान्त के प्रमाण प्रस्तुत करते हुए भी वेदों की नित्यता सिद्ध की है। वेदान्त के ग्रन्थों के अवलोकन से यह विदित होता है कि वहाँ वेदों को प्रवाह से नित्य माना ही गया है।[४४]

(३१) पाश्चात्य विद्वान् वेदों की उत्पत्ति के समय का भिन्न-भिन्न प्रकार से अनुमान करते रहे हैं। उनमें से कुछ विद्वानों के मत स्वामी दयानन्द के

४२. द्र०, यही, परि० ५, अनु० ४।
४३. द्र०, यही, परि० ५, अनु० ५।
४४. द्र०, यही, परि० ५, अनु० ६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामने भी उपस्थित थे। स्वामी जी ने वेदनित्यता की सिद्धि करते हुए मैक्समूलर और विल्सन आदि के मतों का निराकरण किया है। इसका अभिप्राय यही है कि वेदों के नित्य सिद्ध हो जाने पर इनकी उत्पत्ति का कोई समय निर्धारित करना संगत नहीं है। यूरोप के अन्य विद्वानों ने तथा भारतीय विद्वानों ने भी ज्योतिष आदि के आधार पर वेदों की रचना का समय निश्चित करने का प्रयास किया है। स्वामी जी की दृष्टि में उन सभी के मत स्वीकार-योग्य नहीं, फिर भी यह एक ऐसा विषय है जिसमें निरन्तर अनुसन्धान करके ही विद्वान् कुछ कहने का अधिकार रखते हैं।[४५]

(३२) स्वामी दयानन्द के वेद-नित्यता सम्बन्धी मन्तव्य में प्राचीन विचारकों के मन्तव्यों का समन्वित रूप दृष्टिगोचर होता है। उसमें अद्वैत वेदान्त के विचारों के साथ अधिक समानता है। वेदों की ईश्वरोक्तता न्याय-वैशेषिक और योग के समान है और वेद-नित्यता मीमांसा के समान दृष्टिगोचर होती है फिर भी स्वामी दयानन्द ने वेदों को अपौरुषेय नहीं कहा अपितु ईश्वरोक्त तथा नित्य माना है। अतः उनका यह मन्तव्य दूसरों के समान होते हुए भी कुछ विलक्षण ही है।[४६]

—०—

४५. द्र०, यही, परि० ५, अनु० ७।
४६. द्र०, यही, परि० ५, अनु० ८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायक-ग्रन्थ-सूची

अग्निपुराण	...	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९६६।
अणुभाष्य (ब्रह्मसूत्र)	वल्लभाचार्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९०५।
अत्रिस्मृति (बीस स्मृतियाँ, द्वितीय खण्ड)	...	संस्कृति संस्थान, बरेली, १९६६।
अथर्ववेद	...	परोपकारिणी सभा, वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, २०२४ वि०।
अथर्ववेदभाष्य सायण, स० विश्वबन्धु		विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान, होशियारपुर, १९६०-६१।
अथर्ववेद एवं गोपथ ब्राह्मण	एम० ब्लूमफील्ड (अनु०सूर्यकान्त)	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, १९६४।
अनिरुद्धवृत्ति (सांख्यसूत्र)	अनिरुद्ध	प्राचीन भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, १९६४।
अनुमानचिन्तामणि	गङ्गेशोपाध्याय	कलकत्ता, १८७५।
अमरकोष	अमरसिंह	चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी १, १९७०।
अव्यक्तोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७०।
आपस्तम्ब गृह्यसूत्र	...	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७१।
आपस्तम्ब धर्मसूत्र	...	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६९।
आपस्तम्बश्रौतसूत्र (धूर्तस्वामी-भाष्य)	...	ऑरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा, १९५५।
आश्वलायन गृह्यसूत्र	...	ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९७६।
आश्वलायन श्रौतसूत्र	स० गणेश शास्त्री	आनन्दाश्रम, पूना, १९१७।
उपनिषत्सङ्ग्रह	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९००।
ऋग्वेद	...	(१) वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १९७६ (२) स्वाध्याय मण्डल, पारडी
ऋग्वेदभाष्य	दयानन्द सरस्वती	वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, २०२० वि०।
	सायण	वैदिक सशोधन मण्डल, पूना, १९३७-५१।
ऋग्वेदभाष्यभूमिका	सायण	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७६।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका	दयानन्द सरस्वती	रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, १९६७।
ऐतरेयब्राह्मण	...	आनन्दाश्रम, पूना, १९७७।
ऐतरेयब्राह्मण	षड्गुरुशिष्यवृत्ति	त्रावणकोर यूनिवर्सिटी, १९५८।
कठोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७०।
काठक गृह्यसूत्र	...	दयानन्द महाविद्यालय, लाहौर, १९७१ वि०।
काण्वसंहिता (सायण भाष्य)	सायण	द्र०, वैदिक वाङ्मय का इतिहास, दूसरा भाग, पृ० १०३।
कात्यायन श्रौतसूत्र	कात्यायन	चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७२।
किरणावली	उदयनाचार्य	ऑरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा, १९७१।
केनोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७०।
कौटलीय अर्थशास्त्र	कौटिल्य	मेहरचन्द्र लछमनदास, दिल्ली, १९७०।
कौषीतकिगृह्यसूत्र	स० टी० आर० चिन्तामणि	मद्रास, १९४४।
क्या वेद में इतिहास है	जयदेव शर्मा विद्यालंकार	आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, १९५४।
खुद्दकनिकाय	...	नालन्दा देवनागरी पालि ग्रन्थमाला, १९५९।
गरुडपुराण	स० रामशंकर भट्टाचार्य	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९६४।
गोपथब्राह्मणभाष्य	क्षेमकरणदासत्रिवेदी	३४, लूकरगंज, इलाहाबाद, १९७७।
गोभिल गृह्यसूत्र	स० सत्यव्रत	शास्त्र प्रकाश भवन, मधुरापुर, विद्वद्पुर बाजार, मुजपफरपुर, १९३४।
गौडपादभाष्य (सांख्यकारिका)	गौडपादाचार्य	ऑरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, १९३३।
गौतमधर्मसूत्र	गौतम	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६६।
चरकसंहिता	चरक	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७५।
छान्दोग्योपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७०।
जयमङ्गला (सांख्यकारिका)	...	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९७०।
तत्त्वचिन्तामणि	गङ्गेशोपाध्याय	मिथिला विद्यापीठ, दरभङ्गा १९५७।
तत्त्ववैशारदी (योगभाष्य)	वाचस्पति मिश्र	आनन्दाश्रम, पूना, १९७८।
तत्त्वसङ्ग्रह (पञ्जिका-सहित)	शान्तरक्षित, कमलशील	बौद्धभारती, वाराणसी, १९६८।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्त्वोपप्लवसिंह	जयराशिभट्ट	गायकवाड़ ऑरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, १९४०।
तर्कभाषा	केशवमिश्र	साहित्य भण्डार, मेरठ, १९७३।
ताण्ड्य महाब्राह्मण	...	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९३५।
तैत्तिरीयसंहिता भाष्य	(१) भट्टभास्कर	वैदिक संशोधन मण्डल, पूना–९, १९७०।
	(२) सायण	आनन्दाश्रम, पूना, १९७८।
दयानन्दीय लघुग्रन्थसङ्ग्रह	...	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, १९७५।
दयानन्द-शास्त्रार्थ संग्रह	...	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, २०२७ वि०।
नाट्यशास्त्र	भरत	(क) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७१। (ख) मनमोहनघोष संस्करण, कलकत्ता, १९५६।
निरुक्त	यास्क	रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, २९२१ वि०।
न्यायकन्दली	श्रीधर	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९७७।
न्यायकारिकावली तथा मुक्तावली	विश्वनाथ न्याय-पञ्चानन	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, आफिस, वाराणसी, १९७२।
न्यायकुसुमाञ्जलि	उदयनाचार्य	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९५७।
न्यायदर्शन	गौतम	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७०।
न्यायमञ्जरी	जयन्तभट्ट	चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९७१।
न्यायरत्नाकर	पार्थसारथिमिश्र	द्र० श्लोकवार्त्तिक।
न्यायवार्त्तिक	उद्योतकर	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९१६।
न्यायवार्त्तिकतात्पर्यटीका	वाचस्पति मिश्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस, वाराणसी, १९२५।
न्यायविनिश्चय (अकलङ्कग्रन्थत्रय)	अकलङ्क	सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३९।
न्यायविनिश्चय विवरण–२	वादिराज सूरि	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, १९५४।
न्यायसार	भासर्वज्ञ	गवर्नमेण्ट ऑरियण्टल मेनुस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास, १९६१।
पञ्चपादिका	पञ्चपादाचार्य	गवर्नमेण्ट ऑरियण्टल सीरीज, मद्रास, १९५८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद्मपुराण	...	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना, १८६३ ।
पाणिनीय शिक्षा (सिद्धान्तकौमुदी)	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६७ ।
पारस्करगृह्यसूत्र	पारस्कर	भारतीय विद्याप्रकाशन, वाराणसी, १९७७ ।
पिङ्गलछन्दःसूत्र	पिङ्गलाचार्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी १९६६ ।
पुराणगत वेदविषयक सामग्री का समीक्षात्मक अध्ययन ।	रामशङ्कर भट्टाचार्य	हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९६५ ।
प्रकरणपञ्चिका	शालिकनाथ	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९६१ ।
प्रबोधचन्द्रोदय	कृष्णमिश्र	चौखम्बा विद्याभवन बनारस, १९५५ ।
प्रमाणवार्त्तिक	धर्मकीर्ति	बौद्ध भारती, वाराणसी, १९६७ ।
प्रमाणसंग्रह	अकलङ्क	सिंघी जैन ज्ञानपीठ, कलकत्ता, १९३९ ।
प्रमेयकमलमार्तण्ड	प्रभाचन्द्र	निर्णय सागर, १९४१ ।
प्रशस्तपादभाष्य	प्रशस्तपादाचार्य	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८० ।
प्रश्नोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७७ ।
प्राचीन भारतीय साहित्य-१	एम० विन्टरनिट्स (अनु० लाजपतराय)	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९६१ ।
प्राचीन भारतीय साहित्य का इतिहास,	एम० विन्टरनिट्स (अनुवादसमिति)	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७५ ।
बृहदारण्यकोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७० ।
बृहदारण्यकोपनिषद्भाष्य	शङ्कराचार्य	आनन्दाश्रम, पूना, १८९४ ।
बृहद्देवता (शौनकीय)	शौनक	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९३३ ।
बौधायन धर्मसूत्र	...	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २०२९ वि० ।
ब्रह्माण्डपुराण	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९७३ ।
ब्रह्मसूत्र (शाङ्करभाष्य, भामती आदि)	बादरायण	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९३८ ।
ब्रह्मसूत्रभाष्य (तत्त्वदीपिका सहित)	आनन्द तीर्थ (मध्वाचार्य)	मैजस्टिक प्रेस, उडुपी, शक स० १८७९ ।
ब्रह्मसूत्रभाष्य	भास्कराचार्य	विद्या विलास प्रेस, बनारस, १९०३ ।
भागवतपुराण	...	गीता प्रेस, गोरखपुर, २०२१ वि० ।
भारद्वाज श्रौतसूत्र	...	वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९६४ ।
भ्रमोच्छेदन	दयानन्द सरस्वती	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, १९७५ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्रान्तिनिवारण	दयानन्द सरस्वती	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, १६७५।
मज्झिमनिकाय (हिन्दी अनुवाद)	...	महाबोधि सभा, सारनाथ, वाराणसी, १६६४।
मनुस्मृति	मनु	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १६७४।
मनोरथनन्दिवृत्ति	मनोरथनन्दिन्	द्र० प्रमाणवार्त्तिक।
मन्वर्थमुक्तावली	कुल्लूकभट्ट	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १६७०।
महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित	पं० घासीराम	आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, २०१५ वि०।
महाभारत	व्यास	स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १६६८।
महाभाष्य (प्रदीप, उद्योत सहित)	पतञ्जलि, कैयट, नागेशभट्ट	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६६७।
महोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७०।
माठरवृत्ति (सांख्यकारिका)	माठराचार्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १६७०।
मानमेयोदय	नारायण	अड्यार लाइब्रेरी, अड्यार, मद्रास, १६७५।
मीमांसादर्शन (मीमांसासूत्र)	जैमिनि	आनन्दाश्रम ग्रन्थावलि, पूना, १६७०।
मुण्डकोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७०।
यजुर्वेद	...	(१) वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, १६७०। (२) स्वाध्यायमण्डल, पारडी, बलसाड, २०२६ वि०।
यजुर्वेद भाष्य	(१) उवट महीधर	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १६२६।
	(२) दयानन्द सरस्वती	वैदिक यन्त्रालय, अजमेर, २०२६ वि०।
याज्ञवल्क्यस्मृति	याज्ञवल्क्य	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, २०३३ वि०।
युक्तिदीपिका	...	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, १६७०।
योगभाष्य (व्यासभाष्य)	व्यास	आनन्दाश्रम, पूना, १६७८।
योगवार्त्तिक	विज्ञानभिक्षु	भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १६७१।
योगसूत्र	पतञ्जलि	आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रंथावलि पूना, १६७८।
रामानुजीय टीका (वाल्मीकि रामायण)	...	लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय, कल्याण, बम्बई, १६६२ वि०।
रामायणभूषण	गोविन्दराज	लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय, कल्याण, बम्बई, १६६२ वि०।
लाट्यायन श्रौतसूत्र	...	विद्याविलास प्रेस, बनारस, १६३२।
वाक्यपदीय (ब्रह्मकाण्ड)	भर्तृहरि	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १६७५।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वात्स्यायन भाष्य	वात्स्यायन	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९७० ।
वायुपुराण	...	...
वाराह श्रौतसूत्र	...	मेहरचन्द लच्छमनदास, दिल्ली, १९७१ ।
वाल्मीकि रामायण	वाल्मीकि	चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, १९७७ ।
विवरणप्रमेयसंग्रह	विद्यारण्य	आन्ध्र विश्व कला परिषद्, वाल्टेर, १९४१ ।
वृद्धहारीतस्मृति	...	...
वेद तथा ऋषि दयानन्द	श्रीनिवास शास्त्री	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९७९ ।
वेद-प्रामाण्य-मीमांसा तथा ऋषि दयानन्द	श्रीनिवास शास्त्री	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, १९८० ।
वेदान्तपरिभाषा	धर्मराज अध्वरीन्द्र	चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६३ ।
वेदान्तपारिजातसौरभ	निम्बार्काचार्य	विद्याविलास यन्त्रालय, वाराणसी, १९६७ वि.
वेदार्थसंग्रह	रामानुज	तिरुमल, तिरुपति, देवस्थान, तिरुपति, १९५३
वैखानस श्रौतसूत्र	...	रॉयल एसियाटिक सोसायटी, कलकत्ता, १९४१ ।
वैतान श्रौतसूत्र	स० विश्वबन्धु	विश्वेश्वरानन्द संस्थान, होशियारपुर, २०२४ वि० ।
वैदिक इतिहास-विमर्श	आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री	आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, १९६१ ।
वैदिक साहित्य और संस्कृति	बलदेव उपाध्याय	शारदा संस्थान, वाराणसी, १९८० ।
वैशेषिक दर्शन (वैशेषिक सूत्र)	कणाद	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १९८० ।
वैशेषिकसूत्रोपस्कार	शङ्करमिश्र	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९६९ ।
व्यासस्मृति (बीस स्मृतियाँ, द्वितीय खण्ड)	स० श्रीराम शर्मा	संस्कृति संस्थान, बरेली, १९६६ ।
व्योमवती	व्योमशिवाचार्य	चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९२४ ।
शतपथ (ब्राह्मण)	...	प्राचीन वैज्ञानिकाध्ययन अनुसन्धान संस्थान, नई दिल्ली, १९७० ।
शाङ्करभाष्य (प्रश्नोपनिषद्)	शङ्कराचार्य	गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१३ वि० ।
शांखायन गृह्यसूत्र	...	मुंशीराम मनोहरलाल, नई दिल्ली, १९६० ।
शाबरभाष्य	शबर स्वामी	आनन्दाश्रम, पूना, १९७६ ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्रदीपिका	पार्थसारथि मिश्र	साधु बेला संस्कृत महाविद्यालय, सकरकंद गली, वाराणसी, १६७७।
शिव पुराण	...	...
श्रीनिम्बार्कवेदान्त	निम्बार्काचार्य	श्री निम्बार्क पीठ, १२ महाजनी टोला, इलाहाबाद-३, २०२० वि०।
श्रीभाष्य (श्रुतिप्रकाशिका सहित)	रामानुज	२५, नाथमुनि वीथी, तिनगर, मद्रास-१७, १६६७।
श्रीमद्भगवद्गीता	...	गीता प्रेस, गोरखपुर, २०१३ वि०।
श्रीशङ्कराचार्यग्रन्थावली	शङ्कराचार्य	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६६४।
श्लोकवार्त्तिक	कुमारिल	तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी, १६७८।
श्वेताश्वतरोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७०।
षड्दर्शनसमुच्चय	हरिभद्र	भारतीय ज्ञानपीठ, १६७०।
सत्यार्थप्रकाश	दयानन्द सरस्वती	रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, १६७२।
संस्कृत हिन्दी कोष	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७३।
सम्वर्तस्मृति (बीस स्मृतियाँ)	...	संस्कृति संस्थान, बरेली, १६६६।
सर्वदर्शनसंग्रह	सायण-माधवाचार्य	आनन्दाश्रम संस्कृत, ग्रंथावलि पूना, १६७६।
सर्वसिद्धान्तसंग्रह	शङ्कराचार्य	...
सांख्यकारिका (गौडपाद भाष्य सहित)	ईश्वरकृष्ण	ऑरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, १६३३।
सांख्यतत्त्वकौमुदी	वाचस्पति मिश्र	साहित्य भण्डार, मेरठ।
सांख्यदर्शन (प्रवचन भाष्य)	विज्ञानभिक्षु	भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, १६७७।
सामवेद	...	(१) वैदिक यन्त्रालय अजमेर, १६८५ वि०। (२) स्वाध्याय मण्डल, पारडी, १६५६।
सीतोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७०।
सुबालोपनिषद्	...	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७०।
सुश्रुत संहिता	सुश्रुत	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १६७५।
स्याद्वादमञ्जरी,	मल्लिषेण	चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो, बनारस, १६००।
सूर्यसिद्धान्त	...	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, १६७८।
स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश	स्वामी दयानन्द	द्र०, सत्यार्थप्रकाश।
Rigveda Saṁhita	H.H. Wilson	Nag Publishers. Delhi, 1977.
Sanskrit English Dictionary	V.S. Apte	Motilal Banarsidas, 1976.
Sanskrit English Dictionary	Monier Williams	Motilal Banarsidas, 1976.
The Vedas	F. Max Muller	Susil Gupta, Calcutta-12, 1956.

9807—1,000—8-3-1982—K.U.P.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

075494

GURUKUL KANGRI LIBRARY
Acces on
Class on
Cat on
Tag etc.
Checked
Any Other

11-3-86
15-3-86
20.3.86

10/11/19

R14,SAS-V
075494

STOCK VERIFY 2020

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Call No. ९८ Acc. No. 75494

AUTHOR श्रीनिवास शास्त्री

Title वेदनित्यता तथा ऋषि दयानन्द

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar